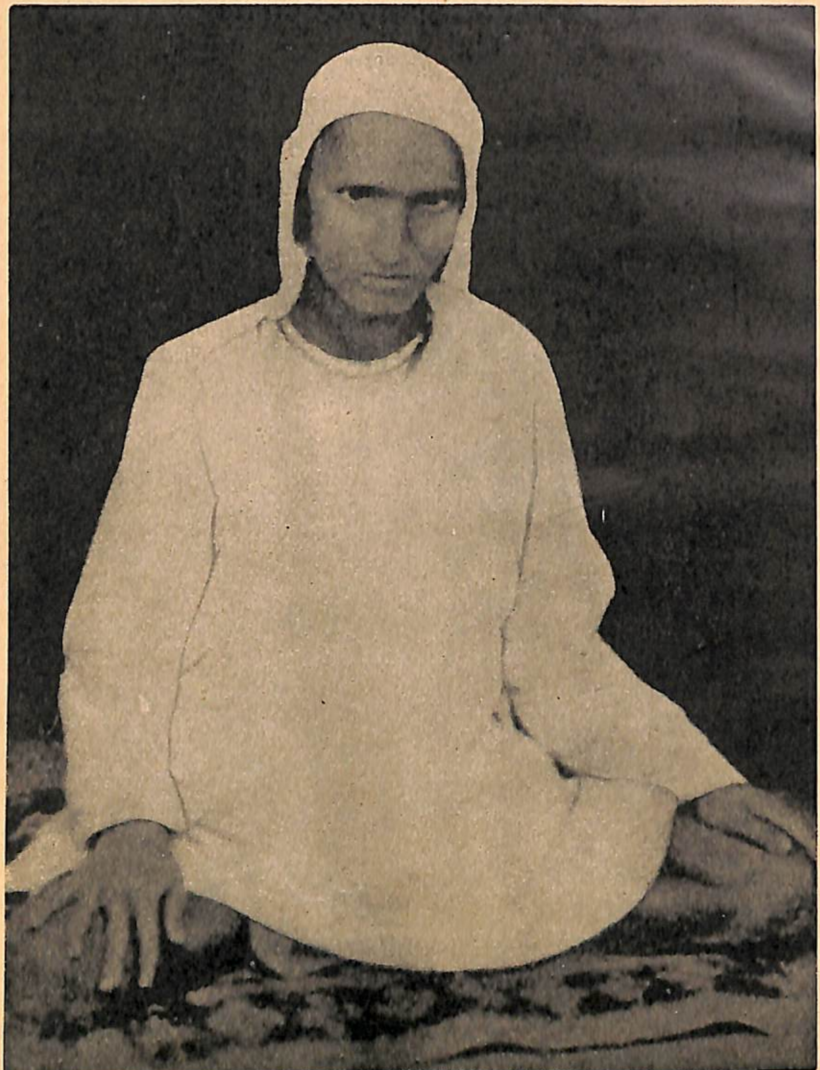
9818008695 } Nanaji's son

ॐ

श्री सिद्धसिद्धेश्वर श्रीमद्योगाचार्य सर्वश्री समलङ्कृत
श्रीकैलाश गुहाविहारी महामुनीन्द्राय नमः



श्री हैड़ाखानवाले बाबा
(जप–भावना)

ॐ

श्री सद्गुरवे नमः

श्री सद्गुरु स्तुति कुसुमाञ्जलि

श्री ऊर्मिलाभाष्य

ग्रन्थ प्रणेता तथा भाष्यकार
शास्त्री विष्णुदत्त मिश्र
साहित्याचार्य



वोरा एण्ड कम्पनी, पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड,
३, राउण्ड बिल्डिग, कालबादेवी रास्ता, बम्बई–२

प्रथमावृत्ति : १९५७

मूल्य रु. १)

श्री सिद्ध सिद्धेश्वराय मुनीन्द्राय
श्री सद्गुरुवे नमः ॥

ॐ

न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम्,
न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम् ।
शिव शासनतः शिव शासनतः
शिव शासनतः शिव शासनतः ॥ १ ॥

इदमेव शिवं इदमेव शिवं
इदमेव शिवं इदमेव शिवं ॥
मम शासनतो मम शासनतो
मम शासनतो मम शासनतः ॥ २ ॥

स्तबकैः रष्ट संख्याकै–
र्नाना कृति गुणान्वितैः ॥
सुमनैर्निर्मितो दिव्यः
अञ्जलि स्त्वां प्रसादयेत् ॥

श्री सिद्ध सिद्धेश्वर श्रीमद्योगाचार्य सर्वश्री समलंकृत
श्री कैलासविहारी महामुनीन्द्राणां श्री चरणेषु सविनय

समर्पणम्

(१)

सिद्ध सिद्धेश्वराधीश !
सिद्ध सिद्धेन्द्र वन्दित ! ॥
भृङ्गायतां स्तवं दिव्यं
श्रीमतां पाद पद्मयोः ॥

(१)

हे सिद्धेश ! सिद्ध सिद्धेश्वर !
तुम सिद्धेशों से वन्दित हो ।
यह पद्यस्तव मिलिन्द बन प्रभु
चरण कमल में शोभित हो ॥

(२)

श्रीमन्मुनीन्द्र ! अमितप्रभ ! योगिराजन् !
ज्ञानाब्जभास्कर महन्महनीय कीर्ते !
त्वत्प्रेरणा स्फुरित हीरकरत्न भास्वरां
त्वत्कीर्ति हारलतिकां तुभ्यं-अर्पयामि ॥

(२)

हे मुनीश्वर ! योगिराजन् ! अमित है तेरी प्रभा
ज्ञानाब्ज सूरज तू चमकता भक्त उर में सर्वदा ।
तेरी कृपा से प्राप्त, हीरक, रत्न, मोती से जड़ी
तव गुणों की हार लतिका तेरे चरणों में चढ़ी ॥

प्राक्कथन

सद्गुरुः सद्गुणाधारो ध्यानगम्यः सदाशयः ।
सत्यं परं चिदानन्दं संस्मरामि हि सर्वदा ॥

प्रत्येक विवेकशील व्यक्ति इस सत्य से सुपरिचित है कि मानव को असत् दृश्य पदार्थ कभी भी तृप्त न कर सका। जीव का सत्यान्वेषण, पूर्णत्व प्राप्तिजन्य सत् प्रयत्न तथा विविध साधनानुष्ठान, उसे एकान्तिक शान्ति का साक्षात्कार न करा सके। उस सत्योपलब्धि का प्रधान कारण है, एक मात्र महत्पुरुषों की कृपा।

"महत्कृपयैव"

यद्यपि वह कृपा शक्ति सर्वत्र सर्वदा एवं समानरूप से विद्यमान है, तथापि 'कृपा' सम्पादन से हम वञ्चित ही रह जाते हैं। इनमें मुख्य विघ्न, विमुखता है। इस विमूढ़ताजन्य विमुखता का परित्याग कर परम कारुण्य, एक मात्र शरण्य, सर्व सौख्य-सौन्दर्य के आदि स्थान, परात्पर शक्ति स्वरूप, सर्वसुहृद् पूज्य महत्पाद के सन्मुख हों।

उस सुखद शरण में जाने को विविध मार्ग हैं। उनमें श्रेष्ठ, नाम, गुण, लीला तथा स्वरूप परिचायक "स्तुति" ही है। यह स्तोत्र पाठ की पद्धति बहुत प्राचीन है। साधक चाहे कितनी ही उत्तम सेवा, पूजा तथा आराधना करते हैं, परन्तु अन्त में जब तक कुछ स्तुति नहीं होती, चित्त में एक अपूर्णता का भास रहता है।

इसी भाव से प्रेरित हो यह "श्री सद्गुरु-स्तुति कुसुमाञ्जलि" अध्यात्म प्रेमियों के श्रेयार्थ प्रकाशित हो रहा है। ज्ञान-भक्ति पूर्ण यह मधुर एवं परमानन्द स्वरूप ग्रन्थ श्रेयाभिलाषियों के लिये परमोपयोगी सिद्ध होगा।

इसके प्रणेता हैं साहित्याचार्य पं० श्री विष्णुदत्त शास्त्री, जो मर्मज्ञ, भावुक तथा साहित्य, पुराण एवं दर्शन के विद्वान हैं। आप अलवर निवासी पं० श्री चिरंजीवलालजी मिश्र के ज्येष्ठ पुत्र हैं। राज्य मिश्र वंशोद्भव होने के कारण, राज प्रदत्त श्री लक्ष्मणजी के मन्दिर के स्वामी हैं। भगवान् की कृपा से यह परिवार विद्या, भक्ति, धन, कुटुम्ब तथा प्रतिष्ठा से सम्पन्न है। श्री सद्गुरुदेव जी के आप पूर्ण कृपा भाजन हैं। श्री सद्गुरुदेव जी की

इनपर अहैतुकी कृपा तथा इनकी भक्ति निष्ठा ही, इस पुण्य ग्रन्थ निर्माण का वास्तविक हेतु है। केवल एक पक्ष की लघु अवधि में ही ऐसे सैद्धान्तिक सुरुचिवर्द्धक तथा विद्वज्जन प्रशंसित काव्य की रचना, श्री सद्‌गुरु प्रदत्त असाधारण प्रतिभा के द्योतक है।

इस लघु वक्तव्य के अन्त में, मैं लेखक, प्रकाशक तथा पाठकों का शुभ चिन्तन करते हुए, इसी आशापूर्ण हृदय से लेखनी को विराम देता हूँ कि इस कृपा पूर्ण पद्यावलियों के श्रवण मननादि द्वारा समस्त मानव वृन्द सुख शान्ति प्राप्त करें। कल्याणकामी सुधीर साधकों को श्रेय पथ पर पहुँचाने वाला ही नहीं, प्रत्युत् श्री सद्‌गुरु स्तुति का श्रवण मनन सद्यः श्रेय स्वरूप बनाने वाला है।

अहा! बन्धुओ ! इस शिवावतार परब्रह्मस्वरूप सर्व श्री समलङ्कृत सद्‌गुरु देव की गुण-गरिमा पूर्ण ग्रन्थ रत्न की महिमा कहाँ तक कही जाय। आओ! ओ! त्रिताप संतप्त मानव ! आओ !! अपने जीवन की अमूल्य नीधि वाणी को व्यर्थ नष्ट न करो। इसकी सार्थकता तो इसी में है कि निस्संकोच भाव से श्रद्धा विश्वास पूर्वक इस चरित्र तथा स्तोत्र का नित्य पाठ करो। साधक जन सम्मिलित हो गान करो। श्री सूत जी के मुखारविन्द से सुनो !! "जिस वचन के द्वारा प्रभु के परम पवित्र यश का गान होता है; वही परम रमणीय, रुचिकर एवं प्रतिक्षण नया नया जान पड़ता है। उस से अनन्त काल तक परमानन्द की अनुभूति होती रहती है। मानव का शोक सागर उत्तम श्लोक प्रभु के कीर्तिगान से सदा के लिये सूख जाता है।

तदेव रम्यं रुचिरं नवं नवं,
तदेव शश्वन्मनसो महोत्सवम्।
तदेव शोकार्णव शोषणं नृणां,
यदुत्तम श्लोक यशोऽनुगीयते ॥

॥ ॐ शान्तिः ॥

"श्री गुरुचरणाश्रित"

नम्र निवेदन

अपार और असार इस भवसागर में श्री सद्‌गुरु ही एक मात्र अद्वितीय कर्णधार हैं, विना श्री सद्‌गुरुदेव की अनुकम्पा के, अलौकिक दिव्य शक्ति सम्पन्न अवतारादि भी इस भव वारिधि की यात्रा सांगोपांग करने में सामर्थ्य-शाली नहीं होते हैं। इसी ही सूक्ष्मतम मूलतत्त्व को स्पष्ट करने के लिये ही श्री मर्यादापुरुषोत्तम राम, और लीला पुरुषोत्तम आनन्दकन्द पूर्ण कला-ऽवतार श्री कृष्णचन्द्र ने भी महर्षि वशिष्ठ और सान्दीपनी की शरण ग्रहण की।

इसी मार्मिक रहस्य का उद्‌घाटन करने की भावना से श्री गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज ने रामचरित मानस में सुवर्णमय अक्षरों से निर्देश किया है, कि—

"गुरु बिनु भव निधि तरइ न कोई,
जौं विरंचि संकर सम होई।"

कि चाहे मनुष्य ब्रह्मा और शङ्कर के वैभव से सम्पन्न हो, तब भी बिना श्री सद्‌गुरुदेव की कृपा के इस परम अगाध और दुस्तर भव वारिधि को पार नहीं कर सकता।

व्याकरण की दृष्टि से जब हम गुरु शब्द की व्याख्या करते हैं, तब उसका विश्लेषण गृणाति–उपदिशति, इति गुरुः यह होता है, इसके अनुसार तत्त्व का उपदेष्टा गुरु होता है।

उपदेश चाहे वाचिक हो या सांकेतिक हो, अथवा मौन व्याख्या के रूप में हो, इन उपदेश के तीनों स्वरूपों में अज्ञान और सांसारिक क्लेशों को समूल नष्ट करने की उत्तरोत्तर अधिक सामर्थ्य होती है।

अर्थात् वाचिक उपदेश की अपेक्षा सांकेतिक उपदेश अज्ञान तिमिर का शीघ्र और अधिक नाश करने की शक्ति सम्पन्न होता है, और इन दोनों उप-देशों की अपेक्षा श्री सद्‌गुरु द्वारा मौन व्याख्या से किया गया उपदेश तो क्षण मात्र में ही हृदय पटल को सहस्रों सूर्यों के दिव्य प्रकाश से परमभास्वर बनाने की अलौकिक क्षमता से सम्पन्न होता है।

जिस प्रकार संसार में परात्पर ब्रह्म एक ही है, जैसा कि श्रुति वाक्यों में उल्लेख है कि "एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म नेह नानाऽस्ति किञ्चन" इसी प्रकार परात्पर गुरु भी एक ही है। किन्तु जिस प्रकार वह अलौकिक दिव्य शक्ति

समन्वित ब्रह्म एक होते हुए भी सम्पूर्ण चराचर विश्व में अपनी दिव्य चित् शक्ति से ओत-प्रोत है, कोई भी तत्त्व उसकी सत्ता से शून्य नहीं है, उसी प्रकार परात्पर गुरु भी अपनी सच्चिदानन्दमथी दिव्य शक्ति से अखिल ब्रह्माण्डों के हृदयों में ओत-प्रोत है।

इसका अभिप्राय यह है कि जिस किसी भी व्यक्ति विशेष का जो कोई भी गुरु हो चाहे वह महान् से महान् शक्ति और आत्मबल सम्पन्न हो, अथवा क्षुद्र से क्षुद्र हो (अन्य की दृष्टि में) उस व्यक्ति विशेष के लिये तो वह ही चतुर्वर्ग फल प्रदाता साक्षात् ब्रह्मरूप है। क्योंकि जिस प्रकार किसी बड़े भारी नगर में लाखों स्थानों पर, और करोडों मकानों में फिट किये हुए छोटे और बड़े सभी विजली के वल्ब एक ही शक्तिकेन्द्र (पावर हाऊस) से उत्पन्न विद्युत् शक्ति से देदीप्यमान रहते हैं। उनमें से किसी भी छोटे से छोटे वल्ब के तार पर साक्षात् हस्त का सम्पर्क होने से तुरन्त वह महती विद्युत् शक्ति उस ही प्रकार अपने आकर्षण से क्षण मात्र में मनुष्य को मूर्च्छित कर देती है, जिस प्रकार कि किसी बड़े वल्ब के तार का स्पर्श करने वाले को मूर्च्छित करती है। इसका कारण यह ही प्रतीत होता है कि छोटे और बड़े दोनों ही प्रकाश केन्द्रों में समान रूप से रहने वाली विद्युत् शक्ति उस महान् शक्ति केन्द्र (पावर हाऊस) से समान रूप से आने वाला तत्त्व है। इसी प्रकार जिसे हम अपना गुरू मानते हैं, वह चाहे क्षुद्र ही क्यों न हो, किन्तु जो तत्व एक महान् से महान् आचार्य में प्रतिभासित है, उसी ही मूल तत्त्व से प्रत्येक गुरू का हृदय आभासित है। इसलिए सब का सम्बन्ध एक ही केन्द्र से सम्बद्ध होने से सब एक ही शक्ति से अनुप्राणित हैं, क्यों कि गुरुशब्द अनादि होने से उसकी सार्थकता अनेक मार्गो से उसी परात्पर सद्गुरुदेव श्री शिव ब्रह्म में ही चरितार्थ होती है। अतः जिस प्रकार "सर्व देव नमस्कारः केशवं प्रति गच्छति" सम्पूर्ण देववृन्द को किया गया प्रणाम, सम्पूर्ण देवों के मूल होने के कारण परात्पर विराट् स्वरूप भूमा पुरुष को समर्पित होता है, उसी प्रकार संसार के यावन्मात्र सम्पूर्ण गुरुदेवों के प्रति की गई श्रद्धा, भक्ति और अनुराग भी उसी परात्पर श्री सद्गुरु शिवब्रह्म के श्री चरणों में समर्पित होता है।

इसी तथ्य का पोषण करने के लिये शास्त्रकार महर्षियों ने:—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः
गुरुः साक्षात्परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः"

इत्यादि उक्तियों से गुरु को ब्रह्मा विष्णु तथा महेश्वर और साक्षात्पर ब्रह्म का स्वरूप मान कर प्रणाम किया है। क्यों कि जिस प्रकार छोटी और बड़ी सब नदियाँ मिलकर अपने मूल उद्‌गम समुद्र में अवसान ग्रहण करती हैं, उस ही प्रकार यावन्मात्र गुरुओं की उपासना उस परात्पर गुरु की उपासना है और परात्पर साम्ब सदाशिव मूर्ति श्री सद्‌गुरुदेव की उपासना अपने गुरु की उपासना है। इसी तत्त्व को अनुप्राणित करने के निमित्त अपनी अलौकिक दिव्य चिच्छक्ति से इस सांसारिक विषय कीट पर अनुकम्पा करके:—

'जेंहि पर कृपा करहिं जन जानी
कवि उर अजिर नचावहिं बानी'

इत्यादि वचनों के अनुसार कृपाऽमृत वृष्टि करके तथा साक्षात् हृदय में प्रवेश करके यह "दिव्य स्तव" जिस के प्रत्येक पद में हृदय को द्रवीभूत करके अविरल आनन्द अश्रु प्रवाह से श्री सच्चिदानन्द स्वरूप सम्पन्न भगवत् श्री चरणारविन्दों को सिंचित करने की अक्षुण्ण शक्ति तथा-आत्म निवेदन की परम-सामर्थ्य विद्यमान हैं; लिपि बद्ध कराने की परम कृपा की है।

अतः श्री सद्‌गुरुदेव की साक्षात्कृपा से प्राप्त, तथा कृपा से ही लिपिबद्ध, और कृपा के लिये किये गये सम्प्रदायवाद विहीन इस प्रयास से आप भी अपने अपने श्री गुरदेवों की आराधना करके कृपा भाजन बनने की कृपा करें, क्योंकि यह तो परम विशुद्ध गुरु तत्त्व की उपासना है, इसमें किसी सम्प्रदाय का भेद-भाव नहीं हैं।

इस के निरन्तर पाठ से अपने अपने इष्ट देवों की आराधना करके पवित्र अन्तः करण को आनन्दाऽमृत प्रवाह से परिपूर्ण करते हुए, चतुर्वर्ग फल (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) को यथा रूचि प्राप्त करते हुए इहलौकिक और पारलौकिक आनन्द के भाजन बनकर कृत-कृत्यता प्राप्त कीजिये।

शुभाभिलाषी
विदुषामनुचरः विष्णुदत्त:

विषयानुक्रमणिका

श्री मुनीन्द्र सूक्त

कैलास गिरिवरे रम्ये निवसन्तं सुशान्तिभिः ।
तं मुनिं सततं वन्दे सदा कारुण्य रूपिणम् ॥१॥
यस्य स्मरणमात्रेण सिद्धो भवति साधकः ।
सद्गुरुं तमहं वन्दे हैडाखान वासिनम् ॥२॥
यस्य कृपाकटाक्षेण धन्योभवति मानवः ।
तस्य पादयोरेकं प्रणमामि निरन्तरम् ॥३॥
कोमलं हृदयं यस्य कोमलं यस्य भाषणम् ।
दण्डोऽपि कोमलो यस्य कोमलाङ्गं नमाम्यहम् ॥४॥
दृष्टिं दयामयीं कृत्वा यः पश्यति चराचरम् ।
लोकोपकार निरतो रागद्वेषादि वर्जितः ॥५॥
सद्गुरुः सद्गुणाधारो ध्यानगम्यः सदाशयः ।
सत्यं परं चिदानन्दं संस्मरामि हि सर्वदा ॥६॥
हरिरेव हरेर्भक्तो हरेर्ध्यान परायणः ।
हरेर्नामामृतं पित्वा हरेर्धाम परं व्रजेत् ॥७॥
यो ददाति च बालानां सद्ज्ञानं तु सुदुर्लभम् ।
सर्व साधन हीनोऽपि त्वमेकमवलम्बनम् ॥८॥
महामार्त्तण्डरूपेण मोहध्वान्त विनाशकः ।
सर्व भूतात्मरूपोऽसि महेन्द्रस्यच जीवनम् ॥९॥

ॐ

॥ आरार्ति गीतिका ॥

श्री सिद्ध सकल जगवन्दन, हियमण्डन ए
त्रिपुरान्तक त्रिपुरेश !
जय शिव ॐ हरे ॥

भाल त्रिपुण्ड सुर्माण्डत, शिर गङ्ग तरङ्गित ए
शङ्कर परम ललाम
जय शिव ॐ हरे ॥

मदभर शोणित लोचन, भवभय मोचन ए
शोणाधर सर्वेश !
जय शिव ॐ हरे ॥

जटा मुकुट-अहि मण्डित, शिवशशिशेखर ए
फणिफणमण्डित भाल
जय शिव ॐ हरे ॥

विषपान विघूर्णित नीलकण्ठ, नयनाऽमृत ए
मदन मनोहर वेश
जय शिव ॐ हरे ॥

सितभूति विभूषित भूतिभव्य, भवभीतिविभंजन ए
वृषभध्वज विश्वेश !
जय शिव ॐ हरे ॥

बाघम्बर शोभित शान्त वेश, शिवशत्रु निकन्दन ए
शिवाशक्तिसम्पन्न
जय शिव ॐ हरे ॥

पिनाक पाणि पाशांकुश शोभित, यमपाश विमोचन ए
पशुपति पावन वेश,
जय शिव ॐ हरे ॥

भुजंग कण्ठ मुंडमाल शम्भु, शशिशेखर ए
शारदेन्दु कमनीय
जय शिव ॐ हरे ॥

आशुतोष अखिलेश्वर औघड़, अवढर दानी ए
दाता परम दयालु
जय शिव ॐ हरे ॥

विश्वनाथ विश्वम्भर विश्वेश्वर, वृष वाहन ए
विश्व विलोचन चोर
जय शिव ॐ हरे ॥

हैडकखान निवासी, घट घट वासी ए
सिद्धाश्रमी योगीश
जय शिव ॐ हरे ॥

॥ ॐ श्री सद्गुरुवे नमः ॥

(१) स्वरूप-परिचय

सब देशों के तथा सब धर्मसंप्रदायों के आचार्य पादों को नमस्कार है। इन सब आचार्यपादों में श्री श्री सद्गुरुदेव 'कृपा' रूप से आविष्ट रहे हैं। आचार की शिक्षा-दीक्षा देकर, तथा धर्म-सम्प्रदायों के संचालन की सामर्थ्य देकर, श्री श्री सद्गुरुदेव अनाम तथा अरूप ही रहे हैं। युग-युग में ... सृष्टि से लगा कर प्रलय-पर्यन्त सद्गुरुदेव जी का यही एकमात्र काम रहा है। जो मुक्ति चाहते हैं–उन्हें इन्होंने मुक्ति दी है। जिन्होंने धर्म की याचना की है–उन्हें इन्होंने धर्म दिया है।

इस प्रकार श्री श्री सद्गुरुदेव जी कल्पतरु हैं, और धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थों के प्रदाता रहे हैं।

जितनी खोज की जा चुकी है, उसके आधार पर यही कहा जा सकता है कि प्रसिद्ध-प्रसिद्ध धर्मप्रवर्त्तक तथा संप्रदायों के आचार्यपादों पर प्रगटरूप से अथवा प्रच्छन्नरूप से इन्हीं सद्गुरुदेव की कृपा रही है; और जो-जो धर्म-प्रवर्त्तक अथवा आचार्य भविष्य में भी होंगे, उन पर भी इन्हीं की 'कृपा' रहेगी। इतना होने पर भी इनका नाम तथा रूप कभी भी ठीक-ठीक विदित न हो सकेगा। कारण यह है कि श्री श्री सद्गुरुदेव पराम्बा महाविद्या के एकमात्र केन्द्र–अर्थात् चक्रवर्त्ती सम्राट् हैं, तथा सदाशिव-स्वरूप हैं। इसीलिए जहाँ-जहाँ प्रगटरूप से इन्होंने नरलीला की है, वहाँ-वहाँ इनके रूप को कोई भी ठीक तरह से ग्रहण न कर सका। प्रयाग में जो इनके फोटो लिये गये थे—उनसे भी इसी सत्य की पुष्टि होती है।

दोनों चित्रों में भिन्नता इतनी स्पष्ट है कि मेजर वसु (जिन्होंने ये चित्र लिये थे) इन चित्रों को देखकर यह कह उठे थे कि ये दोनों चित्र सद्गुरुदेव के ही हैं, अथवा भिन्न-भिन्न व्यक्ति के। फोटोग्राफर रुश्तम भी इन चित्रों को देखकर आश्चर्यचकित रह गया था। और तिब्बत के प्रसिद्ध लामा-योगी इस शंकर-स्वरूप चित्र को देखकर गहन विचार में निमग्न हो गया था,

र कुछ समय बाद उसने कहा था—कि यह बताना नितान्त कठिन है ; कौनसी ऊँची से ऊँची योग की स्थिति में श्री श्री सद्गुरुदेव सदैव स्थित हते हैं।

जिन की स्थिति अथवा सहज-स्वरूप का वाणी अथवा मन द्वारा ग्रहण करना सहज-असंभाव्य है, उसका शब्द-चित्रण करना मानो टिट्टिभ पक्षी द्वारा समुद्र-शोषण करना ही है। उनकी स्थिति को देखकर ऐसा मालूम पड़ता है— मानो उनके चारों ओर कृपा-वारिधि में ज्वार आ रहा हो। अथवा असंख्य भाव-समाधियाँ उनके चारों ओर मदमत्त हो कर नृत्य कर रही हों। इस तत्त्व को जानकर ही सहजोबाईने 'सद्गुरु' को ही परम-इष्ट निर्धारित किया है, और 'राम' से भी उत्कृष्ट इष्ट माना है। सहजोबाईने अपने सूक्ष्मातिसूक्ष्म अनुभव से जो प्रमाण प्रस्तुत किये हैं— वे इस प्रकार के हैं :—

'राम' भगवान् जितने प्रसन्न भगवद्भक्ति से होते हैं, उस से करोड़ों-गुना अधिक तब प्रसन्न होते हैं जब उनका भक्त उनको छोड़कर 'सद्गुरु देव' की सेवा-आराधना में लगता है।

'राम' भगवान् जीव के प्रारब्ध-कर्मों के अनुरूप संसार में उनको जन्म देकर आवागमन के चक्कर में भ्रमाते हैं, और सद्गुरु देव आवागमन से छुड़ा देते हैं।

'राम' भगवान् ने प्रत्येक जीव के साथ रहने के लिए पाँच चोरों का प्रबंध किया हुआ है, जो अनाथ की भाँति जीव को असह्य कष्ट देते रहते हैं, और सद्गुरुदेव जीव को उन चोरों के चंगुल से छुड़ा लेते हैं।

'राम' भगवान् अति मधुर कुटुंब-जंजाल में जीव को गिरा कर ममता-रूप बेड़ियों से उसे जकड़ देते हैं, और सद्गुरुदेव उन बेड़ियों को काट देते हैं।

'राम' भगवान् ने जीव की बुद्धि तथा मानस को रोग और भोग में ऐसा उलझाया है—कि बड़े-बड़े ज्ञानी भी उन में से निकलने में

...सद्गुरुदेव जीव को 'योग' की सामर्थ्य
...में से साफ़ छुड़ा ले जाते हैं।

...न के अहंग्रह में कर्म और धर्म का ऐसा दीर्घकाय
...हुआ है, कि उससे उद्धार होना नितान्त असंभव
...द्गुरुदेव 'आत्मदर्शन' कराके जीव के अहंग्रह को शमित

चरित्र

विख्यात है।

थी, ए भगवान् ने जीव को सब कुछ देखने की सामर्थ्य दी है, परन्तु ओंने आपको (राम को) देखने की सामर्थ्य नहीं दी है। और सद्गुरु देव 'दीपक' देकर उसको दिखा देते हैं।

फिर 'राम' भगवान् जीव के लिये 'बंध' तथा 'मोक्ष' की गति लाकर उसे आतंकित करते रहते हैं, और सद्गुरुदेव जीव को अपने मधुर वाङ्मयद्वारा विभ्रम से ऊपर उठा देते हैं।

सहजोबाई कहती हैं कि सद्गुरुदेव पर मैंने तन और मन न्यौछावर कर दिया है। 'राम' का परित्याग कर दूँगी, पर सद्गुरुदेव को नहीं छोड़ूँगी !!!

...ँ पर गुरु न विसारूँ॥ गुरु के सम हरि को न निहारूँ॥
...म दियौ जगमाहीं॥ गुरु ने आवागमन छुड़ा हीं॥
की ...र दिये साथा॥ गुरु ने लई छुड़ाय अनाथा॥
श्री सिद्ध... में गेरी॥ गुरु ने काटी ममता बेरी॥
तथा शिवाल...आयौ॥ गुरु जोगी करि सबै छुड़ायौ॥
हैडाखान ग्रा...मायौ॥ गुरु ने आतम रूप लखायौ॥
सर्वसाधा...छपायौ॥ गुरु दीपक दै ताहि दिखायौ॥
की ... गति लाये॥ गुरु ने सब ही भर्म मिटाये॥
... तनमन वारूँ॥ गुरु न तजूँ हरि को तजि डारूँ॥

...मर–सिद्ध–सिद्धेश्वर–सदाशिव–दक्षिणामूर्त्ति–स्वरूप सद्गुरुदेव ...त्र इष्ट हैं। उनका श्रीविग्रह दिव्य तत्त्वों से निर्मित है, और

...ा
...ँ
...ी
...।
...ाश
...श्री
...ाला
...है।
...म ही
...र्माचल
...ले बाबा"

...गुफा है, जो
...दो-तीन गज़
...गुम्मज दृष्टिगोचर
...ता है। इस पुण्य-

हैड़ाखान विचित्र ह ... ...खद विश्रामा॥
गोतमगंगा गर्जति निशदिन। सिद्ध सुरासुर अर्चत अनुदिन॥

एक ही समय में कोटि-कोटि ...

शुद्ध सच्चिदानन्दमय ही उनका वपुष है। ...स्तुति कुसुमाञ्जलि

परमोदार श्री विग्रह-सद्गुरुदेव क्या-क्या चा... नितान्त कठिन है

विषय है !!! सदैव स्थित

अपनी तेजपुंज त्रिकुटी के द्वारा साधन-सम्राट-श्रीना...

रहते हैं। उनका नाम-जप भागीरथी की धारा की भाँति ...रा

चलता रहता है।

ग्रह... साकेत लोक, शिवलोक तथा गोलोक की लीलाओं का आस्व...

पक्षी के लिए बार-बार अनेकानेक शरीरों को धारण करके वे प्रमोदानन्द ...

... में विचरण करते हुए भावसमाधियों में लीन रहते हैं, तथा सभी सा...

हो विकारों का प्राकट्य उनके श्रीविग्रह में होता रहता है।

कर

पर कोटि-कोटि कामदेवों को लज्जित करने वाले श्री रामकृष्णादि के

सह पर उनकी अनुरक्ति अवर्णनीय है, और वे सहज-अतृप्ति के भाव से

वे माधुरी के सागर में निमग्न रहते हैं।

श्री धामों के वे परमप्रेमी हैं, और उनके दर्शन विशेष रूप से

तीर्थ-स्थलों में उपलब्ध रहते हैं।

(२) लीला क्षेत्र-परिचय

जन्म

ऐसा अनुमान किया जाता है कि मानसरोवर ...वागमन

ओर चित्रशिला (रानीबाग़-काठगोदाम) पर्यन्त

पर्वत हैं, वे आठ-दस हज़ार वर्ष पूर्व हिम ...पाँच चोरों का

संस्कार-विधि के संकल्पों में "कूर्माचल" के ...से असह्य कष्ट

दे... हिमवत् पर्वतैकदेशे"—अर्थात् हिमवान् नाम प्रयु... से छुड़ा

लें... ...कल्प से यह स्पष्ट है कि कूर्माचल के सब पर्वत पहले ...

'रा... ...र जहाँ जहाँ बरफ़ कम होती गई, वहाँ-वहाँ आबादी होने

ममत... ...काल में ऋषि-मुनियों तथा सिद्ध-महात्माओं के अनेकानेक

को का... ...र ज़िले में षष्ठिखात 'छखाता' के पूर्व भाग में कैला...

'राम' ...

ऐसा उ...

विख्यात है। उसके ऊपर लिंगस्थापना बाणासुर ने द्वारपर के अन्त में की थी, एवं उग्र तपस्या तथा शिवार्चन किया था। कैलाश पर्वत के पूर्व की ओर जो चौघड़ पट्टी में "देवगुरु" पर्वत है—उसमें देवगुरु बृहस्पति का आश्रम था।

यह कैलाश पर्वत बिलकुल निर्जन है। शिवरात्रि के दिन यहाँ मेला भरता है। इसकी महिमा "जागनाथ" तथा "मृत्युञ्जय" के तुल्य ही है। श्रद्धालु भक्तों को ये मनोवांछित फल प्रदान करते हैं; अल्पमृत्यु निवारणार्थ यहाँ शिवार्चन करने से असाध्य रोग भी दूर हो जाते हैं। पुत्र-प्राप्ति के के निमित्त अखण्डदीप हाथ में लेकर अनेक महिलाएँ रात्रिभर महाशिवरात्रि को जागरण करती हैं, और उनकी मनोकामना पूर्ण होती है। हेमन्त में कैलाश की शोभा परममनोहारिणी हो जाती है। जिस वर्ष वर्षा अच्छी होती है, उस वर्ष हेमन्त ऋतु में यह पर्वत हिम से आच्छादित रहता है। उस समय इसकी शोभा अवर्णनीय तथा अत्यन्त कमनीय रहती है। कैलाश की तलैटी में एक छोट-सा ग्राम है—जिसका नाम "हैडाखान" है। श्री श्री सिद्ध सिद्धेश्वर सद्गुरुदेव मुनीन्द्र महाराज ने यहाँ पर एक धर्मशाला तथा शिवालय बनवाया था। यह घटना लगभग ईस्वी सन् १८९३ की है। हैडाखान ग्राम में इस घटना के घटित होने पर श्री महाराज का नाम ही सर्वसाधारण में "हैडाखान वाले बाबा" प्रसिद्ध हो गया, और कूर्माचल की जनता अब भी मुनीन्द्र महाराज जी का नाम "हैडाखान वाले बाबा" ही जानती है।

मंदिर के सामने, गोतमगंगा के उस पार एक देवनिर्मित गुफा है, जो भीतर से बिलकुल मंदिर के समान प्रतीत होती है। उसके दो-तीन गज अन्दर जाकर ऊपर की तरफ देखने से मंदिर जैसा विशाल गुम्मज दृष्टिगोचर होता है। गुफा के दर्शन से ही चित्त परमप्रशान्त हो जाता है। इस पुण्य-क्षेत्र का वर्णन 'पुण्यस्मृति' में इस प्रकार दिया है :—

हैड़ाखान विचित्र है धामा। पावन अमित सुखद विश्रामा ।।
गोतमगंगा गर्जति निशदिन। सिद्ध सुरासुर अर्चत अनुदिन ।।

श्री कैलाश शिखर की शोभा। देखत ही मन उपजत लोभा ॥
तेहि गिरितल एक रम्य गुहा है। श्रुति प्रतिपाद्य गुहा ही महा है ॥
विविध प्रसून सुपल्लव सोहा। जानत सो जो नयनन जोहा ॥
वन मृग विहरत कानन माहीं। वैर परस्पर सकल भुलाहीं ॥
परम अहिंसा व्रत के धारी। श्री मुनिकृपा स्वभाव विसारी ॥
प्रभु जब से यहाँ कीन्ह निवासा। नंदन वन मानो लगत उदासा ॥
सुलभ सकल सुख क्षेत्र के सेये। काय वचन मन प्रभुपद देये ॥
श्री मुनि निज मुख करी बड़ाई। महिमा गुप्त जो प्रगटि जनाई ॥
निरखि मुनीन्द्र मनहिं अति भाये। कीन्ह निवास हरषि उर लाये ॥
परम पवित्र शान्त यह गिरिवन। आकर्षित हो साधक जनमन ॥
धन्य धन्य यह तीर्थ हमारा। जहाँ सचल शिव करत विहारा ॥

हैडाखान के अतिरिक्त इस कूर्माचल प्रदेश में श्री श्री सद्‌गुरुदेव जी के अनेकानेक आश्रम हैं—उदाहरणत:

(१) कटघरिया आश्रम (हलद्वानी)
(२) खुर्पाताल आश्रम (नैनीताल)
(३) सिद्धाश्रम (शीतलाखेत, अलमोड़ा)
(४) छेदू आश्रम (अलमोड़ा)

इसी प्रकार से, कूर्मांचल प्रदेश की कई गुप्त गुफाओं में श्री श्री सद्‌गुरु-देव ने तीन-तीन चार-चार सौ वर्ष तक एक आसन से बैठ कर उग्र तपस्या की है। अभी तक निम्नलिखित गुफाओं की खोज की जा चुकी है :—

(१) बाँसुली की गुफा (रानी बाग़ से आगे)
(२) सल्जाग्राम की गुफा (शीतला खेत)
(३) रिडँगी-द्वारसौं की गुफा।
(४) हैडाखान की गुफा।

(३) व्यक्तित्व-परिचय

श्री शिवपुराण में ब्रह्माजी ने अनेकानेक शिव-अवतारों का उल्लेख

किया है, जो वेद-शास्त्रों की प्रसिद्धि की हेतु योगी-महात्मा-संतों के रूप में अवतीर्ण हुए थे।

आदिकाल में ऋषिमुनियों में सनतकुमार, नारद, याज्ञवल्क्य, वशिष्ठ, पराशर, दत्तात्रेय, शुकदेव प्रभृति सिद्ध-योगी हुए।

मध्यकाल में गोविन्दाचार्य, जगद्गुरु शंकराचार्य, मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ, भर्तृहरि, समर्थ रामदास आदि योगविद्या के सिद्धाचार्य महापुरुष प्रगट हुए। हरिदास, तुलसीदास, सूरदास, वामाक्षेपा......

वर्तमान युग में भी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी रामतीर्थ, रमण महर्षि आदि महात्माओं का प्रादुर्भाव हुआ।

उत्तराखंड की पूण्यभूमि में तो शंकराचार्य-त्रोटकाचार्य की ज्योतिर्मठ की गुफाओं से लेकर, योगियों की यत्र-तत्र अनेक गुफा वर्तमान हैं। 'सिद्ध की गुफा' के नाम से तो उत्तराखंड में कई गुफा प्रसिद्ध हैं। विक्रम की बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में कूर्माचल में औघड़ बाबा तथा परमहंस बाबा—ये दो महात्मा बहुत प्रसिद्ध थे, और भुवाली तथा नैनीताल में इनके आश्रम रहे। पदमवोरी वाले सोमवारी बाबा (परमानन्दजी महाराज) भी सिद्धकोटि के परमयोगी हो चुके हैं—जिनका लगभग १९३० ईस्वी में शिवलोक-गमन हो चुका है।

सिद्ध-सिद्धेश्वर श्री श्री मुनीन्द्र महाराज का प्राकट्य बड़ा विलक्षण तथा अनुपमेय रहा है, जिनकी योगसंपदाएँ अतुलनीय एवं अवर्णनीय रही हैं। भारतदेश के अतिरिक्त योरुप आदि विदेशीय देशखंडों में भी उनके परम कृपामय चरित्र सुनने में आते रहते हैं। श्री पंडित रामदत्तजी ज्योतिर्विद् श्री श्री मुनीन्द्र महाराज की सहज योगारूढ़ अवस्था का निरूपण करते हुए कहते हैं:—"हैडाखान के महाराज सिद्ध योगी हैं। निर्विकल्प समाधि में स्थित ब्रह्मानन्द में मग्न रहने से बाह्य जगत् से नितान्त निर्लिप्त रहते हैं, तथा बहुत कम बोलते हैं।"

ऐसे ब्रह्मलीन अमर सिद्ध सिद्धेश्वर महात्मा का व्यक्तित्व कितना विल-

क्षण होगा—यह तो वही जान सकता जिसने एक बार भी स्वप्न में भी इनका दर्शन किया हो।

श्री श्री मुनीन्द्र महाराज का सारा शरीर दिव्य तेजपुंज से आलोकित रहता है। इनका शरीर खूब लम्बा है। सिर के बाल छोटे-छोटे हैं, जो उतने ही बड़े सदैव रहते हैं—बढ़ते-घटते नहीं हैं। उनकी आयु कभी भी पचास वर्ष से अधिक नहीं मालूम पड़ी। शारीरिक बल भी इनमें अतुलनीय है। बड़ी-बड़ी पर्वतीय चट्टानों को बिना प्रयास के ही उठा लेते हैं। पर्वतीय चढ़ाइयों में चलने पर उनकी साँस फूलती नहीं है, तथा उनको उस समय ज़ोर-ज़ोर से साँस लेते हुए किसी ने नहीं देखा। उनका शरीर इतना कोमल है, कि उनके शरीर को दाबने से ऐसा मालूम होता है—जैसे उनके शरीर में हड्डियों का नितान्त अभाव हो। शरीर को देखते हुए उनकी अवस्था सामान्यतया ५० वर्ष के लगभग मालूम पड़ती है, और पच्चीस-तीस साल तक जब तक कूर्माचल में उनकी लीला प्रगटरूप से होती रहीं, तब तक सभी लोगों ने उन्हें इसी अवस्था में देखा। वे न कभी दुर्बल दिखाई दिये और न रोगी। उनके बाहु बड़े विशाल हैं—जो घुटने तक लटकते हैं।

उनकी वेषभूषा भारत की पुरातन संस्कृति के अनुकूल है। वे शिखा-सूत्र धारण करते हैं। काषाय-वस्त्र धारण करते हुए आपको किसी ने नहीं देखा। सफेद कोपीन, धोती, लम्बा कुर्त्ता, चौवन्ती—जैसा अँगरखा (अथवा मिरजई) धारण करते हैं। सिर पर कानों तक का टोपा, अथवा कभी गज़-डेढ़-गज़ का कपड़ा पगड़ी जैसे लपेट लेते हैं। अधिकतर कूर्माचल के निवासियों ने श्री श्री मुनीन्द्र महाराज जी को इसी वेष-भूषा में देखा है। योरुप के विद्वानों ने श्री महाराज जी को जिस वेष-भूषा में देखा है—वह बड़ी विलक्षण है। सबसे पहले जब नील्स ओलफ क्रिसैण्डर ने फ्रान्स के एक होटल में इन्हें देखा था, तो वे योरोपीय वेष-भूषा में ही थे। तथा योरोपीय भाषा का प्रयोग भी खूब सहज में ही कर रहे थे। परन्तु जब मोस्को (रूस) में इनको तथा इनकी पत्नी को दर्शन दिये, तब ये इसी कुर्त्ता-टोपी से ही आभूषित थे।

भाषा का प्रयोग भी श्री सद्गुरुदेव का अत्यन्त विलक्षण है। वे बहुत

धीरे-धीरे बातें करते हैं। जिस भाषा का प्रयोग श्री महाराज करते हैं—वह कोई दिव्य भाषा है, जिसका अर्थ सब की समझ में आ जाता है। कूर्मांचल में वे पहाड़ी-नैपाली आदि का प्रयोग करते हैं। दूसरे प्रान्तों की भाषा भाषियों के लिये वे वहाँ की भाषा का प्रयोग करते हैं। दूसरे देशों अथवा दूसरे राष्ट्रों की भाषा भाषियों के लिये वे उन-उन राष्ट्रों की भाषाओं का प्रयोग सहज ही कर लेते हैं।

उनकी लेखन-शैली भी बड़ी विलक्षण है, और इससे भी यही विदित होता है कि वे पुराण-पुरुष हैं। ऐसा विदित होता है कि वे ब्राह्मी लिपि—जैसी प्राचीन लिपि का प्रयोग करते हैं। गुमानी-भक्त की रामायण के मुख-पृष्ठ पर जो अक्षर लिखे हुए मिले हैं—उनकी लिपि से यह बात पूर्णतः स्पष्ट हो जाती है। इस दिशा में अभी खोज अधूरी है, और ऐसी आशा है कि इस खोज के पूर्ण हो जाने पर नवीन-नवीन बातें प्रगट होंगी—जो जन-जीवन में विशेष आह्लादकारिणी सिद्ध होंगी।

जिस अवधि में कूर्मांचल वासियों में इनका चरित्र प्रगट रूप से होता रहा, उस समय श्री महाराज जी का नित्यकर्म परम आर्ष रहा। स्नान-संध्या के अतिरिक्त यज्ञ-याग-हवन तथा पंचाग्नितप में आपकी विशेष रुचि देखी गई। हैडाखान, पन्याली-कटघरिया तथा शीतलाखेत में इन्होंने शिवालय बनवाये। अनेक स्थानों में विल्ववृक्ष के नीचे चबूतरा बनवाकर शिव-लिंग स्थापित किये। तिलाज्य का हवन तो होता ही था, जल मिलाकर तिल-यव का हवन आपका अधिक प्रसिद्ध था। केवल जल की आहुति—घृत के स्थान में दी जाती थी। पूर्णाहुति में भी जलधारा घृत का काम देती थी। केवल दो या चार सेर जल की आहुति नहीं दी जाती थी—कभी कभी कई मन जल यज्ञाग्नि में समर्पित किया जाता था। जब इनका इस प्रकार का यज्ञ होता था, तब मीलों दूर के लोगों को आग की उठती हुई सात-आठ गज ऊँची शिखा दृष्टिगोचर होती थी। ग्रीष्मकाल में चारों ओर अग्नि जला कर आप पंचाग्नि तपते थे। एक जल का लोटा रख कर कोपीन धारण किये हुए, आसन पर श्री श्री सदाशिव सद्‌गुरुदेव बैठ जाते थे। चारों ओर से

अग्नि प्रज्वलित होकर बीच में मिल जाती थी। प्रचण्ड अग्नि के बीच में इनकी आकृति छिप जाती थी। कई घंटे पीछे, अग्नि के कुछ शान्त होने पर, जब श्री महाराज दिखाई देते थे, तब उनका श्रीविग्रह बाल-सूर्य के समान तेजस्वी दिखाई देता था। जल का लोटा इतना गरम हो जाता था कि यदि कोई उससे हाथ लगा देता था, तो हाथ बुरी तरह जल जाता था। श्री महाराज जी ने यत्र-तत्र और भी अनेक यज्ञ बड़ी धूमधाम से किये। कथा, सप्ताह, गीता, रामायण आदि के पारायण तथा प्रवचन अनेकानेक बार हुए। बड़े-बड़े भंडारे हुए। सैंकड़ों साधु-ब्राह्मण तथा अतिथि इन उत्सवों के अवसर पर नित्य भोजन पाते थे। कई तपस्वी लामा (अर्थात् तिब्बत के योग-साधक) आपके साथ कूर्माचल में देखे गये। पन्याली-कटघरिया में दो तांत्रिक लामा महीने भर आपके समीप एक छोलदारी में अनुष्ठान करते हुए देखे गये। जहाँ-जहाँ आप जाते थे, सर्वत्र ही दर्शकों की भीड़ लग जाती थी। मेवा-मिष्टान्नादि के ढेर लग जाते थे। कौन लाता है, कौन बँटवाता है, कौन खाता है—श्री महाराज जी को इस बात से कोई प्रयोजन नहीं रहता था। भेंट में बहुमूल्य वस्त्र भी सम्मिलित थे। उस समय यदि अच्छे प्रबन्धकर्त्ता पहुँच गये, तो यथोचित प्रबन्ध हो गया—अतिथियों को भोजन कराया गया, सत्पुरुषों को प्रसादी मिल गई, भेंट का द्रव्य यज्ञ, होम, कथा, पुराण, भंडारे आदि के उपयोग में आ गया। परन्तु यदि स्वार्थी भक्त प्रबन्ध-कर्त्ता पहुँचे, तो फलफूल, मिठाई, मेवा आदि की पोट बाँध कर अपने-अपने घर ले गये। केवल थोड़ा-थोड़ा प्रसाद वितरण कर दिया। श्री सदगुरुदेव जी की दृष्टि इस ओर बिलकुल नहीं रहती थी। श्री रामायण जी की भाषा में उनकी स्थिति अविचल ब्रह्मलीन रहती थी—

"उमा जे राम चरन रत विगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत केहिसन करहिं विरोध ॥"

श्री श्री मुनीन्द्र महाराज का श्री विग्रह कितना पुरातन है, और कितना तपःपूत है—यह अनेकानेक वार्ताओं से प्रमाणित है। एक समय एक भक्त ने श्री महाराज जी से प्रश्न किया कि आपकी पीठ पर जो घाव के निशान हैं—

उनका क्या कारण है ? श्री महाराज जी बोले, कि ये घाव महाभारत की लड़ाई में लगे थे। इस उक्ति से यह प्रमाणित होता है कि उनका शरीर द्वापर-युग का है, जिसको आज लगभग पाँच-सहस्र वर्ष व्यतीत हो गए हैं। धर्मराज युधिष्ठिर ने अपने राजसूय-यज्ञ के समय से जिस संवत्सर का प्रचलन किया था—वह युधिष्ठिर-संवत् आज लगभग ५००० है। इससे अनुमान होता है, कि श्री महाराज जी की आयु पाँच हज़ार वर्ष के भी ऊपर है। ऐसे पुरातन शरीर को धारण करने से श्री महाराजजी श्रीमद्‌भगवद्गीता की इस उक्ति को सिद्ध कर रहे हैं, कि ब्रह्मलीन संत जरा-मरण आदि दोषों से भी मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं, यथा—

"जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये।
ते ब्रह्मतद्‌विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम् ॥ ७॥ २९॥"

श्री मुनीन्द्र महाराज का व्यक्तित्व स्वयंप्रकाश सदाशिव स्वरूप है। 'पुण्यस्मृति' के परिचय से यह स्पष्ट है, कि श्री महाराज जी का व्यक्तित्व सारी योग-संपदाओं का समष्टिरूप है:—

"श्री महाराज जी ऐसे दयामय देव हैं, जिनकी चरण की शरण लेने पर संपूर्ण जीवन-यात्रा ही सुखपूर्वक सफल हो जाती है। अभी तक जितने भी श्रद्धालु भक्त श्री महाराज जी के शरणागत जीव मिले हैं—सब सुखी व शांत देखे गए हैं। लोक-प्रसिद्ध एकान्तवासी मुनि, प्रकृतिनिर्मित गिरिकन्दरा को ही अपना आवास माननेवाले तपस्वी, पृथ्वीमाता के दिये हुए अयाचित कंदमूलादि से ही जीवन-निर्वाह करनेवाले महा ओजस्वी, सिद्ध-ब्रह्मचारी, जिनकी चरणधूलि धारण करने मात्र से ही त्रिविध एषणा, लौकिक-पारलौकिक समस्त वासनाएँ नष्ट हो जाती हैं—ऐसे पतितपावन, मनस्वी, मेधावी, देश-काल से सर्वथा परे, पंचकोश एवं सप्तचक्र के विज्ञान तथा उत्थापन जिनकी कृपा से अनायास ही हो जाता है—ऐसे-ऐसे सद्‌गुरुओं की माला के एक सर्वाधिक उज्ज्वल मणिका हैं "श्री हैड़ाखान वाले बाबा"।"

चरित्र परिचय

जो स्वरूपतः ही अनन्त एवं अपरिमेय है—उनका चरित्र भी स्वभावतया अनन्त तथा अपरिमित है।

मानव की इन्द्रिय में इतनी ही सामर्थ्य है, कि वह किसी एक स्थान के चरित्रों को ही ग्रहण कर सकती है। और जिनकी लीला स्थान-स्थान में होती रहती हो—उनकी लीलाओं के विषय में तो वही कहा जा सकता है, कि हमारे नेत्र देखते तो कम हैं, परन्तु उस अपरिमित लीला से हमारा सत्व आश्चर्य-चकित अवश्य हो जाता है, और किसी भी घटनाक्रम का ठीक-ठीक वर्णन करना नितान्त कठिन अनुभव होता है।

जब कभी ऐसे मनुष्यों के अनुभव सुनने में आते हैं—जिनकी आयु डेढ़ सौ वर्ष से ऊपर की हो, तो हमें विश्वास तो होता है, कि कितने-कितने परिवर्त्तन तथा घटनाचक्र उस दीर्घायु मनुष्य ने अपने जीवनकाल में देखे हैं—कितने-कितने राज्यों का पराभव, कितने-कितने नवीन राष्ट्रों का उत्थान तथा कितने-कितने युद्धों का चलचित्र उनके नेत्रों के सामने से निकल चुका है ! चिरपरिचित मित्र तथा बांधव दृष्टि से ओझल हो चुके !! नवीन-नवीन मिलने वालों से परिचय होता जाता है—जिनका विविध नाट्य भी प्रारब्ध के अनुसार चलता रहता है, और चलता रहेगा !!! वास्तव में, दीर्घायुष्य भी महान् अनुभव का स्रोत है, जिसको हम छोटी-छोटी आयु के मानव ग्रहण करने में सर्वथा असमर्थ हैं।

इसीलिए जब हम सप्त-अमर-चिरंजीवी मुनियों का ध्यान करते हैं, तो उनका चरित्र हमारे मानस में सहसा कैसे आ सकता है ? अमर-सिद्ध लोमश ऋषि के दर्शन जब किसी प्रेमी भक्त को नैमिषारण्य में होते हैं, तो हम उसके नेत्रों पर विश्वास भी करने में संकोच करते हैं। उस समय हमें अपनी असामर्थ्य पर विश्वास होता है, कि हमारी सामर्थ्य कितनी क्षुद्र-कोटि की है। हमारी यह क्षुद्र सामर्थ्य वास्तव में बड़े हास्यरस की वस्तु है।

संत ज्ञानदेवजी अपने गीता के 'ज्ञानेश्वरी' भाष्य में लिखते हैं, कि

'जन्म लेना' सम्मानित व्यक्ति के लिए बहुत ही अपमानजनक बात है, क्योंकि मांस-रुधिर-मेद आदि से घिरे हुए गर्भवास में नौ-दस महीने रहना, फिर मूत्र-मार्ग से बाहर निकलना, फिर पसीने आदि से भीगे हुए स्तनों का पान करना—कोई भी सम्मानित व्यक्ति घोर अपमान की बात मानता है। इसी-लिए जन्म लेनेवाले लज्जाशील मनुष्य—'आगे जन्म न लेना पड़े'—इस बात के लिए सतत प्रयत्न में रहते हैं।

संत ज्ञानदेवजी आगे लिखते है, कि अमूल्य मनुष्य शरीर प्राप्त करके 'मृत्यु' द्वारा पराभूत हो जाना—यह बड़ी भारी अपमानजनक हार है। क्योंकि जैसे क्षुद्र पशुओं के लिए यह कह दिया जाता है, कि अमुक कुत्ता मर गया, अथवा अमुक बिल्ली मर गई, इसी प्रकार किसी सम्मानित व्यक्ति (मनुष्य) के लिए यदि यह कह दिया जाय, कि अमुक व्यक्ति मर गया, तो उसके सम्मानित जीवन के लिए यह बड़ा भारी आघात होगा। अतएव जिन व्यक्तियों को मनुष्य-शरीर में अमूल्य रत्नभंडार, अथवा अपरिमित 'कुबेर-कोष' भान होता है, वे 'मृत्यु' से हार नहीं मानते, और अमरत्त्व की दिशा में सतत प्रयत्न करते रहते हैं। इसीलिए जब आशुतोष शंकर भगवान् प्रगट होकर लोमश ऋषि को वरदान देने के लिए प्रस्तुत हुए, तो चतुर लोमश ऋषि ने 'नहीं मरने' का ही वरदान माँगा।

जिन जीवों को विषयों के रस का ही एक मात्र अनुभव है, वे महात्माओं-द्वारा अनुभूत ब्रह्मानन्द के रस को समझने में असमर्थ हैं। क्योंकि यह आनन्द विषयातीत है। विषयों के स्पर्श से इस आनन्द का कोई संबंध नहीं है। प्राकृतरूप से समझने के लिए, महात्मालोग इस तरह समझाते हैं, कि जैसे अधिक मिश्री मिला हुआ शरबत पी लेने के बाद, कम मिश्री मिला हुआ शरबत पीने से फ़ीका मालूम पड़ता है, यद्यपि इस में भी मिश्री का मीठापन अवश्य है, इसी प्रकार एक बार ब्रह्मानन्द का अनुभव कर लेने के बाद, जो जीव विषय के रस को चखते हैं, उन्हें विषयों का रस फ़ीका लगता है, और वे स्वाभाविकरूप से ही उसका आस्वादन करना छोड़ देते हैं। फिर जैसे-जैसे विषयों के रस से स्वाभाविक उपरति, और ब्रह्मानन्द के अनुभव की स्वाभाविक दृढ़ता

होती जाती है, वैसे-वैसे जीव 'सिद्ध' कोटि में पहुँच जाता है। वशिष्ट जीने भी 'रामचरितमानस' में जीव की श्रेणियों का इसी प्रकार से वर्णन किया है—

'विषयी साधक सिद्ध सयाने। त्रिविध जीव जग वेद बखाने॥' केवल विषयरस को ही एकमात्र रस मानकर उत्कृष्ट से उत्कृष्ट विषयरस—अर्थात् स्वर्गादि के भोगों को प्राप्त करने की कामना से, जो कर्मादि में प्रवृत्त होते हैं—वे **विषयी जीव** हैं। जो विषयरस से विमुख होकर, ब्रह्मानन्दरस का आस्वादन करने में सतत प्रयत्नशील रहते हैं, तथा इस मार्ग की विघ्नबाधाओं को वीरतापूर्वक सहन करते हैं—वे **साधकजीव** हैं। और जो ब्रह्मानन्द की प्राप्त कर लेते हैं, तथा इसी आनन्द में लीन रहते हैं, और जिनको इसके अतिरिक्त और किसी वस्तु की अभिलाषा नहीं रहती—वे **सिद्धजीव** हैं।

इस प्रकार के सिद्धजीव सृष्टि के प्रारम्भ से ही होते रहे हैं, और आगे भी होते रहेंगे। फिर भी जैसे यह बात स्पष्ट है कि मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद् यतति सिद्धये (अर्थात् सहस्रों मनुष्यों में कोई-कोई ही ऐसा होता है जो सिद्ध-कोटि के लिये सतत प्रयत्नशील हो), उसी प्रकार सहस्रों सिद्धों में ही कोई **सिद्धेश्वर-पद** प्राप्त करता है।

'सिद्ध-जीव' सहज आनन्द में मग्न रह कर, अपने में तथा प्रकृति के अणु-अणु में उसी चिर नवीन आनन्द का रसास्वादन करते रहते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ने ऐसे ही सिद्ध-जीव का हरिगीता के अन्तर्गत उल्लेख किया है।

'सिद्धेश्वर' पद के आनन्द की भूमिका का वर्णन नितान्त दुःसाध्य है। केवल इतना ही कहा जा सकता है, कि सदाशिव शंकर भगवान् ही सिद्धेश्वर-पद की आनन्द भूमिका पर सदैव आसीन रहते हैं, तथा करोड़ों कृपामयी धाराएँ उनमें से उमड़ती हुई चारों ओर चलती हैं—जो कर्मनिष्ठ उपासनानिष्ठ और ज्ञाननिष्ठ जीवों को सिद्धि प्रदान करती रहती हैं, तथा अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष आदि फलों को देती रहती हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण ऐसे सिद्ध-महात्माओं की जीवनचर्या का वर्णन (हरि-गीता में) करते हुए कहते हैं, कि वे वायुलोक, चन्द्रलोक आदि में विचरण करते रहते हैं। कभी आनन्दमग्न होकर वायु जब सुन्दर पुष्पों में से सुगन्धि तथा पराग लेकर भागती है, तब वे सुगंधि के साथ-साथ विचरण करते हैं। ग्रीष्मकाल में, ऊष्मा से तपी हुई भूमि पर जब मेघ-मालाओं से उतरकर सहस्रों बिन्दु विरह-व्याकुल बालुका को स्नेह-स्पर्श से भिगोते हैं, तब वे इन बिन्दुओं में विचरण करते हैं। इस प्रकार इनकी जीवनचर्या अनन्त विश्व में दिव्य-आनन्द में नित्य विहार करने में लगी रहती है—जैसे (इनके लिए) सारे विश्व में जड़ता का नितान्त लोप हो गया हो, और शुद्ध चेतन का नित्यरास अणु-अणु में चल रहा हो। ऐसे अपूर्व अनुपमेय ब्रह्मानन्द में वे मग्न रहते हैं। न वहाँ जरा है, न मरण है। कभी पक्षियों के सुस्वर कण्ठ में आसीन होकर भगवान् के श्रीनाम की रट लगाते हैं। कभी आचार्यपाद की वाणी में आसीन होकर शिष्य की शंकाओं का समूल उच्छेदन करते हैं, तथा उनके साधन का निर्माण करते हैं। ऐसे सिद्ध-संतों का जीवन-वृत्त वर्णन करना अनन्त भगवान् के लिए भले ही साध्य हो, किन्तु हम-जैसे असमर्थ मानव किस प्रकार कर सकते हैं ?

श्री रामचरितमानस में सिद्ध सिद्धेश्वर संतों की जीवनचर्या का उल्लेख (श्री राघवेन्द्र के उपवन-विहार के अवसर पर) गुसाँई जी ने सनक आदि ऋषियों के लिए किया है। श्री सनकादिक सिद्ध-महात्मा हैं, तथा अमर हैं। उनका श्री विग्रह सदैव बालवत् है, और ब्रह्मानन्द में नित्य मग्न रह कर वे साधक जीवों को समाधान–तथा–सिद्धि का मार्ग प्रदान करते रहते हैं। गुसाँई जी कहते हैं:—

जानि समय सनकादिक आये। तेजपुंज गुनसील सुहाये ॥
ब्रह्मानन्द सदा लय लीना। देखत बहु कालीना ॥
रूप धरें जनु चारिउ वेदा। समदरसी मुनि विगत विभेदा ॥
आसा बसन ब्यसन यह तिन्हहीं। रघुपति चरित होइ तहँ सुनहीं ॥
तहाँ रहे सनकादि भवानी। जहँ घट संभव मुनिवर ग्यानी ॥
राम-कथा मुनिवर बहु बरनी। ग्यान जोनि पावक जिमि अरनी ॥

(उत्तरकाण्ड)

परम भागवतों के मुख से श्री भगवान् की कथा सुनते-सुनते सिद्ध-महात्मा कभी तृप्त नहीं होते। श्री आशुतोष शंकर भगवान् हंसपक्षी का स्वरूप रख कर कागभुशुण्डिजी के आश्रम में श्री रामकथा श्रवण करने के लिए जाते रहते हैं। श्री मारुतिजी तो करोड़ों शरीर धारण करके जहाँ-जहाँ श्री रामकथा होती है—वहीं कथा श्रवण करने पहुँच जाते हैं। वास्तव में सिद्ध महात्मागण अत्यन्त कथा-रसिक होते हैं, और कथा-श्रवण से जो रस उन्हें प्राप्त होता है वह अकथनीय है।

जिनका चरित्र अनादि और अनन्त है—ऐसे श्री श्री मुनीन्द्र महाराज का चरित्र कहाँ से प्रारम्भ किया जाय? कूर्माचल में भी इनका चरित्र लगभग तीस वर्ष तक बड़ा ही दिव्य तथा चमत्कारपूर्ण रहा। सबसे प्रथम ये कहाँ पर प्रगट हुए—यह नहीं कहा जा सकता। सन् १८९० ई० से सन् १९२० तक की अवधि में अनुमानतः इनका प्रत्यक्ष चरित्र कूर्माचल वासियों को उपलब्ध हुआ। इस अवधि में इनकी गतिविधि का घटनाक्रम संकलित न हो सका। कोई तो इनका प्रथम प्राकटन भीमताल के बाँध के अवसर पर बताते हैं। कोई कहते हैं कि पहले-पहले इनके दर्शन हैडाखान की गुफा में हुए। फिर किसी-किसी की धारणा यह भी है कि श्री श्री मुनीन्द्र महाराज द्यौला ग्राम में पहले-पहल (गुमानी भक्त के निमित्त) प्रगट हुए थे। और किसी किसी महानुभाव की ऐसी धारणा है, कि श्री महाराज जी नैपाल की ओर से पधारे थे, जहाँ पर्वत की विशाल कन्दराओं में इनका सहज आवास है।

श्री श्री मुनीन्द्र महाराज की अन्तरंग तथा बहिरंग लीलाएँ आपस में ऐसी गुथी हुई हैं कि उनका अलग-अलग वर्णन करना नितान्त कठिन है। सिद्ध संतों की अथवा सिद्धावतार श्री साम्ब सदाशिव की लीलाएँ, चाहे वे प्राकृत पुरुष के सदृश ही आचरण करते हुए विहार करें, सहज अलौकिक ही होती हैं। गंगाजी का जल चाहे किसी पात्रविशेष में आवद्ध कर लें, किन्तु उसकी पवित्रता तथा दिव्यता अक्षुण्ण ही रहती है। प्रसंगवश उनकी दिव्यलीलाओं को ठीक तरह से ग्रहण करने

के उद्देश्य से महाभारत काल के एक सिद्ध संत के चरित्र पर दृष्टिपात करते हैं—जिनका वर्णन श्रीकृष्ण भगवान ने स्वयं अपने श्रीमुख से अर्जुन के प्रति 'हरिगीता' में किया है। कोई नहीं जानता, कि कहीं ये ही संत सिद्ध सिद्धेश्वर श्री मुनीन्द्र महाराज ही हों, और युग-युग में एकमात्र अनुग्रह करने के लिए प्रगट होकर गिरिवन में भटक-भटक कर लोक-संग्रह करते हों, अथवा आध्यात्ममार्ग को सुगमातिसुगम बनाते रहते हों!!!

"एक अनुग्रह करि-जग प्रगटे। दयाधीन है गिरिवन भट के।"

'पुण्यस्मृति' सिद्ध संत के विषय में जो 'हरिगीता' में प्रसंग है—उसका संक्षिप्त उद्धरण इस प्रकार है :—

"प्राचीन समय में काश्यप नाम के एक धर्मात्मा तपस्वी ब्राह्मण किसी सिद्ध ब्रह्मर्षि के पास गये। ये ब्रह्मर्षि धर्म के विषय में शास्त्र के संपूर्ण रहस्यों को जानने वाले, भूत और भविष्य के ज्ञान-विज्ञान में प्रवीण, लोक-तत्त्व के ज्ञान में कुशल, सुख-दुःख के रहस्य को समझने वाले, जन्म-मृत्यु के तत्त्वज्ञ, पाप-पुण्य के ज्ञाता और प्राणियों को कर्मानुसार प्राप्त होने वाली ऊँची-नीची गति के प्रत्यक्ष द्रष्टा थे। वे मुक्त की भाँति विचरण करने वाले, सिद्ध, शान्तचित्त, जितेन्द्रिय, ब्रह्मतेज से देदीप्यमान, सर्वत्र जा सकने वाले, और अन्तर्धान होने की विद्या को जानने वाले थे। अदृश्य रहने वाले चक्रधारी सिद्धों के साथ विचरते, बात-चीत करते, और उन्हीं के साथ एकान्त में बैठते थे। जैसे वायु कहीं आसक्त न होकर सर्वत्र प्रवाहित होती है, उसी प्रकार वे स्वच्छतापूर्वक अनासक्त भाव से सर्वत्र विचार करते थे। महर्षि काश्यप उनकी उपर्युक्त महिमा सुन कर ही उनके पास गये थे। निकट जाकर उन मेधावी, तपस्वी, धर्माभिलाषी और एकाग्रचित्त महर्षि ने न्यायानुसार उस सिद्ध महात्मा के चरणों में प्रणाम किया। वे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ और बड़े अद्भुत संत थे। उनमें सब प्रकार की योग्यता थी। वे शास्त्र के ज्ञाता और सच्चरित्र थे। उनके दर्शन करके काश्यप को बड़ा विस्मय हुआ। वे उन्हें गुरु मानकर उनकी सेवा में लग गये; और अपनी विशेष सुश्रूषा, गुरुभक्ति और श्रद्धाभाव के द्वारा

उन्होंने उन महात्मा को संतुष्ट कर लिया। तत्पश्चात् अपने शिष्य काश्यप के ऊपर प्रसन्न होकर उन सिद्ध महर्षि ने परासिद्धि के संबन्ध में विचार करके जो उपदेश किया, उसे बताता हूँ—सुनो।

'सिद्ध ने कहा—तात काश्यप! मनुष्य नाना प्रकार के शुभ कर्मों का अनुष्ठान करके केवल पुण्य के संयोग से इस लोक में उत्तम फल और देवलोक में स्थान प्राप्त करते हैं। जीव को कहीं भी अत्यन्त सुख नहीं मिलता। किसी भी लोक में वह सदा नहीं रहने पाता। तपस्या आदि के द्वारा कितने ही कष्ट सहकर बड़े से बड़े स्थान को क्यों न प्राप्त किया जाय, वहाँ से भी बार-बार नीचे आना ही पड़ता है। मैंने काम-क्रोध से युक्त तृष्णा से मोहित होकर अनेकों बार पाप किये हैं, और उनके फलस्वरूप घोर कष्ट देने वाली अशुभ गतियों को भोगा है। बार-बार जन्म और बार-बार मृत्यु का क्लेश उठाया है। तरह-तरह के पदार्थ भोजन किये, और अनेकों स्तनों का दूध पिया है। बहुत से पिता और भाँति-भाँति की माताएँ देखी हैं। विचित्र-विचित्र सुख-दुःखों का अनुभव किया है। कितनी ही बार मुझ से प्रियजनों का वियोग और अप्रिय मनुष्यों का संयोग हुआ है। जिस धन को मैंने कष्ट सहकर कमाया था, वह मेरे देखते-देखते नष्ट हो गया है। राजा और स्वजनों की ओर से मुझे कई बार बड़े-बड़े कष्ट और अपमान उठाने पड़े हैं। अत्यन्त दुःसह शारीरिक और मानसिक वेदनाएँ सहनी पड़ी हैं। मैंने अनेकों बार घोर अपमान, प्राणान्त दण्ड और बड़ी क़ैद की सज़ाएँ सही भोगी हैं। नरक में पड़ कर यमलोक की यातनाएँ सही हैं। इस लोक में जन्म लेकर बारम्बार बुढ़ापा, रोग और रागद्वेष आदि द्वंद्वों के दुःखों का अनुभव किया है। इस प्रकार बारम्बार क्लेश उठाने से एक दिन मेरे मन में बड़ा संताप हुआ, और मैंने दुःखों से घबरा कर परमात्मा की शरण ली, तथा समस्त लोक-व्यवहार का परित्याग कर दिया। इस तरह अनुभव के पश्चात् मैंने इस मार्ग का आश्रय लिया है, और परमात्मा की कृपा से मुझे यह उत्तम सिद्धि प्राप्त हुई है। अब मैं पुनः इस संसार में नहीं आऊँगा। जब तक यह सृष्टि कायम रहेगी, और जब तक मेरी मुक्ति नहीं हो जायेगी, तब तक मैं अपनी और दूसरे प्राणियों की शुभ गति का

अवलोकन करूंगा। द्विज श्रेष्ठ ! इस प्रकार मुझे यह उत्तम सिद्धि मिली है। इसके बाद मैं उत्तम से उत्तम सत्यलोक में जाऊँगा, और क्रमशः अव्यक्त ब्रह्मपद को प्राप्त कर लूँगा। इसमें तुम्हें तनिक भी सन्देह नहीं करना चाहिए। अब मुझे मर्त्यलोक में नहीं आना पड़ेगा। महामते ! मैं तुम्हारे ऊपर बहुत प्रसन्न हूँ। बोलो, तुम्हारा कौन-सा प्रिय कार्य करूँ ? तुम जिस इच्छा से मेरे पास आये हो, उसके पूर्ण होने का यह समय आ गया है। तुम्हारे आने का उद्देश्य क्या है—इसे मैं जानता हूँ। मैं शीघ्र ही यहाँ से जाने वाला हूँ, इसलिए स्वयं तुम्हें प्रश्न करने के लिए प्रेरित कर रहा हूँ। विद्वन्, तुम्हारे उत्तम आचरण से मुझे बड़ा संतोष है। तुम अपने कल्याण की बात पूछो, मैं तुम्हारे अभीष्ट प्रश्न का उत्तर दूँगा। काश्यप ! मैं तुम्हारी बुद्धि की सराहना करता हूँ और उसे बहुत आदर देता हूँ। तुमने मुझे पहचान लिया है, इसी से कह रहा हूँ, कि तुम बड़े बुद्धिमान हो।

'काश्यप ने पूछा—महात्मन्, यह शरीर किस प्रकार गिर जाता है ? फिर दूसरा शरीर कैसे प्राप्त होता है ? संसारी जीव किस तरह इस दुःखमय संसार से मुक्त होता है ? वह मूल-अविद्या और उससे उत्पन्न होने वाले शरीर का कैसे त्याग करता है ? और एक शरीर से दूसरे में वह किस प्रकार प्रवेश करता है ? मनुष्य अपने किये हुए शुभाशुभ कर्मों का फल कैसे भोगता है ? और शरीर न रहने पर उसके कर्म कहाँ रहते हैं ? काश्यप के इस प्रकार पूछने पर सिद्ध महात्मा ने उनके प्रश्नों का क्रमशः उत्तर देना प्रारम्भ किया....आदि।

श्री श्री मुनीन्द्र महाराज जी का कूर्माचल प्रदेश में पच्चीस-तीस साल का क्रमबद्ध विचरण का नियमित विवरण बड़ी खोज करने के बाद भी प्राप्त नहीं हो सका है। (और शायद संभव भी विदित नहीं होता), इसी लिये उनके चरित्र के सम्बन्ध में कतिपय घटनाओं को प्रगट करने में ही संतोष मानना पड़ता है।

(५) कतिपय अलौकिक घटनाएँ

(१)

भावर छखाता गोला नदी के पार हलद्वानी (ज़िला नैनीताल) से लगभग ढाई मील दूर (पूर्व दिशा में) दरौला नामक ग्राम है। वहाँ ठाकुर गुमान सिंह नौला (गुमानी भक्त) नाम के एक भावुक भक्त रहते थे। यौवन में पदार्पण करने के बाद, जब उनके यहाँ पुत्र उत्पन्न हुआ, तब इनको संसार से उत्कट वैराग्य हो गया। एक बार कुछ वहीं के पहाड़ी यात्रियों के साथ वे हरिद्वार गये, और अपने सभी साथियों से अलग होकर एक महात्मा के आश्रम में तत्परता के साथ सेवा-सुश्रूषा के काम में जुट गये। परिश्रम तथा सेवा-परायणता का भाव उन में इतना उत्कट था, कि वे बहुत कम सोते थे, और उनका दिन-रात महात्मा जी की सेवा में ही व्यतीत होता था। कालान्तर में हलद्वानी से कुछ और यात्री हरिद्वार गंगा-स्नान के लिये गये। उन्होंने गुमानी भक्त को उन महात्मा के आश्रम में पहचान लिया, तथा महात्मा जी से यह आग्रह किया कि वे गुमानी को आश्रम में न रखें, तथा उन्हें घर लौट जाने की आज्ञा दे दें। उन्होंने बताया कि गुमानी की स्त्री तथा पुत्र उनके लौटने की बड़ी प्रतीक्षा कर रहे हैं, तथा उनके लिये बड़ा विलाप करते हैं। गुमानी की सेवावृत्ति से तथा उनके असीम श्रद्धाभाव से महात्मा इतने प्रभावित थे कि उनको पृथक् करने में महात्मा को बड़ा संकोच हो रहा था। परन्तु उन्होंने यही उचित समझा, कि उनको घर भेज दिया जाय। उन्हों ने आज्ञा भी दे दी। गुमानी बहुत रोये; तथा महात्मा जी से विनय की, कि मुझे अपने चरण की शरण में ही स्थान दें। महात्मा ने इन्हें सान्त्वना दी, तथा आश्वस्त किया कि तुम घर पर ही भजन-साधन करते रहना। घर पर ही तुम्हें एक सिद्ध महात्मा दर्शन देकर कृतार्थ करेंगे।

गुमानी घर चले आये, और अपनी खेती-बारी में मन लगाने लगे। एक दिन सायंकाल में घर के पास ही पेड़ के नीचे इन्हें श्री श्री मुनीन्द्र महाराज जी के दर्शन हुए। श्री महाराज जी सहज भाव से खड़े हुए थे,

और वे गुमानी की ओर देख रहे थे। उनके मुखमण्डल पर माणिक्य की सी आभा थी। उनका शरीर नवीन जपाकुसुम की तरह कोमल तथा शुभ्र था। उनकी मुख-मुद्रा अत्यन्त सौम्य तथा अलौकिक थी। इतना लंबा शरीर गुमानी ने अभी तक अपनी आँखों से नहीं देखा था। एकाएक इनको देखकर गुमानी बड़े आतंकित हो गये, और महाराज जी से पूछने लगे—"आप कौन हैं, और यहाँ क्यों खड़े हुए हैं?" श्री महाराज जी इन्हें आतंकित देखकर चले गये, तथा कुछ दूरी पर एक वृक्ष के नीचे शिलाखंड पर बैठ गये। थोड़ी देर बाद गुमानी की बुद्धि जब प्रकृतिस्थ हुई, तब उन्होंने महाराज जी को पहिचाना, और हरिद्वार के महात्मा के वचन उन्हें स्मरण हो आये। वे बड़े भाव से श्री महाराज जी के चरणों में पहुँचे, और सदा के लिये शरणापन्न हो गये।

श्री महाराज जी की सेवा गुमानी भक्त ऐसी एकनिष्टता से करते थे—जैसे कोई भक्त अपने इष्ट श्री विग्रह की पूजा अष्टयामिक करता हो, अथवा जैसे भाव-समाधि में डूबी हुई गोपी उन्मत्त अवस्था में दधि की मटुकी सिर पर रख कर गिरधर को बेच रही हो। श्री महाराज जी सद्योजात शिशु की तरह बैठे रहते थे। और गुमानी भक्त निरन्तर अष्टयाम की सेवा में निरत रहते थे। भोजन में श्री श्री मुनीन्द्र महाराज केवल मठा ही स्वीकार करते थे। इसलिये गुमानी भक्त भी सिर्फ़ मठा पीकर ही रहते थे। थोड़े समय में चारों ओर यह बात फैल गई, कि गुमानी एक पागल की खूब सेवा करता है, और बड़ा भारी मूर्ख है।

कुछ समय पश्चात्, गुमानी ने श्री महाराज जी से आग्रह किया, कि आप मेरे घर पर पधार कर मुझे अनुगृहीत कीजिये। गुमानी भक्त ने महाराज जी के लिये एक फूस की झोंपड़ी बना ली। यह झोंपड़ी उनके घर से बिलकुल सटी हुई थी। उसमें श्री महाराज जी रहने लगे। गुमानी उस झोंपड़ी के किवाड़ सदैव बन्द रखते थे—जिससे श्री महाराज जी के ध्यानादि में अनावश्यक विघ्न न पड़े। नियत समय पर ही, जब भोजन-प्रसाद का समय होता था, तभी अपने हाथ से किवाड़ खोल कर श्री महाराज की सेवा में डूब जाते थे।

जब श्री महाराज ने इतनी कृपा की, कि गुमानी की बनाई हुई कुटी में रहने लगे, तो उसने सोचा कि श्री महाराज जी का छाछ से पेट न भरता होगा। घर पर आकर यदि कोई संत भूखा रहे, तो कितनी बुरी बात है ? यह विचार कर इन्होंने महाराज जी से निवेदन किया, कि आप रोटी खाना आरम्भ कर दें, तो बड़ी कृपा होगी—क्योंकि जिस प्रकार बिना रोटी खाये हमारा पेट नहीं भरता है, उसी प्रकार आपका भी पेट छाछ से अतृप्त ही रहता होगा !! परम कृपामय श्री श्री मुनीन्द्र महाराज ने भक्त को प्रसन्न करने के लिये रोटी खाना प्रारम्भ कर दिया।

गुमानी के घर एक महात्मा को टिके हुए देख कर, कुछ लोग यह कह कर इनकी हँसी उड़ाते थे, कि गुमानी बुद्धू है, और बेकार में एक पागल को अपने घर पर ठहराये हुए है—जो साफ़-साफ़ न तो पहाड़ी ही बोल सकता है, न हिन्दी ही। परन्तु जो श्री महाराज जी की अपार योग-संपदाओं से थोड़े बहुत भी परिचित थे, वे अधिकतर गुमानी की कुटिया पर ही बने रहते थे। जब से श्री महाराज जी यहाँ रहने लगे, तब से गुमानी के यहाँ प्रतिदिन लोगों का आना-जाना बना ही रहता था। गुमानी इन आने वाले अभ्यागतों का हृदय से सत्कार करते थे, और अपने-आपको धन्य समझते थे। मध्यम श्रेणी का होने के कारण इनका संचित किया हुआ नाज तथा द्रव्य पर्याप्त मात्रा में समाप्त हो गया था। इनकी पत्नी दूरदर्शी थीं। उन्होंने इस स्वागत-सत्कार की कुछ मर्यादा बाँधनी चाही, पर गुमानी पर कोई प्रभाव न पड़ सका। बहूजी क्रुद्ध होकर अपने पीहर चली गईं। वे अपने बच्चे को भी साथ लेती गईं, और यह कह गईं—कि इस प्रकार सब घर नष्ट हो जाएगा, और यह सब आँखों के सामने होता हुआ मुझसे नहीं देखा जाता है। गुमानी भक्त अकेले रह गये। परन्तु इससे उनके सेवाव्रत में, तथा अभ्यागतों के प्रति आदर-सत्कार में कोई त्रुटि नहीं आई।

इन्हीं दिनों की बात है—जब श्री महाराज जी गुमानी की कुटिया में रहते थे, तथा गुमानी उस कुटिया के किवाड़ बाहर से सदैव बन्द रखते थे—

रानीबाग़ में चित्रशिला वाले चित्रेश्वर महादेव के मंदिर में विचित्र घटना प्रति दिन घटती थी। सुबह पाँच बजे, जब पुजारी मंदिर का ताला खोल कर पूजा के लिये प्रवेश करता था, तब उसे ऐसा भान होता था कि मनोहारी सुगंधि से मंदिर का आकाश सुवासित हो रहा है। चंदन तथा मालाओं से चित्रेश्वर-शिव का शृङ्गार बड़ा अलौकिक किया हुआ है। इन सब बातों से उसे यह अनुमान होता था, कि मुझसे पहले, कोई भक्त यहाँ आकर, शिवार्चन करके चला जाता है। बहुत दिनों तक तो पुजारी ने विशेष ध्यान नहीं दिया, परन्तु जब प्रतिदिन ही नवीन-नवीन शृङ्गार तथा दिव्य-गंध का मंदिर में भान होता, तो वह यह सोचने लगा, कि मुझसे पहले देवता अथवा गंधर्व मंदिर में आकर पूजा कर जाते हैं। देवतादिक के प्रवेश में ताला बाधा नहीं दे सकता। उसकी यह धारणा दृढ़ होती जा रही थी, कि एक दिन सहसा उसके मन में आया, कि छिपकर उस शिवभक्त के दर्शन करने चाहिये, जो ठीक ब्रह्ममुहूर्त में इतने प्रगाढ़ भाव से शिवार्चन करता है। रातभर चोर की तरह जागकर पुजारी ने पहरेदारी की। तीन बजे के लगभग पास ही बहने वाली गोतम गंगा में किसी व्यक्ति की स्नान करने की आहट सुन पड़ी। उस समय सावधान चित्त से पुजारी प्रतीक्षा करने लगा। थोड़ी देर में उसने देखा कि कोई बड़े लम्बे क़द का व्यक्ति हाथ में पूजा की सामग्री लिये हुए चला आ रहा है। बड़ी उत्सुकता से उसकी दृष्टि नवागन्तुक व्यक्ति पर जमी हुई थी। थोड़ी देर में नवागन्तुक मंदिर के किवाड़ के पास पहुँचा, जिसमें एक बड़ा-सा ताला लगा हुआ था। वहाँ पहुँचते ही ताला अपने-आप खुल गया, तथा साँकल भी अपने-आप खुल गई। किवाड़ें भी कुछ आवाज़ करती हुई अपने-आप खुल गईं। आगन्तुक महोदय मंदिर में प्रविष्ट हुए। बड़े प्रेम से प्रभु की पूजा की। यह सब काम लगभग एक घंटे में पूरा हुआ। फिर वे मंदिर के बाहर निकले। किवाड़ें अपने-आप जुड़ गईं। साँकल व ताला भी अपने-आप लग गये। पुजारी ने सहसा अब पहिचाना, कि आगन्तुक महोदय श्री श्री मुनीन्द्र महाराज ही हैं। उसने गद्गद् भाव से श्रीचरणों में दण्डवत् प्रणाम की, और अपने-आपको धन्य माना। उसने पहले भी श्री महाराज जी की योग-संपदाओं के विषय में बहुत-कुछ सुन रखा था, परन्तु

शिव-भगवान् के प्रति ऐसी अविचल प्रीति प्रत्यक्ष देख कर वह स्तम्भित रह गया।

इधर कुछ समय पश्चात् गुमानी की सारी संपत्ति तथा नाज समाप्त हो गया। अकेले-राम तो रह ही गये थे। एक दिन खेत में घूम रहे थे, कि अनायास ही एक व्यक्ति कंधे पर हल रखे हुए इन्हें अपनी ओर आता हुआ दिखाई दिया। गुमानी अपने रंग में इतने डूबे रहते थे, कि इन्होंने यह समझा, कि साक्षात् बलदाऊ जी (श्री कृष्ण भगवान् के अग्रज) कंधे पर अपना 'हल' आयुध रक्खे हुए चले आ रहे हैं। गुमानी ने बड़े प्रेम से इन्हें दण्डवत् की, और जब उस कृषक ने इन्हें समझाया, कि भाई, मैं तो एक सामान्य कृषक हूँ, और काम की खोज में इधर-उधर फिर रहा हूँ, तब भी गुमानी को उसकी बात पर विश्वास नहीं हुआ। गुमानी ने पूछा—"तुम्हारा घर कहाँ है ?" उस कृषक ने उत्तर दिया—"भैया, मेरा घर कहीं नहीं है, मैं एक बहुत ही ग़रीब आदमी हूँ।" यह उत्तर सुनकर तो गुमानी प्रेम-विह्वल हो गये, और कहने लगे, कि प्रभु, मुझे भुलावे में मत डालिये। आप साक्षात् बलदाऊ जी हैं—क्योंकि आपका घर सब जगह है !!

बड़ी अनुनय-विनय के साथ गुमानी इस कृषक को अपने घर ले गये। आदर-सत्कार के साथ उनकी बड़ी अभ्यर्थना करते रहे।

वर्षा आरम्भ होनेवाली थी। कृषक एक दिन गुमानी से बोला, कि भगतजी, यदि आपकी आज्ञा हो, तो हल से आपकी भूमि जोत दूँ—क्योंकि ख़ाली बैठना मुझे अच्छा नहीं लगता। गुमानी ने कहा—प्रभु, आपकी लीला विचित्र है, और आपकी लीला में बाधा उपस्थित करने की किसमें सामर्थ्य है ?

उस कृषक ने भूमि को बड़े प्रेम से जोता, तथा समय आने पर उसमें धान बो दिये। जब यथासमय फसल काटी गई, तो यह देखकर गुमानी को बड़ा आश्चर्य हुआ, कि धान तो पहले भी बोये जाते थे, परन्तु अबकी बार पहले से पचास-गुना अधिक धान हुआ है। नाज भरने के जो खलिहान थे, उनको छत तक भर दिया गया था, फिर भी बाहर चावलों का ढेर का ढेर लगा हुआ था।

अब तो और भी उत्साह से अभ्यागतों का सत्कार होने लगा। किसीने यह बात गुमानी की बहूजी से भी कह दी, कि तुम्हारे खेत में अबकी बार इतना चावल हुआ है कि तुम लोग पूरी आयु में भी समाप्त नहीं कर सकते। यह अद्‌भुत हर्ष समाचार सुनकर बहूजी को बड़ा भारी आश्चर्य हुआ, कि उसके अकर्मण्य पति ने इतना परिश्रम कैसे कर लिया!! अस्तु। वे अपने बच्चे को साथ लेकर घर लौट आईं, तथा फिर वापिस मायके नहीं गईं।

केवल गिरिगुहा में ही रहनेवाले तपोनिष्ठ संत का गुमानी के यहाँ एक वर्ष तक रहना, केवल कंद-मूल-फलादि आहार पर रहनेवाले ब्रह्मचारी महात्मा का रोटी आदि अन्न पर आ जाना—ये सब बातें गुमानी के असीम प्रेम, उत्साह, उदारता तथा सेवाव्रत को सिद्ध करती हैं। वास्तव में श्री महाराज जी के प्रति गुमानी की अनन्य भक्ति थी।

गुमानी भक्त में भय लेशमात्र भी नहीं था। वदरिकाश्रम जाने से पहिले, साथ चलनेवाले यात्रियों की श्री मुनीन्द्र महाराज जी ने जो भयानक परीक्षा ली थी—उसमें गुमानी ही उत्तीर्ण हो सके थे।

पूरे वर्ष पर्यन्त, गुमानी की कुटिया में रहकर, श्रीमन् मुनीन्द्र महाराज जी दूसरे भक्तों के कल्याणार्थ वहाँ से चल दिये।

जब से श्री महाराज जी अलमोड़े की तरफ गए थे, गुमानी भक्त को उनके दर्शन नहीं हो पाये थे। सदा ही वे उनकी प्रतीक्षा में रहा करते थे। उनकी इस उत्कट प्रतीक्षा को देखकर 'पुण्यस्मृति' का यह पद्य याद आता है—

'नित उठि देखौं राह, कब आवैं श्री मुनीन्द्र जी।
'सत्य-धर्म-आचार्य, ब्रह्मचारि हैडाखान के॥'

जब चार-पाँच वर्ष व्यतीत हो गये, तो गुमानी विचारने लगे, कि अब आयु कम मालूम पड़ती है। शेष आयु के दिनों को श्री महाराज जी की सेवा में ही व्यतीत करना उपयुक्त होगा। यह सोचकर वे अलमोड़े चल दिये।

श्री महाराज जी के पास पहुँचकर गुमानी परम सात्विक भावों में आविष्ट हो गये। उनके नेत्रों में जल की धारा थी। अंग-अंग रोमाञ्चित

था। श्री महाराज जी को तो पहले से ही पता था, कि गुमानी-जैसा भक्त होना बड़ी भारी तपश्चर्या का फल है, और शायद इसीलिये उन्होंने अपनी सिद्ध-मूक-प्रेरणा से गुमानी को अपने पास बुलाया था—जिससे वे उसको बदरीधाम के दर्शन करा दें। उन्होंने गुमानी से कहा—'गुमानी, हम बद्रीनाथ जा रहे हैं, तुम चलना चाहो, तो चलो।' श्री महाराज जी की बात सुनकर गुमानी श्री चरणों में विह्वल होकर लोट गये, जैसे साक्षात् बदरीविशाल ही उनके समक्ष बदरीधाम चलने के लिये प्रस्ताव रख रहे हों, और प्रेरित कर रहे हों !!

बदरीनाथ की यात्रा के लिए दो भक्तों ने और साग्रह निवेदन किया। श्री महाराज जी कुछ न बोले। अर्थात् निर्दिष्ट दिन श्री महाराज जी, गुमानी, तथा वे दोनों भक्त बद्रीनाथ जी को रवाना हो गए।

कुछ मील दूर पर एक बड़ा गहन जंगल पड़ा। श्री महाराज जी कुछ आगे निकल गये थे। गुमानी तथा वे दोनों भक्त भी चले जा रहे थे। एकाएक इन्होंने देखा कि सामने एक शेर पूँछ उठाये हुए तथा क्रोध की मुद्रा में मार्ग के बीच में खड़ा हुआ है। मार्ग के एक ओर उत्तुंग पर्वत है, और दूसरी ओर घाटी की भयानक गहराई। दोनों भक्तों ने गुमानी से कहा—कि भाई जान बचाना हो तो वापिस भागो। वे दोनों यह कहकर बड़े द्रुतवेग से लौट गये। परन्तु गुमानी आगे बढ़े। शेर भी खड़ा रहा। उसकी बगल से होकर वे श्री महाराज जी के पास पहुँच गये। शेर की मुद्रा इनके पास आने पर बिलकुल बदल गई थी। वह शांतभाव से मिट्टी के खिलौने की तरह रास्ते में खड़ा रहा, तथा इनकी ओर विशेष दृष्टिपात भी नहीं किया।

श्री महाराज जी गुमानी के साथ यथासमय बद्रीनाथ जी पहुँचे। बड़े प्रेम से साक्षात् लक्ष्मीनारायण के दर्शन हुए। श्री मुनीन्द्र महाराज की कृपा से गुमानी को प्रभु के वे दर्शन उपलब्ध हुए—जो मनुशतरूपा को तेईस सहस्र वर्ष तक उग्र तपस्या करने के फलस्वरूप प्राप्त हुए थे।

इसके पश्चात्, गुमानी श्री महाराज जी के साथ अलमोड़े लौटे। फिर

श्री महाराज जी की आज्ञा मानकर, गुमानी अपने घर दरौला ग्राम आ गये।

लगभग एकाध वर्ष बाद, उन्होंने अपनी इहलीला समाप्त कर दी।

गुमानी भक्त श्री महाराज जी के इतने समीप के भक्त थे, कि आज भी उनके घर में श्री मुनीन्द्र महाराज जी की गुफा बनी हुई है। जहाँ श्री महाराज जी बैठा करते थे, वहाँ पर ताँबे का एक बड़ा चिमटा गड़ा हुआ है—जो श्री महाराज जी को किसी वृद्ध तपस्वी ने प्रेमवश भेंट किया था। यह चिमटा बड़ा विलक्षण है। इसकी धातु में एक विशेष चमक है, और ऐसा प्रतीत होता है, कि श्री महाराज जी के अंग-संग से इसमें भी उनका अपूर्व तेज समाया हुआ है। दूसरे, उसी गुफा में श्री महाराज जी की स्मृति में अन्यान्य वस्तुएँ भी रखी हुई हैं, जिनको अभी ठीक तरह से पहचाना नहीं जा सका है। गुमानी भक्त की रामायण के मुखपृष्ठ पर श्री मुनीन्द्र महाराज के श्री हस्त द्वारा लिखे हुए कुछ शब्दपुंज भी मिले हैं—जिनका अर्थ अभी मालूम नहीं हो सका है। इस शब्दपुंज के अक्षर ब्राह्मी लिपि-जैसी किसी प्राचीन लिपि के मालूम पड़ते हैं। हो सकता है, कि कोई पुरातत्त्व-विशारद इन शब्दों का अर्थ ठीक-ठीक लगा सके !!! और उस लिपि के विषय में खोज करके श्री महाराज जी के दयार्द्र हृदय के कोमल भावों को अभिव्यक्त कर सके !!!

(२)

जब गुमानी भक्त के घर पर श्री श्री परम तेजस्वी मुनीन्द्र महाराज के दर्शन के लिए अधिकाधिक संख्या में भक्तजन आने लगे, तब श्री महाराज जी ने यहाँ पर रहना समुचित न समझा। उन्होंने कभी काली चौड़, कभी गोला किनारे, कभी कटघरिया रहना आरम्भ कर दिया। बीच-बीच में वे हैडाखान की गुफा में चले जाते थे। जहाँ-जहाँ श्री महाराज जी जाकर बैठते थे, वहाँ उनकी आभा परम दर्शनीय ही रहती थी, और नेत्र किसी प्रकार भी तृप्ति नहीं मानते थे। उनके सारे शरीर में ऐसी आभा दिखाई देती थी—जैसे सारे हीरकमणियों की कान्ति अंग-अंग में जग-मग कर रही हो।

श्री अंगों में ऐसी विलक्षरण नूतनता दृष्टिगोचर होती थी, जैसे माता के गर्भ से अभी-अभी द्वादशवर्षीय शुकदेव जी चले आ रहे हों। उनकी त्रिकुटी का तेज बार-बार हिलता-सा दिखाई देता था, जिससे यह स्पष्ट विदित होता था, कि उनका शुद्ध चैतन्य मानस निरन्तर जप में निरत है। उनकी परासिद्धि का ऐसा अलौकिक प्रभाव था कि चारों ओर जड़ तथा चेतन प्रकृति उनके तेज से ज्योतित और अनुप्राणित-सी दिखाई देती थी। पुण्यस्मृति में यथार्थ ही कहा है—

"महिमा तहाँ की कहौ कौन कहै। प्रतिश्वास विलक्षरण भाव लहै।"

इसलिए जहाँ-जहाँ श्री महाराज जी जाते थे, वहाँ स्वतः ही यज्ञानुष्ठान आदि उत्सव प्रारम्भ हो जाते थे। सत्संगी पुरुष और स्त्रियों की संख्या इतनी अधिक होती थी, कि कभी-कभी यह संख्या पच्चीस हज़ार से भी अधिक हो जाती थी। यह इस बात से अनुमान लगाया जाता है, कि जब कटघरिया में श्री महाराज होते थे, तब एक रात में अस्सी रुपये की मोमबत्तियाँ जल जाती थीं—यह उस समय की चर्चा है, जब एक पैसे की चार मोमबत्तियाँ आती थीं। श्री महाराज जी सघन कदम्ब वृक्ष के नीचे ध्यानमग्न बैठे रहते थे। सारा शरीर तेज की दीप्ति से दमकता रहता था, और ऐसा प्रतीत होता था कि शरीर शुभ्र मणियों का बना हुआ है। बड़ी-बड़ी दूर के ग्रामों के स्त्री-पुरुष सब कठिनाइयों को सहते हुए, श्री महाराज के चरणों में अपनी-अपनी मनोकामनाओं की पूर्ति के लिए सेवा में उपस्थित होते थे, और सब प्रसन्न मन लौटते थे।

एक समय, उस क्षेत्र का अंग्रेज कमिश्नर "रैम्ज़े" निरीक्षरण का दौरा करता हुआ, जब नहर के उस पार आया, तो उसने कटघरिया क्षेत्र में बड़ी अपार भीड़ देखी, जो चारों ओर बैठी हुई दिखाई दे रही थी, और बीच में कदम्ब वृक्ष के नीचे सिद्धासन लगाये हुए, सिद्ध सिद्धेश्वर मुनीन्द्र महाराज अपनी कान्ति से मानो सब दिशाओं को आलोकित कर रहे थे। उन दर्शनों से वह इतना प्रभावित हुआ, कि घोड़े से उतरकर प्रार्थना के भाव में खड़ा होकर श्री महाराज जी को निर्निमेष दृष्टि से देखता रहा। इसके पश्चात्,

उसने कुछ लोगों को अपने पास बुलाकर इन अपार तेजस्वी महापुरुष का परिचय पूछा। लोगों ने बताया, कि ये बड़े सरल प्रकृति के सिद्ध-सिद्धेश्वर ब्रह्मचारी हैं। इनके अन्यान्य चरित्र सुनकर रैम्ज़े बहुत ही प्रभावित हुआ, और स्वतः ही उसने पच्चीस बीघा भूमि (जहाँ महाराज जी बैठे हुए थे–उसके आस-पास) लगान माफ़ करके महाराज जी के नाम लिख दी, जो आजकल कटघरिया-आश्रम के नाम से प्रसिद्ध है।

इस घटना के कुछ वर्ष बाद ही एक विलक्षण घटना हुई। जिस कदम्ब वृक्ष के नीचे श्री महाराज बैठा करते थे, उसके तने में से एक ओर पीपल, तथा एक ओर वटवृक्ष की मोटी-मोटी डालियाँ निकल आईं। आज यह देख कर बड़ा विस्मय होता है कि एक ही कदम्ब वृक्ष के तने में से एक ओर पीपल, एक ओर बट, और एक ओर कदम्ब लहलहा रहा है।

यह कदम्ब वृक्ष पर्याप्त क्षेत्र में फैला हुआ है, और उसका दृश्य बड़ा उदात्त है। परन्तु जब तना देखते हैं, तो और भी अधिक विस्मय होता है। एक तरफ से उस तने में इतना बड़ा गड्ढा हो रहा है, कि यह विचार करके बड़ा आश्चर्य होता है, कि इतना बड़ा वृक्ष कटे हुए तने पर किस प्रकार स्थित है, और इसका पोषण किस प्रकार हो रहा है!!!

इस वृक्ष के जलने का भी इतिहास बड़ा विलक्षण है। न जाने किस प्रकार से इसमें आग लग गई। तने के बिल्कुल पास ही दो फूस की कुटिया थीं। एक में पुजारी रहता था, और दूसरी वाली छोटी कुटिया में एक दीन तपस्विनी, जो श्री मुनीन्द्र महाराज की शरणापन्न थी, एक चित्त से भजन-साधन करती रहती थी। आग लगने के फलस्वरूप पुजारी की कुटिया जल कर बिलकुल भस्म हो गई, और छोटी कुटिया, जिसमें वह दीन तपस्विनी भजन-साधन में निरत थी, बिलकुल जैसी-की-तैसी बनी रही, और अग्नि के प्रभाव से बिलकुल वंचित रही आई। अपने भजन-साधन से निबटकर जब वह तपस्विनी किसी काम से कुटिया के बाहर आई, तब उसे उस प्रचण्ड अग्नि का भान हुआ। सारा आस-पास का स्थान विशाल अंगारों से आच्छादित था, परन्तु उसकी फूस की कुटिया पर मानो अग्नि की दाहक शक्ति का कुछ भी प्रभाव नहीं था।

(३)

एक समय ग्रीष्म के दिनों में श्रीमन् मुनीन्द्र महाराज खुर्पाताल आश्रम में विराज रहे थे। एक नवशिक्षित युवक को भी श्री महाराज के विषय में कुछ विशिष्ट चरित्र सुनने को मिले थे। यह भी समाचार उसे मिला था, कि वे कनछोपी टोपी (कनटोपा) धारण करते हैं। इस बात से यह युवक अनुमान करने लगा, कि कहीं ये महाभारत के प्रसिद्ध अमर योद्धा 'अश्वत्थामा' तो नहीं हैं, और महाभारत में लगे हुए सिर के घाव को छिपाने के लिए ही शायद कनटोपे से अपने सिर को पूरा ढक लेते हों। इस बात की जाँच करने के उद्देश्य से वह नवयुवक खुर्पाताल (ज़िला नैनीताल) पहुँचा। जैसे ही प्रातःकाल की वेला में, वह वहाँ पहुँचा, तभी श्री महाराज जी कहने लगे, कि गरमी के कारण मुझे नहाने की इच्छा हो रही है। इतना सुनना था कि उस युवक ने कहा कि मैं एक घड़ा ताल में से भर लाता हूँ—तब आप स्नान कर लीजिएगा। इस मनुष्य ने विचार किया कि स्नान करते समय, जब ये टोपी आदि वस्त्र उतारेंगे, उस समय में इनके नग्न सिर को अवश्य देख सकूंगा। श्री महाराज जी ने कहा, कि तू मेरी कोपीन, लोटा, अँगौछा आदि ले ले, और मैं तेरे साथ चलकर ताल पर ही स्नान कर लूँगा। इस युवक ने सहर्ष ही सब वस्तुएँ ले लीं, और यह विचार करने लगा, कि ताल पर तो परीक्षण करने का और भी अच्छा सुयोग प्राप्त होगा। जब दोनों ताल पर पहुँचे, तो महाराज ने कहा, कि मेरे वस्त्र उतारकर मुझे स्नान करा दे।

इस युवक ने श्री महाराज जी का टोपा, मिरजई आदि सब वस्त्र उतारे, और खूब प्रेम से स्नान कराके उनके दिव्य शरीर को अँगौछे से पौंछा। इस बीच में उसका चित्त सात्विक भावों से पूर्ण भरा हुआ था। इस दिव्य-तत्त्व-निर्मित देह को स्नान कराने में उसे परम आह्लाद हो रहा था। 'पुण्य-स्मृति' की चौपाई इस अलौकिक देह के वर्णन में स्पष्ट है:—

"दिव्य-तत्त्व-निर्मित तव देहा। अविकारी पर हृदय सनेहा॥"

इस समय इस युवक को अपनी ही सुध नहीं थी। उसे यह बात तो बिलकुल

ही विस्मृत हो गई थी, कि श्री महाराज के सिर पर घाव है, अथवा नहीं—यह उसे परीक्षण करना था। जब उनके शरीर को पौंछकर, उसने धुले हुए वस्त्र धारण करा दिए, और भीगे वस्त्रों को धोकर सुखा दिया, उसके पश्चात् उसे याद आई। अपने उद्देश्य को भूल जाने पर उसे बड़ा पछतावा होने लगा। तब श्री महाराज जी ने उससे बड़े प्रेम से कहा—"साधु-महात्माओं के पास श्रद्धा तथा प्रेम लेकर जाना चाहिए। यदि कुछ शंका हो, तो श्री भगवान् से उसके निवारण की प्रार्थना करनी चाहिए। उस समय उनकी कृपा से—"अमुक महात्मा है, अथवा नहीं" यह स्वयमेव अनुभव हो जाता है। महात्माओं की पहचान महात्मा ही कर सकते हैं, अथवा वे कर सकते हैं, जिन पर महात्माओं की कृपा हो। महात्माओं की कृपा उन पर होती है, जिनका हृदय सरल होता है, तथा जो अहंकारहीन होते हैं।"

(४)

एक समय जब श्री मुनीन्द्र महाराज खैरना आश्रम (ज़िला नैनीताल) में विराज रहे थे, कौशी के रेञ्जर साहब ने, जो उस समय अपने रेञ्जर-क्वार्टर, विनायक में थे, श्री मुनीन्द्र महाराज के आमन्त्रण के लिये चार आदमियों के साथ एक डाँडी भिजवाई। आदमियों को यह आदेश था, कि श्री महाराज जी को सादर डाँडी में सवार करा कर ही विनायक लायें। श्री महाराज जी रेञ्जर साहब का श्रद्धाभाव देखकर विनायक जाने के लिये तैयार हो गये। खैरना से विनायक आठ-दस मील है। रास्ता सब चढ़ाई का है। एक मील तक श्री महाराज डाँडी पर बैठ कर चले। इसके पश्चात् इन्होंने डाँडी के आदमियों से कहा कि अब चढ़ाई के कारण तुम थक जाओगे, और मेरी इच्छा भी पैदल चलने की हो रही है, इसलिये मुझे उतर कर पैदल चलने दो। आदमी थक अवश्य गये थे, परन्तु श्री महाराज जी को उतारने में उन्हें संकोच हो रहा था। दस-पाँच कदम जाने के बाद एक बड़ी विचित्र घटना हुई। आदमियों को श्री महाराज जी इतने भारी मालूम पड़ने लगे, कि इन्होंने डाँडी पृथिवी पर रख दी। तब श्री महाराज ने डाँडी के आदमियों से कहा, कि तुम लोग कुछ देर तक विश्राम करके आना। मैं तब तक चलता हूँ।

श्री महाराज जी लगभग एक फर्लांग चले होंगे, तभी वे आदमी भी विश्राम करके रवाना हो गये। उन्होंने अपनी चाल काफ़ी तेज़ कर दी, जिससे वे महाराज जी के निकट शीघ्रातिशीघ्र पहुँच कर, उन्हें डाँडी में बैठा लें। परन्तु आश्चर्य की बात थी कि श्री महाराज जी उन्हें रास्ते में कहीं भी नहीं मिले। रास्ते में आने-जानेवाले मनुष्यों से भी महाराज जी का कहीं पता न लग सका। लगभग तीन घंटे बाद, जब ये आदमी विनायक पहुँचे, तो इन्हें समाचार मिला, कि श्री महाराज जी तीन घंटे पूर्व से ही यहाँ उपस्थित हैं।

(५)

एक समय, श्रीमन् मुनीन्द्र महाराज रानीबाग-आश्रम (काठगोदाम) में विराज रहे थे। सूर्यग्रहण का स्नान करने के लिये बहुत से प्रेमी कुरुक्षेत्र जा रहे थे, और बहुत से रानीबाग में गोतमगंगा-स्नान के उद्देश्य से ठहरे हुए थे।

ग्रहण का स्नान यथोचत सम्पन्न हो गया, उसके पश्चात् कुरुक्षेत्र से यात्री लोग अपने-अपने घरों को लौटे। कुरुक्षेत्र में स्नान करनेवाले यात्री जब श्री महाराज जी के दर्शन करने के लिये रानीबाग आये, तो उन्होंने श्री महाराज जी के सामने बड़ा आश्चर्य प्रगट किया, कि आप हमसे पहले ही कुरुक्षेत्र से लौट आये! श्री महाराज जी तो चुप रहे, परन्तु और दूसरे उपस्थित भक्तों ने प्रतिवाद किया, कि श्री महाराज जी तो निरन्तर हमारे साथ रहे हैं, और ग्रहण के अवसर पर भी उन्होंने हमारे साथ ही यहीं रानीबाग में गोतमगंगा में स्नान किया है।

परन्तु कुरुक्षेत्र से आनेवाले प्रेमियों ने कहा, कि ऐसा कसे हो सकता है? श्री महाराज जी ने कुरुक्षेत्र में हमारे साथ ग्रहण-स्नान किया है। हम कैसे विश्वास कर लें, कि श्री महाराज कुरुक्षेत्र गये ही नहीं?

दोनों पक्षों में जब विवाद होने लगा, तो श्री महाराज जी ने उन्हें शांत किया, और उनसे कहा, कि ग्रहण के अवसर पर मैंने रानीबाग तथा कुरुक्षेत्र दोनों ही स्थानों में उपस्थित होकर स्नान किया था।

(६)

अलमोड़े के प्रसिद्ध वकील श्री ज्वालादत्त जोशी को कृतार्थ करने के लिये श्री श्री मुनीन्द्र महाराज, एक समय ग्वालियर पधारे। उस समय ज्वालादत्तजी राज्य के शासन के अन्तर्गत उच्च पदाधिकारी थे।

सिद्ध-सिद्धेश्वर ब्रह्मर्षि को अपने घर पर आया हुआ जानकर ज्वालादत्त जी हर्ष और विस्मय से अत्यन्त विह्वल थे। उन्होंने श्री महाराज जी की अर्घ्य, पाद्य, आरती आदि से पूजन किया, तत्पश्चात् उन्होने दरबार को सूचना दी, कि जिन सिद्ध-सिद्धेश्वर सदाशिव मुनीन्द्र महाराज के चरित्र अद्‌भुत अलौकिकता से भरे हुए हैं—वे मेरे घर पधारे हैं।

दरबार बड़ी आतुरता से दर्शन करने के लिये आये, और अपना जन्म सुफल किया।

दरबार ने बड़ी विनम्र प्रार्थना की, कि श्री महाराज रानी को भी महलों में दर्शन देकर कृतार्थ करें।

भाव के वशीभूत होकर श्री महाराज जी ने अनुमति दे दी। निदान सायंकाल में दरबार उन्हें मोटर में परम आदर के साथ महलों में ले गये। वहाँ पर वे लगभग दो घंटे विराजे। राजरानी ने तथा समस्त अन्तःपुर ने श्री महाराज के दर्शन करके अपना जीवन कृतकृत्य किया।

उनके ग्वालियर से प्रस्थान करने के पश्चात्, दरबारने रानी से पूछा, कि तुम्हें श्री महाराज जी की आयु अनुमानतः कितनी मालूम पड़ती है। रानी ने उत्तर दिया, कि मेरे अनुमान से श्री महाराज अस्सी वर्ष के वृद्ध हैं।

राजा को यह सुनकर बड़ा ही आश्चर्य हुआ। क्योंकि उन्हें श्री महाराज ग्यारह वर्ष के किशोर दिखाई दिये थे।

(७)

एक बार, श्री भोलादत्तजी पाण्डे (वकील) अपने बहुमूल्य घोड़े पर बैठ कर काठगोदाम की ओर आ रहे थे। उनमें राजस् भाव बड़ा उग्र था। उन्होंने रानीबाग के पास सड़क के किनारे छोटी सी पहाड़ी चट्टान पर श्री

श्री मुनीन्द्र महाराज को बैठे हुए देखा। उस समय श्री महाराज का भाव बड़ा मनोरम प्रतीत होता था। उनके आननचंद्र पर मंद हास्य सुशोभित हो रहा था। भोलादत्तजी ने इनको हँसते देखकर भ्रमवश यह अनुमान किया, कि यह पागल-सा आदमी मेरी ओर देखकर व्यंग से हँस रहा है, और दण्डनीय है। उस समय श्री महाराज जी से इनका परिचय नहीं था। घोड़े का चाबुक इनके हाथ में था ही। बड़े क्रोध से इन्होंने महाराज जी से पूछा, कि तुम मेरी ओर देखकर क्यों हँस रहे हो? श्री महाराज जी ने बड़ी शान्ति से उत्तर दिया—"नहीं बाबा, तुम्हें देख कर हम नहीं हँस रहे हैं। बद्रीनाथ जी के मन्दिर का विशाल घंटा गिर गया है। उसको उठाने के लिए बहुत से आदमी एक साथ मिल कर ज़ोर लगा रहे हैं—परन्तु वह इतना भारी है, कि किसी प्रकार भी नहीं उठ रहा है। यही देख कर मुझे विनोद हो रहा है!"

भोलादत्तजी ने सोचा कि मार से बचने के लिए इस आदमी ने एक बिलकुल नई बात गढ़ ली है। बद्रीनाथ जी का मन्दिर वहाँ से लगभग तीन सौ मील की दूरी पर है। इसलिए इन्होंने कहा, कि इस प्रकार धोखा देने से काम नहीं चल सकता। मैं अभी तथ्य का पता लगाता हूँ। यदि तुम्हारा कथन असत्य हुआ तो कड़ा दण्ड दूँगा। यह कह कर वे बड़े रोष की मुद्रा में चले गये। काठगोदाम पहुँचकर, उन्होंने फोन द्वारा इस बात का पता लगाया, कि बद्रीनाथ के मन्दिर का घंटा गिरा है अथवा नहीं। यथा समय उनको उत्तर मिला, कि जो समय उन्होंने दिया था, उस समय घंटा बड़े प्रयत्न से उठाया जा रहा था, परन्तु अभी तक भी वह उठ नहीं सका है। यह समाचार मिलते ही भोलादत्तजी के अभिमान को बड़ा भारी आघात पहुँचा। उन्हें इस ख़बर से विस्मय भी बहुत हुआ। अब वे श्री महाराज जी से क्षमा माँगने के लिए व्याकुल हो गये। बहुत प्रयत्न करने पर, कई दिन पश्चात् उन्हें समाचार मिला कि श्री महाराज बाँसुली की गुफा के पास हैं। वहाँ पहुँचकर, बड़े ही दीन भाव से उन्होंने श्री महाराज जी से भूरि-भूरि क्षमा याचना की, और सदा के लिए उनके शरणापन्न हो गए।

श्री महाराज जी की सेवा-पूजा, श्री भोलादत्तजी बड़े ही एक निष्ठ-भाव से करते थे। अपनी जीविका से अवकाश प्राप्त कर लेने के बाद बाईस वर्ष तक उन्होंने सिद्धाश्रम (शीतलाखेत) में कठोर साधना की। उनकी इन बाईस साल की डायरियों से श्री महाराज के वैभव तथा चरित्र-माधुर्य का कुछ-कुछ पता चलता है।

(८)

पतरौल मंगलसिंह के सविनय आग्रह से, जब श्री महाराज जी चोरगल्या ग्राम पधारे, तब माघ महीने के ठंड के दिन थे। श्री महाराज ने वहाँ घर के अन्दर ठहरना स्वीकार नहीं किया, और बस्ती के बाहर उनकी धूनी का प्रबन्ध कर दिया गया।

जाड़ा बड़ी ज़ोर का पड़ रहा था। बीच-बीच में वर्षा की झड़ी भी लग जाती थी। परन्तु श्री महाराज जी की धुनी वैसी-की-वैसी ही प्रज्वलित रहती थी। ऐसा विदित होता था, मानो वर्षा का पानी धुनी की अग्नि को छूता तक नहीं है।

(६)

एक बार, श्री श्री मुनीन्द्र महाराज जब हैडाखान की गुफा में आसन जमाये हुए थे, उस समय उनकी ख्याति सुनकर कुछ साधु-महात्मा उनके दर्शनार्थ आए। उन दिनों माघ मास था। जाड़े खूब पड़ रहे थे। सत्संग के अन्तर्गत 'काफल' के विषय में चर्चा चली। वहाँ के लोगों ने बताया, कि पर्वतों में काफल ज्येष्ठ मास में ही मिल सकता है, और जाड़े के दिनों में यह फल कहीं भी नहीं लगता। कौतूहलवश महात्माओं के मन में यह विचार उदय हुआ कि सिद्ध सिद्धेश्वर ब्रह्मचारी बाबा से प्रसाद में काफल ही माँगना चाहिए।

उनके इस भाव का पता लगने पर श्री महाराज जी कुछ दूर गये, और पके हुए काफल (डाली समेत) न जाने कहाँ से तोड़ कर ले आये। इसको उन्होंने महात्माओं को प्रसादरूप में वितरण किया।

(१०)

ग्रीष्म ऋतु में हैडाखान गुफा से हट कर श्री महाराज जी ने एक पर्णकुटी में आसन जमाया। यह पर्णकुटी गोतमगंगा के किनारे पर ही बनी हुई थी। वहाँ पर श्री महाराज जी ने पंचाग्नि तपी। इसके पश्चात देखा गया, कि प्रति दिन प्रातःकाल एक विशालकाय सिंह श्री महाराज जी के पास प्रणाम करने आया करता था। एक बार, जब कुछ महात्मा लोग अतिथि रूप से श्री महाराज जी के पास ठहरे हुए थे, वे प्रातःकाल सिंह को अपनी ओर आते हुए देख कर दारुण भय का अनुभव करने लगे। श्री महाराज जी ने उन्हें समझाया, कि तुम डरो मत; सिंह प्रणाम करके चला जायेगा।

जब सिंह बिलकुल पास आ गया, तब महात्मा लोगों ने भयभीत होकर अपनी आँखें मींच लीं। थोड़ी देर बाद, जब उन्होंने आँखें खोलीं, तब उन्होंने देखा, कि सिंह धीरे-धीरे वापिस लौट कर जा रहा था।

(११)

जब श्री महाराज जी 'वृन्दावन बगीचे' (अलमोड़ा) में थे, तो उन्होंने दूला भगत को बुलाकर कहा, कि यदि यहाँ पर कहीं मीठे जल की पवित्र धारा हो, तो वहाँ मुझे ले चल। दुला ने विचार किया—कि यहाँ मीठे जल की धारा कहाँ है, तथा इन्हें कौनसी जगह ले चलूँ? परन्तु वह स्थिर न कर सका। उसने यह उचित समझा कि शिरोमणि जी पाठक (शीतलाखेत) से पहले परामर्श कर लिया जाय। निदान, वह श्री श्री मुनीन्द्र महाराज जी को साथ लेकर शिरोमणि जी के पास गया।

श्री महाराज जी को वहुत ही अपूर्व श्रद्धाभाव से शिरोमणि जी ने अपने यहाँ बैठाया, और वे लोटा लेकर, दूला और गौरीदत्त पंत के साथ पवित्र मीठा जल लेने चल दिये।

शिरोमणि जी को याद था जब एक बार जंगल में काफल तोड़ने के लिये वे गये थे, तब एक सूक्ष्म जलस्रोत से उन्होंने मीठा पवित्र जल पिया था। उसी जलस्रोत से पवित्र जल लाने का उनका उद्देश्य था।

संध्या हो चली थी। अँधेरा हो गया था। परन्तु शिरोमणि जी के हृदय में अपूर्व उल्लास था। हर्ष के कारण उन्हें रोमाञ्च हो रहा था।

अँधेरे में धारा को ढूँढ़ना बड़ा दुःसाध्य था। पूर्ण उत्साह के साथ वे अनुमान से इधर-उधर खोजते रहे। बड़े विलम्ब के बाद वह सूक्ष्मधारा पर पहुँचे। लोटा भरना उन्होंने आरम्भ किया। लगभग आधा घंटे में वह लोटा कुछ-कुछ भरने पर आया। इसके बाद, उसमें से मिट्टी आने लगी। इसलिये उतना ही भरा हुआ लोटा लेकर वे लौट आये, तथा श्री महाराज जी की सेवा में जल प्रस्तुत किया। उस जल को सूँघ कर महाराज जी ने कहा, कि यह जल बड़ा उत्तम तथा पवित्र है। उस सब जल को श्री महाराज जी पान कर गये। फिर उन्होंने कहा कि प्रातःकाल इस धारा पर अवश्य चलेंगे।

प्रातःकाल ही, तीनों भक्तों के साथ श्री महाराज जी धारा के समीप आये, और जिस स्थान से जल की सूक्ष्मधारा निकलती थी, उस को अपनी उँगली से कुरेदते रहे। सभी भक्त आश्चर्यचकित नेत्रों से श्री महाराज जी की इस लीला का अवलोकन करते रहे। कुछ देर बाद उस स्रोत से पानी की मोटी धारा आने लगी। उसके नीचे बाँस की एक नली लगा दी गई।

आजकल वह धारा दिन-रात चलती है, तथा उसका जल बड़ा पवित्र, मीठा तथा ठंडा है। श्री महाराज जी की इच्छा जानकर उसके पास ही उनकी पर्णकुटी बना दी गई।

इस स्थान का वातावरण इतना रमणीक तथा मनोहारी है, तथा श्री महाराज जी को यह इतना प्रिय लगा, कि वे कहने लगे कि यहाँ आश्रम बने, तो बहुत उत्तम हो। यह बड़ा पवित्र स्थान है। सामने हिममंडित पर्वत श्रेणियों में बद्रीनाथ और नंदाकोट आदि पवित्र तीर्थों के दर्शन होते हैं।

सिद्ध-सिद्धेश्वर महाराज जी के संकल्प भी शिव संकल्प ही होते हैं। जो-जो वहाँ भूमि-स्वामी थे, उन्होंने वह भूमि आश्रम के लिये दान कर

दी। नैनीताल के भक्त भोलादत्त जी वकील को प्रबन्ध तथा अदालती कार्यवाही का कार्य सौंपा गया। सब काम सुचारुरूप से हो गया। आश्रम का नामकरण स्वयं श्री महाराज जी ने किया, तथा इसका नाम "सिद्धाश्रम" रखा।

श्री महाराज जी को सिद्धाश्रम बड़ा प्रिय था, और वे यहाँ पर लगभग छः महीने रहे। जिन-जिन भक्तों को श्री महाराज जी का (यहाँ का) सत्संग उपलब्ध हुआ, उनके बड़े भारी सुकृत हैं। उन को परमानन्द से भी अधिक आनन्द प्राप्त होता था। सिद्धाश्रम पर साक्षात् कैलाश की शोभा उतर आई थी, और परमानन्द की अमृतवर्षा सिद्धाश्रम को निरन्तर आर्द्र करती रहती थी। साक्षात् सदाशिव श्रीमन् मुनीन्द्र महाराज उस समय सिद्धाश्रम में 'छा' रहे थे। वहाँ पर नित्य ही उन की अलौकिक लीलाएँ होती रहती थीं।

उस समय वहाँ पर जो भी मनुष्य श्री महाराज जी के दर्शन करने के लिये जाते थे, वे कृतार्थ हो कर ही लौटते थे। श्री महाराज जी का शरीर भी अद्भुत योग-संपदाओं से परिपूर्ण था। 'श्वेताश्वतरोपनिषद्' में जो-जो लक्षण सिद्ध योगी पुरुषों के दिये हुए हैं—श्री महाराज जी के शरीर से उन सब लक्षणों का अविर्भाव स्वतः ही होता रहता था। उनको निद्रा नहीं आती थी। जब कभी उनकी हाथ की मुट्ठी खुलती थी—उसमें से कस्तूरी की-सी मोहक गंध निकल पड़ती थी। उनके श्वास प्रश्वास की अवाज कभी किसी को सुनाई नहीं दी। चाहे वे तीव्र गति से चलें, अथवा मंदगति से—कभी किसी ने उन्हें हाँफते हुए नहीं देखा। उनकी हिलती हुई भ्राजमान त्रिकुटी सें स्पष्ट विदित होता था कि उनका इष्टनाम का अजपाजप चल रहा है। उन की अन्नपूर्णा–तथा–पादुका–सिद्धि तो लोक में अत्यन्त प्रसिद्ध ही हैं। उनकी पुरीष (टट्टी) बिलकुल दुर्गन्धित नहीं थी। वह बिलकुल मिट्टी के तुल्य होती थी, और पाँच ही मिनट बाद वह मिट्टी में इस प्रकार मिल जाती थी, जैसे वहाँ कभी पुरीष थी ही नहीं। उनके अंग-प्रत्यंग अत्यन्त सुकोमल थे, और जो भक्त मुनीन्द्र

महाराज जी के श्री अंगों को दबाता था, उसे यह अनुभव होता था, कि जैसे इनके शरीर में हड्डियों का अस्तित्व ही नहीं है। भूख-प्यास इन्हें कभी नहीं लगती थी। भक्तों का भाव ही उनका भोजन था। ऐसा कई बार देखा गया कि बिना भाव के, जब भी श्री महाराज को भोजन कराया गया—वह उन्हें वमन हो जाता था।

एक रात्रि को, जब शिरोमणिजी महाराज जी की पर्णकुटी में ही सो गए थे, तब श्री महाराज ने उनको जगाकर कहा, कि देखो, जल की धारा के पास क्या है? शिरोमणिजी ने उठकर देखा, कि धारा के बिलकुल समीप चार प्रकाश-पुंज दिखाई दे रहे हैं। उनके प्रभाव से वहाँ दिन का-सा प्रकाश हो रहा है।

वे अवाक् रह गए, तथा पन्द्रह मिनट तक निर्निमेष दृष्टि से उनके दर्शन करते रहे। इसके पश्चात्, जब वे प्रकाश-पुंज अन्तर्धान हो गए, तब शिरोमणिजी ने प्रकृतिस्थ होकर श्री महाराज जी से पूछा, कि प्रभो! ये प्रकाश-पुंज कौन थे? श्री महाराजजी ने बड़े प्रेम से बताया, कि इस परम पवित्र भूमि में बद्रीनाथ जी पधारे थे। ये प्रकाश-पुंज साक्षात् लक्ष्मीनारायण तथा उनके अनन्य पार्षद थे।

(१२)

मिथिला पुरी में (जनक पुर) एक वैष्णव साधु रहते थे। वे हिमालय की यात्रा में गङ्गोत्री से जल लाये थे, और शिवरात्रि के शुभ अवसर पर श्री रामेश्वर पुरी जाने की प्रतीक्षा में थे। जिस दिन उन्होंने निश्चय किया कि कल प्रातःकाल आशुतोष भगवान श्री रामेश्वरजी के दर्शनार्थ प्रस्थान करूँगा, उसी रात्री में उनको भगवान् श्री रामचन्द्रजी ने, जो उनके इष्ट थे, यह आदेश स्वप्न में दिया कि तुम अल्मोड़ा जाओ और वहाँ श्री हैडाखान वाले बाबा का दर्शन-पूजन करो। वे साक्षात् श्री शिव के अवतार हैं।

इष्ट-आज्ञा शिरोधार्य कर संत महोदय अल्मोड़ा आये। वहाँ श्री महाराज जी पं० विष्णुदत्तजी जोशी के घर पर पधारे थे।

साधुजी पूछते पूछते उस भाग्यशाली सदगृहस्थ के घर आये। भगवान् श्री राम के द्वारा निर्दिष्ट उन प्रच्छन्न भगवान् शिव के दर्शन से वे परम आह्लादित हुए। शरीर, प्राण, मन तथा बुद्धि, सब एक अवर्णनीय शान्ति, सुषमा एवं आनन्द की त्रिवेणी में अवगाहन करने लगे। उनकी यह अष्ट सात्त्विक-विकार युक्त दशा देख कर, वहाँ के उपस्थित भक्त वृन्द भी आश्चर्य चकित नेत्रों से यह अभूतपूर्व दृश्य देख रहे थे।

कुछ काल पश्चात् वे स्वप्रकृतिस्थ हुए। तत्पश्चात् वे बाज़ार गये। श्री महाराज जी के लिये धोती-मिरजई बनवा लाये। भोग अर्पण करने के निमित्त स्वयं पाक बनाया।

पुनः स्नान संध्या एवं अपने इष्ट मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्री राघवेन्द्र की सेवा की। अपने परमाराध्य श्री युगल सरकार श्री सीतारामजी से आज्ञा प्राप्त कर उनके ही अभिन्न स्वरूप भोले बाबा श्री सदाशिव की अर्चना में मग्न हो गये। बहुत ही विधि विधानपूर्वक वे सन्त महोदय, वैदिक तथा तांत्रिक, दोनों पद्धतियों से पूजा की। अर्घ्य पाद्यादि के उपरान्त पञ्चामृत मिश्रित जल से स्नान कराया। शुद्धोदक से स्नान कराने के पश्चात् परमपवित्र, अखिल भुवन पावनी श्री गंगोत्री के 'जल' श्री महाराज जी के मस्तक पर डाला। विशुद्ध भक्ति से अर्पित श्री गङ्गा जल के स्पर्श से श्री गङ्गाधर परम प्रसन्न हुए। भक्त और भगवान् (साधु तथा श्री महाराज जी) दोनो दिव्य धाम कैलाश में पहुँच गये। जब तक स्नान कराये, आरती हुई तथा भोग धराया गया तब तक उन साधु महोदय को वह घर प्रत्यक्ष पुराण-वर्णित कैलाश ही दीखता रहा। यद्यपि और लोग इस रहस्य को नहीं समझ पाते थे, परन्तु श्री महाराज जी उनके समक्ष वेद पुराण एवं तन्त्र में जैसा श्री महेश्वर के स्वरूपों का वर्णन है, उसी स्वरूप का दर्शन दे रहे थे।

यह तो कोई नवीन घटना नहीं थी। ओ! आशुतोष अवढ़र दानी! तुम्हारी यह भक्त वत्सलता तो सर्व-विख्यात है। सुर असुर कोई कैसा भी

क्यों न हो ! बस, एक बार कैसे भी भूले भटके तेरी शरण में आ जाये। फिर क्या ! नाथ ! तुम अपने कारुणिक स्वाभाव से बाध्य हो उसका संत्राण करते ही हो। हे ! कोमल हृदय शिवाकान्त विश्वेश्वर ! तुमको भक्त का दुःख इतना दुखी करता है कि शीघ्रातिशीघ्र उसको दुःख समाप्त कर त्रैलोक्य वन्दन बना देते हो। हे त्रिनयन ! तुम्हारा दयार्द नेत्र ही ऐसा है।

"सकत न देखि दीन कर जोड़े।"

अस्तु ! बहुत काल के पश्चात् यह पूजाकृत्य समाप्त हुआ। पाठक स्वयं विचार कर सकते हैं अपनी भावुकता से भला ! यह जड़ लेखनी उस महा-मिलन को, भक्त और भगवान् की आन्तरिक अवस्था को कैसे व्यक्त कर सकती है।

प्रसाद ग्रहण कर वे साधुजी कुछ काल श्री महाराज जी के सामने बैठे रहे। कुछ देर बाद आज्ञा हुई "बाबा अब जाइये" इस आज्ञा को सुनते ही साधुजी व्याकुल हो गये। वे कुछ प्रार्थना करने के लिये जैसे ही अञ्जलिबद्ध हो सिर झुकाया, तत्क्षण ही वह पूज्य श्री विग्रह अदृश्य हो गये। इस घटना से उनको विशेष आश्चर्य न हुआ क्यों कि वे जान गये थे कि ये नर-रूप-धारी शिव की सहज लीला है।

कुछ क्षण वहाँ व्यतीत किया विरह-कातर हृदय अब और भी विलक्षण स्थिति में पहुँच गया। उनकी साधु की यह अश्रुतपूर्व दशा देख कर वहाँ के भक्तवृन्द ने उनसे सादर निवेदन किया कि "महात्मा जी ! आप कृपा कर अपना पूर्ण परिचय दीजिये तथा श्री सद्गुरु देव जी के प्रति जो आपकी अलौकिक निष्ठा है, इसका भी कारण बताने का कष्ट कीजिये। साधुजी ने सब के समक्ष अपना सारा वृतान्त सुनाया। इस गुह्य रहस्योद्घाटन से, जो अखिल ब्रह्माण्ड नायक पूर्ण ब्रह्म श्री राम के द्वारा हुआ था, सभी प्रेमी अपने को धन्य धन्य समझने लगे।

(१३)

एक प्रकाण्ड विद्वान ने श्री सद्गुरुदेव जी महाराज से प्रश्न किया कि

शास्त्रों में विराट स्वरूप का वर्णन है। हम लोगों ने भी शास्त्र के आधार पर विवेचन किया है, परन्तु पूर्ण समाधान कारक उत्तर प्राप्त नहीं हुआ। कृपया श्री मुख से इस विषय पर कुछ कहने की कृपा कीजिये।

श्री महाराज जी शान्त बैठे रहे। जैसा उनका नियम था कि अध्यात्म विषयक गुह्य से गुह्य प्रसंग भी वे साक्षात्कार करा देते थे। वाणी का प्रयोग वे बहुत सूक्ष्म रूप से ही करते थे। वाणी द्वारा उचित तथा असंदिग्ध समाधान नहीं होता है।

"नायमात्मा तर्केण मतिरापनेया"

इसी सिद्धान्तानुसार श्री महाराज जी ने कहा कि तुम अपनी आँख बंद कर थोड़ी देर भजन करो फिर आँख खोलना।

आँख खोलने के पश्चात् उस विद्वान् की जहाँ तक दृष्टि गई, सर्वत्र एवं सब दृश्य पदार्थों में श्री महाराज जी के ही दर्शन हुए। उस समय कण कण में उसे वही कुर्ता टोपी धारण किये श्री गुरुदेव दीख रहे थे।

विराट का वास्तविक साक्षात्कार के पश्चात् प्रथमोद्गार उस पण्डित के मुख से यही निकला कि वास्तव में ईश्वर का स्वरूप निर्णय शास्त्र द्वारा नहीं हो सकता। शास्त्र तो 'चन्द्रशाखा' न्याय संकेत मात्र ही है।

सिर भुजंग भूषित नित हे शिव सत्य ललाम।
करुणामय समरथ श्री सद्गुरु बारंबार प्रणाम ॥१॥

जटा गंग सिर सर्प शशि विलसत भव्य महान्।
नीलकंठ निखिलेश शिव मोहन तेज निधान ॥२॥

पराशक्ति पररूप तुम परम परात्पर नाथ।
परानन्द परधाम हे परम पुरुष विख्यात ॥३॥

हरिहर सम जन जिय बसत सरस चरित जगजान।
करन कृपा प्रगटे जगत साधक जनके प्राण ॥४॥

किस विध प्रगटूँ अमित गुण हूँ मतिमन्द अपार।
क्षमा करो जन जानि निज श्री ब्रह्मचारी करुणागार ॥५॥

ॐ

॥ श्री सद्गुरवे नमः ॥

॥ अथ तत्त्व समीक्षा सुमनस्तबकम् ॥

(१)

परम ब्रह्म संशुद्ध
सच्चिदानन्द विग्रहम् ।
मानसं तामसं दीव्यात्
कुर्ता टोपी धरं महः ॥

॥ ऊर्मिला भाष्यम् ॥

श्री लक्ष्मण कृतानां हि
पद्यानां भावदर्शने ॥
समर्था ऊर्मिला टीका
प्रियस्येङ्गित कोविदा ॥

मेरे परम इष्टदेव तथा श्री भगवान् शङ्कर के परम भक्त श्री रामचन्द्र मुख चकोर श्री लक्ष्मणजी द्वारा निर्मित पद्यों का भाव प्रकट करने में श्री ऊर्मिला टीका ही पूर्ण रूप से सामर्थ्य-शालिनी है। क्योंकि परम पतिव्रता पत्नी ही अपने प्रियतम की चेष्टाओं का तथा इङ्गित का विश्लेषण करने में और समझने में सामर्थ्य-शालिनी होती है।

अपने परम प्रियतम के हृदय की बात को श्री ऊर्मिलाजी ही भली-भाँति प्रकट कर सकती हैं, कि इस उक्ति में मेरे प्रियतम का

क्या लक्ष्य है। इसलिए इस परम सुन्दर टीका का नाम भी श्री ऊर्मिला-भाष्य ही रखना उचित प्रतीत हुआ, क्योंकि श्री लखणलाल के गम्भीर इङ्गितों को कृपा कर के वे ही समझाने में सामर्थ्य शालिनी हैं।

इस प्रथम स्तब्क का शुभ नाम "तत्त्व समीक्षा सुमन स्तबक" है, इस में ब्रह्म तत्त्व का दार्शनिक विवेचन किया गया है। इस स्तबक के एकादश पद्य ही एकादश रुद्रों के रूप में मूलसूत्र का रूप धारण करके सम्पूर्ण ग्रन्थ की आधार शिला हैं। अग्रिम स्तबकों में इन ही मूलतत्त्वों का विस्तार है।

श्री सिद्ध सिद्धेश्वर सद्गुरु देव परमब्रह्म के शुद्ध स्वरूप हैं, और उनका श्री विग्रह सत् चैतन्य और आनन्द रूप हैं। वे कुर्ता और कन छोपी टोपा धारण किये हुए, दिव्य स्वरूपमय महेश्वर तमोगुण से व्याप्त मेरे मन-मन्दिर को अपनी दिव्य कान्ति से प्रकाशमान करें।

वेदों और वेदान्तों में ब्रह्म का स्वरूप पूर्ण रूप से प्रदर्शित कराया गया है। बड़े बड़े पूज्य महर्षियों ने अपने दिव्य ज्ञान से उस परात्पर ज्योति को शब्दों द्वारा प्रतिपादित करने की पूर्ण चेष्टा की है, किन्तु जो तत्त्व वाणी तथा सम्पूर्ण इन्द्रियों से अगोचर है, वह किस प्रकार शब्दों से पूर्ण रूपेण प्रतिपादित किया जा सकता है, अतः शास्त्रों में जहाँ प्रतिज्ञा की गई है कि "अथातो ब्रह्म जिज्ञासा" अर्थात् अब ब्रह्म को जानने की इच्छा प्रकट की जाती है, उसके आगे अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार उड़ान भरके अन्त में "नेति नेति नित निगम कहँ" यह ही कह कर विश्राम ग्रहण कर लिया है।

यहाँ पर श्री सिद्ध सिद्धेश्वर करुणा वरुणालय को परम ब्रह्म के शुद्ध रूप में निर्दिष्ट किया गया है, इसलिए संशुद्ध पद का यह अभिप्राय है, कि माया शवल ब्रह्म, ब्रह्म का संशुद्ध रूप नहीं हो सकता, अतः माया, अहंकार, इंद्रियाँ तथा रूप रस गन्ध स्पर्श शब्द, पंच

महाभूत इन सबसे परे अर्थात् परात्पर ब्रह्म के शुद्ध स्वरूप श्री शम्भु ही हैं, जो कि माया से परे होने के कारण पूर्ण स्वतन्त्र ज्योतिर्मय रूप से चराचर में तथा प्रत्येक परमाणु में व्याप्त हैं। तथा त्रिगुणातीत होने पर भी स्वातन्त्र्य के कारण सत्, चैतन्य तथा आनन्दमय श्री विग्रह धारण करके भक्तों के हृदय को समाश्वासन प्रदान करने के लिए और चरम चक्षुओं को कृत कृत्य करने लिए, तथा संसार रूपी रंगमंच में अवतीर्ण अपने स्वरूप के स्वयं दर्शन करने के लिए इस कर्मभूमि में अवतीर्ण होकर तमोगुण से व्याप्त अपने भक्तों के मन-मन्दिर को अपनी त्रिभुवन मोहिनी छवि से पूर्ण रूप से ज्योतिर्मय बना देते हैं। क्योंकि निर्गुण ब्रह्म की उपासना तो बहुत कम लोग करने में समर्थ हो सकते हैं। सर्व साधारण जो संसार चक्र में बुरी तरह फँसे हुए हैं, उनका उद्धार तो केवल सगुणोपासना से ही हो सकता है, इसलिए मूर्त रूप धारण करके तथा अपनी एक विशेष मनो-मोहनी वेश-भूषा के साथ विचरण करते हुए अपने आनन्द से प्राणीमात्र को कहीं दर्शन से, कहीं स्पर्श से और कहीं गुणगान से कृत-कृत्य करते हैं।

इसी प्रकार का वेश श्री गुरु महाराज का था, जिस के ध्यान करने मात्र से मनुष्य के त्रिताप सन्तप्त हृदय को अपार शान्ति का अनुभव होता है, जब मनुष्य के हृदय में ऐसी सुन्दर छवि समा जाती है, तब उसे संसार के सब रूप फीके प्रतीत होने लगते हैं, क्यों कि रहीम ने स्पष्ट बतलाया है कि—

"प्रियतम छबि नयनन बसी
पर छबि कहाँ समाय ?
भरी सराय रहीम लखि
पथिक आपु फिरि जाय।"

अर्थात् किसी चींटी को यदि कहीं एक मिश्री की कणिका या बत्ताशे का खेर मिल जाता है, तब वह उसे मुँह में पकड़ कर

बिल की ओर दौड़ती है, किन्तु यदि कहीं उसी चींटी को किसी मिसरी के कुँजे में छोड़ दिया जावे, तो वह उस मिसरी के कुँजे में आनन्द मग्न होकर माधुर्य का रसास्वादन करती हुई चारों ओर भ्रमण करके सन्तुष्ट रहेगी। उस समय उसकी चेष्टा यह नहीं हो सकती कि उसे मुँह में भर के बिल की ओर भागने का प्रयत्न करे।

इस का कारण स्पष्ट है, कि यदि हम भौतिक रूप, रस गन्ध और स्पर्श में तन्मय होते हैं, तो उन की क्षुद्रता के कारण पूर्ण तृप्ति प्राप्त नहीं हो सकती। और जब तक जीवात्मा को सर्वात्मना तृप्ति प्राप्त नहीं होती तब तक वह अशान्त रहता है, और विषयान्तर में तृप्ति की कामना से भटकता है।

ऐसी दशा में रूप रस गन्ध आदि विषयों की परमावधि-ब्रह्म में यदि मन रमण करने लग जावेगा तो इस को सांसारिक क्षुद्र विषय सुख उस परमानन्द के अनन्त भण्डार के सामने तुच्छ प्रतीत होने लगेंगे, और वह उस परमानन्द में मग्न होने पर, काम, क्रोध, राग, द्वेश, लोभादि ग्राहों का स्वतः परित्याग करने में समर्थ हो सकेगा। इस लिये कुर्ता और कनपोछी धारण किये हुये सगुण शिव ब्रह्म का रूप जब इन नेत्रों में समा जावेगा, तब ये नेत्र गुरु ब्रह्म की परम मधुर छवि से तृप्त हो जाने के कारण बाहिरी क्षुद्र प्रलोभनों के शिकार नहीं बनेंगे, और मन को अनन्त शान्ति प्राप्त हो जावेगी। इसी कारण से भक्त अपने प्रभु श्री गुरुदेव की उस विश्वमोहनी छवि को अपने मन मन्दिर में विराजमान करके आत्म तत्त्व प्रकाशन की प्रार्थना करते हैं।

'तत्त्व समीक्षा स्तबक' के ये प्रारम्भिक एकादश पद्य शिव तत्त्व के गूढ तत्त्वमय स्वरूप की सूत्र रूप से व्याख्या करते हैं। इस के पश्चात् अन्य स्तबकों में एक एक तत्त्व पर पृथक् पृथक् प्रकाश

डाला गया है, जो स्वयमेव प्रकाशमान है, उसे प्रकाशित करने के लिये प्रकाशान्तर की आवश्यकता नहीं होती है।

अतः अन्ततक प्रतिपाद्य साध्य की सिद्धि इसी मूल भूत तत्त्व के द्वारा प्रतिपादित की गई है। परम ब्रह्म के रूप को सच्चिदानन्द विग्रह मानने का मुख्य उद्देश्य यह ही प्रतीत होता है कि संशुद्ध श्री विग्रह होने के कारण ही वह सत्व, चैतन्य, तथा आनन्द तीनों तत्त्वों का एक मात्र आधार है, इसी लिये तमोगुणावृत मन को अपनी दिव्य चित् शक्ति से देदीप्यमान करने की अनुपम सामर्थ्य उस में विद्यमान है।

प्रेमी पाठक वृन्द यह वह ही महामन्त्र रूप प्रथम पद्य है, जो अकस्मात् साक्षात् श्री सरस्वती के अवतार के रूप में इस अकिञ्चन के मुख से माघ शुक्ला अष्टमी सम्बत् २०१३ को प्रातः ६ बजकर १० मिनिट के समय पर प्रकट हुआ था, और जिस के प्राकट्य से इस जीवने श्री महेन्द्र स्वामीजी महाराज की शरणागति प्राप्त करके अपने जीवन को कृत कृत्य किया, तथा उन के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करके दिव्य ज्ञान तथा दिव्य चक्षु प्राप्त किये।

(२)

मोहध्वान्त समाच्छन्न
राागादि ग्राह दुस्तरे।
संसारार्णव मग्नस्य
एकमेवावलम्बनम्॥

मोह रूपी अन्धकार से चारों ओर से आच्छादित तथा काम, क्रोध, राग, ईर्ष्या-आदि ग्राहों से व्याप्त होने के कारण मानव जिस में अपनी शक्ति द्वारा तैर कर पार नहीं उतर सकता, ऐसे इस संसार रूपी समुद्र में डूबे हुए जीव को श्री गुरुदेव के केवल श्री चरण ही एक मात्र आश्रय रूप हैं।

यह संसार एक महासमुद्र के समान स्वतः दुस्तर है, और फिर मोह, लोभ, ईर्ष्या आदि वृत्तियाँ अन्धकार का रूप धारण करके इस संसार समुद्र को और भी दुर्गम बना रही हैं। इस से भी अधिक, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य रूपी ग्राह जो मानव शरीर में ही निवास करते हुये मनुष्य के सबसे बड़े शत्रु हैं, जो एक क्षण भी इस जीव का पीछा नहीं छोड़ते हैं, उन से यह संसार समुद्र नितान्त दुस्तर है, ऐसे इस संसार रूपी भीषण समुद्र में डूबते हुये इस जीवात्मा के लिये श्री गुरुदेव के सर्व सामर्थ्य-शाली श्री चरणों का ही एक मात्र सहारा है।

जिस प्रकार समुद्र अन्धकार ग्राह आदि सब उपकरण दुस्तरता के प्रतीक होने पर भी यदि दृढ नौका मिल जावे तो उस पर आरूढ़ होकर मनुष्य आसानी से यात्रा कर सकता है, किन्तु इस में भी यह आवश्यक है कि जिस के हाथ में नौका की पतवार है; वह केवट बड़ा चतुर, सामर्थ्यशाली और विश्वासपात्र हो तब ही यात्रा सांगोपाङ्ग हो सकती है, अन्यथा नौका मजबूत होने पर भी केवट की असावधानता के कारण नौका के लौट जाने का भय रहता ही है, यदि नौका सुन्दर और दृढ़ है, तथा केवट सिद्ध हस्त है, तो फिर निःशङ्क होकर जीवन यात्रा कीजिये, किसी प्रकार का सन्देह करने की आवश्यकता ही नहीं।

इस लिये हे प्रभो इस अथाह संसार समुद्र में चारों ओर अथाह अन्धकार का साम्राज्य होने पर भी तथा वासनात्मक ग्राहों से दुस्तर होने पर भी आपकी सामर्थ्य-शालिनी भुजाओं का हमें दृढ़ विश्वास है। अतः हमारी जीवन तरी आपकी कृपा से अवश्य ही सरलता से भव वारिधि के किनारे पर लग जावेगी इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

हे देवाधि देव! आप तो पूर्ण सामर्थ्यशाली हैं और हमारे

एक मात्र आश्रय हैं, हम पर कृपाकर के इस भव वारिधि से पार कीजियेः—

"जाऊँ कहाँ तजि चरण तिहारे,
केहि को नाम पतित पावन जग,
केहि अति दीन पियारे"

हे प्रभो ! आप के परम दिव्य स्वरुप को छोड़ कर अब और कहाँ भटकता फिरूँ, चारों दिशाओं में आशापूर्ण नेत्रों से देखता हूँ, परन्तु जिधर दृष्टि जाती है उधर ही नैराश्य का साम्राज्य दृष्टि गोचर होता है, अतः कृपा करके अपने ही श्री चरणों का आश्रय इस तुच्छ जीव को भी प्रदान करके, अपने पतित पावन और अधम उधारण नाम को चरितार्थ कीजिये ।

(३)

सत्योद्भवं सत्यरतं
सत्ये लीनं सदाश्रयम् ।
सत्यमार्ग प्रणेतारं
ध्रुवसत्यं नतोऽस्म्यहम् ॥

हे योग योगेश्वर ! आप सत्य से उत्पन्न हैं और निरन्तर सत्य में लगे हुये हैं । और सत्य में ही लीन हैं तथा सत्पुरुषों के आश्रय-दाता हैं । एवं सत्यमार्ग का निर्माण करते हैं, ऐसे त्रिकाल सत्य रूप आप के ध्रुव सत्य स्वरूप को मैं बारम्बार प्रणाम करता हूँ !

सम्पूर्ण सांसारिक सृष्टि त्रिगुणात्मिका है, उसमें किसी तत्त्व में सत्व गुण की विशेष मात्रा होती है, किसी में तमोगुण की विशेष मात्रा और सत्व तथा रज की गौण मात्रायें रहती हैं, किन्तु सर्व श्री विभूषित श्री गुरु ब्रह्म का स्वरूप शुद्ध सत्व गुण से प्रादुर्भूत तथा सत्व गुण की साक्षात् मूर्तिरूप होने के कारण सत्य स्वरूप है ।

रज और तम से अस्पष्ट सत्य में ही निरन्तर रत है। सत्य ब्रह्म में ही लीन होता है, क्योंकि उस में गुणान्तर का समावेश बिलकुल न होने के कारण तुरन्त ही जिस प्रकार दुग्ध दुग्ध में लीन हो जाता है, और दुग्ध में लीन हुए दुग्ध को किसी भी प्रकार अलग करके नहीं दिखलाया जा सकता, उसी प्रकार परम शुद्ध ब्रह्म जब परम शुद्ध ब्रह्म में लीन होता है, तब उसका स्वरूप अनिर्वचनीय होता है, इसलिये ही आप सत्व गुण प्रधान व्यक्तियों के एकमात्र आश्रय हैं, और जो मार्ग ध्रुव सत्य है, उस वैदिक सनातन मार्ग का हयग्रीव रूप से अपने श्वासों से आविर्भाव करते हैं, ऐसे ध्रुव सत्य स्वरूप को मैं अपनी जीवात्मा में सत्य का आविर्भाव करने के लिए प्रणाम करता हूँ।

(४)

नाना मत समुद्भ्रान्त
जीव ज्योति प्रदायकम्।
मार्तण्ड मण्डलाकारं
भास्वरं शान्ति दायकम्॥

हे दयामय! आपका स्वरूप अनेक मत मतान्तरों में भटके हुये जीवों को ज्ञान ज्योति प्रदान करने वाला है, सूर्य मण्डल के समान आप का भास्वर देदीप्यमान स्वरूप है और अक्षय शान्ति का प्रदाता है।

इस संसार में अनेक मत प्रचलित हैं, प्रत्येक मत के पथिक अपने मत को सार गर्भित, तथा दूसरे मत को निरर्थक बता कर पारस्परिक ईर्ष्या, द्वेश का बीजारोपण करते हैं। इस से उनकी मान प्रतिष्ठा की क्षणिक उन्नति होकर उनके मन में क्षणिक सन्तोष पैदा होता होगा, परन्तु पारस्परिक मतभेद के बढ़ जाने के कारण उन मतों के अनुयायी भ्रम मूलक ज्ञान में फँस कर अपना मार्ग भूल

जाते हैं, ऐसे मार्ग भ्रष्ट जीव रूपी पथिकों को माया के अन्धकार में भटक जाने पर श्री गुरुदेव का दिव्य स्वरूप अपनी अपूर्व ज्ञान ज्योति से मार्ग-प्रदर्शन करता है।

सूर्य मण्डल जिस प्रकार अपने ही प्रकाश से स्वयं प्रकाशित होता हुआ सम्पूर्ण संसार को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार श्री सद्‌गुरु देव का परम भास्वर स्वरूप भी स्वयं अपने प्रकाश से प्रकाशित होता हुआ सम्पूर्ण संसार के प्राणियों को न केवल प्रकाश ही प्रदान करता है, अपितु आध्यात्मिक शान्ति भी प्रदान करता है।

सूर्य का प्रकाश तो केवल बाहिर का ही अन्धकार दूर करने में समर्थ होता है, यदि हज़ार सूर्य भी एक साथ उदय हो जावें तब भी अभ्यन्तर अन्धकार को दूर करने में समर्थ नहीं हो सकते, किन्तु यह तो उस पर ब्रह्म का अलौकिक दिव्य प्रकाश है, जो हृदय को शान्त प्रकाश देकर शान्ति प्रदान करता है, और अपने श्री चरणों की शरण से आनन्द विभोर कर देता है।

(५)

शिव रूपं शिवरतं
शिव संकल्प साधकम्।
शिवा शक्ति सुसन्दीप्तं
शशिमण्डल मण्डितम्॥

हे प्रभो! आप का स्वरूप साक्षात् भगवान् शंकर का रुप हैं, तथा आप श्री शंकर के रूप में निरन्तर लीन हैं। मंगलमय लोक कल्याणकारी संकल्पों की सिद्धि प्रदान करते हैं, और शिवा अर्थात् पार्वती जी की शक्ति से देदीप्यमान हैं।

श्री चन्द्र मण्डल से आपका स्वरूप अलङ्कृत है। हे भगवन्! आप ही मंगलमय श्री शिव के स्वरूप हैं, अथवा शिव के अवतार

होने के कारण श्री शंकर के साक्षात् रूप हैं। शास्त्रों में वर्णित तथ्य के आधार पर; यथा—"शिवो भूत्वा शिवं यजेत्" के अनुसार श्री शिव का स्वरूप धारण करके श्री सदाशिव के ध्यान में मग्न हैं, तथा प्राणीमात्र द्वारा की गई लोक कल्याण की भावना को सफलता प्रदान करके संसार के कल्याण कार्यों में प्रोत्साहन प्रदान करते हैं, यानी भव्य संकल्पों की सिद्धियाँ बिना आपका आराधना किये किसी को भी प्राप्त नहीं हो सकती यथा—

"इच्छित फल विनु शिव अवराधे
लहहिं न कोटि योग जप साधे ॥"

इत्यादि उक्तियों से सिद्ध है कि साम्ब सदाशिव श्री भोले बाबा की कृपा के विना आजतक किसी को भी मानसिक शुभ संकल्पों की सिद्धि प्राप्त नहीं हुई है।

शिवा-शक्ति अर्थात् जगत्कल्याणकारिणी श्री मातेश्वरी श्री अम्बिका की भरण पोषणात्मिका शक्ति से युक्त छवि श्री सदाशिव के वामाङ्ग में सदा विराजित रहती है। चन्द्र मण्डल से दिव्य ललाट भूषित रहता है, जिसके कारण दर्शन करने मात्र से त्रिताप सन्तप्त जीव को सहज शान्ति का रसास्वादन स्वतः होना आवश्यक है, तथा ध्यान करनेवालों के हृदय में तो शशिमण्डल विभूषित श्री परम सौन्दर्य सागर का ध्यान करते ही तुरन्त ब्रह्मानन्द का रसास्वाद होना स्वाभाविक है। वही सौन्दर्य सार शिव ब्रह्म अपनी ज्योति से मेरे हृदय को आनन्द विभोर करने की कृपा करें।

(६)

आनन्दाब्धि समुद्भूतं
चिदानन्दैक रूपिणम्।
आनन्द सम्प्लवे मग्न
मानन्देन्दुं नतोऽस्म्यहम्॥

हे चन्द्रशेखर ! आपका स्वरूप आनन्द रूपी समुद्र से उत्पन्न हुआ है, तथा चैतन्य और आनन्द का साक्षात् स्वरूप है, और परमानन्द वारिधि में सर्वदा मग्न रहता है, ऐसे आनन्द स्वरूप चन्द्रदेव ! मैं आपके श्री चरणों में बारम्बार प्रणाम करता हूँ ।

भाव यह है कि हे आनन्दचन्द्र श्री सिद्ध सिद्धेश्वर ! आपका सुन्दरतम शुभ स्वरूप आनन्द के महासमुद्र से उत्पन्न है, क्यों कि परमानन्दरूप श्री विग्रह की उत्पत्ति में लौकिक उपादानों द्वारा निर्मित श्री विग्रह पूर्ण रूप से आनन्द का प्रकाश प्रादुर्भूत नहीं कर सकता, अतः यह दिव्य स्वरूप आनन्द महाब्धि से उत्पन्न है, तथा चैतन्य और आनन्द की साक्षात् श्री मूर्ति है, तथा जिस प्रकार क्षीर समुद्र से उद्भूत चन्द्रदेव समुद्र में मग्न होते हैं, उसी प्रकार आनन्द समुद्र से उद्भूत आनन्द चन्द्र भी परमानन्द समुद्र परब्रह्म परात्पर स्वरूप में मग्न होते हैं, ऐसे आनन्द प्रादुर्भूत, स्वयम् आनन्द मूर्ति, और आनन्द लीन आनन्द चन्द्र श्री शङ्कर के श्री चरणों में आनन्द प्राप्ति के लिये भक्त प्रणाम करते हैं।

(७)

माया जवनिकाऽच्छन्न
भक्त नेत्रेष्वञ्जनम् ।
गञ्जनं भव वीजानां
महेन्द्र मन रञ्जनम् ॥

हे योगेश्वर ! मायारूपी आवरण से आच्छादित भक्तों के नेत्रों को दिव्यज्योति प्रदान करने के लिये आपका स्वरूप अमृतांजन के समान है ।

सांसारिक कर्मों का नाश करनेवाला है, तथा आपके परम प्रिय श्री चरणाश्रित शिष्य रत्न श्री महेन्द्र स्वामी के मन को प्रसन्न करनेवाला है ।

हे योगिराज सदाशिव ! सांसारिक माया बड़ी दुःखप्रद है, क्योंकि यह माया, ज्ञानी पुरुषों के चित्त को भी बलात् आकृष्ट करके अपनी ओर खेंचती है, जिस से जो साधारण जीव माया के जाल में फँस जाते हैं, उनकी दशा पूर्ण शोचनीय हो जाती है, किन्तु आप के स्वरूप के सामने वह माया नर्तकी के समान नृत्य करती है, और भक्त को किसी प्रकार की आपत्ति ही उत्पन्न नहीं होने देती।

अतः आपकी दिव्य छबि माया के पर्दे से आच्छादित भक्तों के नेत्रों को ज्योति प्रदान करने के लिये सुन्दर दिव्यांजन के समान ज्योति प्रद है। जिस प्रकार दिव्य औषधियों से तैयार किया हुआ नेत्रांजन नेत्र के जाले को काटकर अन्धे मनुष्य के नेत्रों में ज्योति का संचार करता है, उसी प्रकार आपका सुन्दर रूप दर्शन मात्र ही भक्तों के नेत्रों के सामने से अज्ञान का पर्दा दूर करके ज्ञानमय प्रकाश उत्पन्न कर देता है। जिससे पूर्वजन्मोपार्जित असत्कर्म का नाश हो जाता है। और जो मानव द्वारा पूर्वजन्म तथा इस जन्म में कृत सांसारिक कर्म, जो कि बीज रूप हैं, और जिस प्रकार बीज का बोनेवाला उसके फल को ग्रहण करता है, उसी प्रकार जीव द्वारा किये गये शुभ और अशुभ कर्म अपना फल जन्म जन्मान्तर में अवश्य देते हैं। किन्तु जिस प्रकार भुने हुए बीजों की अंकुरोत्पादकत्व-शक्ति अग्नि द्वारा नष्ट कर दी जाती है, और उनको बोने पर न तो पेड़ ही उगता है, और फिर फल लगना तो नितान्त असम्भव है, उसी प्रकार आपके दर्शन मात्र से सांसारिक शुभाशुभ कर्मों में फल प्रदायकत्व शक्ति नष्ट हो जाती है।

अर्थात् शुभ कर्मों का फल भोगने के लिए भी मनुष्य को जन्म लेना पड़ता है, और अशुभ कर्मों का फल भोगने के लिए तो अवश्य ही जन्म लेना आवश्यक होता है, किन्तु शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के कर्म बीज जब दर्शन मात्र से अंकुरत्व-शक्ति विहीन हो जाते हैं, तब यह जीव मुक्ति का अधिकारी होता है, अतः इस प्रकार कर्म-

बीजों का भर्जन करने की शक्ति आपके स्वरूप दर्शन में पूर्ण रूप से विद्यमान है, तथा आपके परम प्रिय भक्त शिष्य श्री महेन्द्र स्वामी आपके दिव्य स्वरूप का अपने नेत्रों से दर्शन करके अपने मन ही मन अहर्निश आनन्द समुद्र में मग्न रहते हैं। ऐसा आपका दिव्य-स्वरूप हमारे हृदय में ज्योति प्रदान करके आत्मा को पूर्णानन्द प्रदान करे।

(८)

तत्त्वज्ञानरतं तत्त्वं
तत्त्व ब्रह्म स्वरूपिणम्।
तत्त्व ज्ञान प्रदातारं
तत्त्वात्मक कलेवरम्॥

हे महर्षे! आप का दिव्य स्वरूप तत्त्व ब्रह्म के ज्ञान में सर्वदा निरत है। स्वयं साक्षात् तत्त्व का रूप है। पर ब्रह्म का सर्वोपाधि शून्य दिव्य रूप है तथा अन्य भक्तों पर कृपा करके, उनको वास्तविक त्रिकाल सत्य ब्रह्मज्ञान को प्रदान करने वाला है। प्रत्येक श्री विग्रह के अंग प्रत्यंग उस परब्रह्म के साक्षात् तत्त्व स्वरूप हैं।

हे मुनिवर! आप स्वयं तत्त्व ब्रह्म होने पर भी, अपने दिव्यज्ञान से परात्पर आत्म स्वरूप ब्रह्म का ध्यान करने में निरत रहते हैं।

यह है वेदान्त का परम तत्त्व; कि स्वयं ब्रह्म भी अपना ही चिन्तन करता है, और स्वयं आप तत्त्व का रूप है। जैसे भगवान् श्री कृष्ण चन्द्र ने श्रीमद् भगवद्गीता में अपने प्रिय भक्त अर्जुन को दिव्य स्वरूप के दिग्दर्शन में सम्पूर्ण विभूतियों में श्रेष्ठतम तत्त्व को अपना ही निजी स्वरूप बतलाकर शान्ति प्रदान की है, उसी प्रकार यावन्मात्र ऊर्जस्वल और महान् विभूतियाँ संसार में विद्यमान हैं, वे सब उस ब्रह्म की आंशिक विशेषता को प्रकट करती हैं। अतः यह निर्विवाद सिद्ध है कि तत्त्व स्वरूप आप ही हैं, आप के अतिरिक्त यावन्मात्र पदार्थ, जो संसार में विद्यमान हैं, वे सब निस्तत्त्व हैं। जैसे मानव

शरीर में तत्त्व जीवात्मा है, उसके निकल जाने पर सम्पूर्ण इन्द्रियों से युक्त भी शरीर किसी काम का नहीं, केवल जलाने या गाड़ने के काम आता है।

अतः सब विभूतियों में उस तत्त्व की प्रभा जब तक रहती है, तब तक ही भास्वरता रहती है, और तत्त्व निकल जाने पर सब वस्तुएँ निस्तत्त्व हो जाती हैं। इसलिए आप तत्त्व ब्रह्म के साक्षात् स्वरूप हैं और आप तत्त्व ज्ञान में रत और स्वयं तत्त्व रूप होने के कारण तत्त्व ज्ञान के प्रदाता भी हैं, जिस व्यक्ति के पास जिस किसी वस्तु का पूर्ण कोश होगा, वह व्यक्ति ही उस वस्तु को दूसरों को प्रदान करने में समर्थ हो सकता है, परन्तु जिस के पास वह वस्तु स्वयं ही नहीं है, वह दूसरों को किस प्रकार प्रदान करने में समर्थ हो सकता है। अतः आप तत्त्व ज्ञान के प्रदाता भी हैं, और आपके श्री विग्रह के अंग प्रत्यंग तत्त्वरूप हैं। अनिर्वचनीय दिव्य तेजोमय होते हुए सम्पूर्ण तात्त्विक सत्ता के केन्द्र और वास्तविक स्वरूप हैं।

(९)

तत्त्व कल्पलता पुष्पं
महेंद्र भृङ्गसेवितम्।
मानसे रमता नित्यं
संसारामय भेषजम्॥

हे भगवन्! आप तत्त्व ज्ञान रूपी कल्प वृक्ष के सुन्दर पुष्प हैं, जो पुष्प अपनी अनुपम छटा से श्री महेन्द्र रूपी भौंरे से सेवित है। वह सुन्दर तत्त्व लता का पुष्प स्वरूप आपका दिव्य रूप मेरे मन में नित्य रमण करे।

उपरि लिखित पद्य में भक्त अपने प्रभु से विनम्र प्रार्थना करता है कि हे प्रभो तत्त्व ब्रह्म का ज्ञान ही मानों एक कल्प-वृक्ष है, जिस

प्रकार कल्पवृक्ष की सुखद छाया में जाकर मनुष्य अपने हृदय में जिस वस्तु की कल्पना करता है, वह वस्तु तुरन्त उसके सामने आ उपस्थित हो जाती है। इसी प्रकार आपका अलौकिक दिव्य कर स्वरूप भी मानों आत्म ज्ञान रूपी कल्पवृक्ष का सुन्दर पुष्प है, क्यों कि वृक्ष के सब भागों की अपेक्षा पुष्प का अधिक महत्व माना गया है, वल्कल, पत्र, शाखा, और फल आदि की अपेक्षा सौन्दर्य तथा गुणों में पुष्प को प्रधान अंग माना जाता है। अतः न केवल आप आत्म ज्ञान के कल्पवृक्ष ही हैं, किन्तु उस से भी अधिक कल्प-वृक्ष के सारभूत पुष्प के रूप में आपका ध्यान किया जाता है।

यहाँ पर श्री महेन्द्र में भृंग का आरोप श्री प्रभु में कल्पलता पुष्प के आरोप का कारण है, क्यों कि भ्रमर पुष्प का सच्चा ग्राहक और लोभी है। जिस पुष्प को भौंरा प्रेम नहीं करता, उसका जन्म संसार में व्यर्थ माना जाता है, इसी प्रकार श्री महेन्द्र स्वामी आपके गुण, गरिमा, ज्ञान, वैराग्य, योग आदि गुणों के याचक हैं। जैसे भ्रमर मकरन्द की याचना में निरत रहता है और मकरन्दाऽस्वादनं पर्याप्त मात्रा में कर लेने पर भी उसकी तृप्ति ही नहीं होती है उसी प्रकार आपके प्रिय शिष्य भी आपके अलौकिक गुणों की अहर्निश दीक्षा लेकर भी पुनः पुनः तृप्त हो जाने पर भी लुब्ध हैं—यथा—"लुबुधमधुप इव तजै न पासू" इस उक्ति को आपके निरन्तर सेवन से चरितार्थ करते हैं। ऐसे लोकोत्तर गुणों से युक्त आपका स्वरूप जो कि सांसारिक जीवन मृत्यु रूपी रोग की एकमात्र महोषधि है, अर्थात् जीव को अमरत्व प्रदान करनेवाला है। वह रूप हम सांसारिक अज्ञान पीड़ित प्राणियों के कल्याण के लिये मन में प्रतिक्षण निरन्तर रमण करे। अर्थात् उसके वास्तविक सौन्दर्य पर मुग्ध होकर हम जीवन मृत्यु के फन्दे से छुटकारा प्राप्त करके "अहं ब्रह्म" स्वरूप वास्तविक तथ्य को आपकी अनुकम्पा से प्राप्त करने में सफल हो सकें, यह ही हमारी आन्तरिक कामना है।

(१०)

महेन्द्र हृदयाब्जे त्वं
वस आचन्द्र तारकम्।
तत्र ते मोहिनीं मूर्ति
दृष्ट्वा लोकः प्रसीदताम्॥

हे महामहिम ! आपके परमभक्त शिष्यरत्न श्री महेन्द्र स्वामी के हृदय रूपी कमल में आपकी छवि जब तक संसार में चन्द्रमा और तारे रहें, तब तक विराजमान रहे, और उनके हृदय कमल में विराजमान आपकी सुन्दर मूर्ति का ध्यान करके सांसारिक त्रिताप सन्तप्त विश्व के प्राणी आनन्द मग्न हो जावें।

हे योगार्णव कर्णधार ! ये महेन्द्र स्वामी जी महाराज जो आपके अनन्य भक्त तथा सत् शिष्य हैं। इनके हृदय में आपकी दिव्य मूर्ति संसार में जब तक चन्द्र तारक रहें या पृथ्वी और आकाश रहें, तब तक विराजमान रहे। यह मुझ ब्राह्मण की आत्मा का हार्दिक शुभाशीर्वाद है, जो हृदय के प्रत्येक कोण से प्रतिध्वनित हुआ है, क्यों कि ब्रह्मणत्व के नाते इस तुच्छ सेवक के पास आशीर्वाद के अतिरिक्त और है ही क्या ? जिसे इनकी सेवा में अर्पण करके इनसे प्रदान किये गये दिव्य ज्ञान की कृतकृत्यता प्रकट कर सकूँ, तथा इससे बढ़कर दूसरे आशीर्वाद की इन्हें आवश्यकता भी प्रतीत नहीं होती, क्यों कि इनके हृदय के परम धन तो आप ही हैं।

आपके दर्शन, आपका ध्यान, आपके नाम का जप, और आपके ही स्मरण में अहर्निश आनन्दमग्न रहते हैं। अतः इस ब्राह्मण के बचन को सफलता प्रदान करने के हेतु इनके हृदय कमल में निरन्तर विराजिये, इनके हृदय में विराजमान रहने से ही अनन्त भक्तों का कल्याण आपके दर्शन से हो सकता है।

ब्रह्म का शुद्ध ज्ञान सर्वदा गुरु परम्परा से ही प्राप्त होता आया है, अतः आपके स्वरूप रूपी भागीरथी को हम जैसे सांसारिक तुच्छ प्राणियों तक पहुँचाने का सौभाग्य इन ही महापुरुष को प्राप्त है।

इन्होंने ही यह अमर सन्देश हमारी आत्मा तक पहुँचाने की अनुकम्पा की है, अन्यथा हम तो भ्रम मूलक वितण्डावाद की कर्दम में फँसे हुए जीव थे। अतः हमारे उपकर्ता के प्रति हम क्या भेट अर्पण करके कृतकृत्यता प्राप्त करें, वह भेट यही आशीर्वाद रूप अर्पण करते हैं। हमने इनकी दिव्य आत्मा में स्थित आपकी मूर्ति का प्रथम दर्शन प्राप्त किया है, अतः उस मन मन्दिर में विराजमान आपकी परमानन्दमयी दिव्य मूर्ति का ध्यान करके हम अहर्निश आनन्द मग्न रहें। क्यों कि इनके द्वारा ही दर्शन सौभाग्य के अधिकारी होने के कारण त्रिकाल सत्य स्वरूप को वहीं पर निरन्तर देख सकें, जहाँ प्रथम दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

दूसरा अभिप्राय यह भी है कि हमारे भाग्य इतने बलिष्ठ नहीं हैं कि हमारी दृष्टि द्वारा आपका निरन्तर दर्शन करते रहें क्यों कि हम लोगों का मन परम चञ्चल है, वह एकत्र स्थिर नहीं रह सकता, तथा आप सर्वगत व्यापक स्वरूप हैं फिर भी इन्होंने अपनी भक्ति द्वारा आपको वशीभूत कर रक्खा है, अतः जिस प्रकार रेडियो आदि यन्त्र की सहायता से आकाश के गुण व्यापक शब्द को सीमित बुद्धिवाला मनुष्य भी अपने कमरे में बैठ कर सुन सकता है, क्यों कि यन्त्र की शक्ति द्वारा शब्द तरंगों पर अधिकार प्राप्त होने से वे तरंगे व्यापक होने पर भी उस यन्त्र के अन्दर केन्द्रित हैं, उसी प्रकार श्री महेन्द्र स्वामी के श्रद्धाभक्ति अनुराग आदि से विभूषित हृदय में इनके अलौकिक गुणों से मुग्ध होकर आप निरन्तर विराजमान रहेंगे, तब सुगमता से

हम लोग इस शुद्धहृदय रूपी यन्त्र में केन्द्रित आपकी दिव्य ज्योति का मंगलमय दर्शन करने में समर्थ हो सकेंगे, क्यों कि श्रीमद्भागवत में यह तथ्य निर्दिष्ट है कि:—

"अहं भक्त पराधीनो ह्य स्वतन्त्र इव द्विजा:"

मैं परम स्वतन्त्र होते हुये भी पराधीन व्यक्ति के समान भक्तों के पराधीन हूँ। अत: इस प्रकार आपके स्थिर दर्शन का सौभाग्य भक्तों को इतनी सुगमता से अन्यत्र प्राप्त होना नितान्त असम्भव है। यह "तत्त्व समीक्षा स्तबक" ब्रह्म तत्त्व की विवेचनात्मक समीक्षा का प्रतीक है। इस में निर्गुण और सगुण दोनों रूपों की समीक्षा की गई है। इससे यह व्यक्त है कि ब्रह्म तत्व का ज्ञान अमर ज्ञान है, वह हृदय से ही हृदयान्तर में संक्रान्त होता है, उसको ग्रन्थ, वेद, पुराण, इतिहास पूर्णरूप से दिग्दर्शित कराने में नितान्त असमर्थ हैं। वह तत्त्व किसी भी प्रकार यदि प्राप्त हो सकता है तो केवल सद्‌गुरुदेव की कृपा से ही। उसके लिये अन्य कोई साधन संसार में है ही नहीं, उसे तो—

"सोइ जानइ जेंहि देहुं जनाई,
जानत तुम्हहिं तुम्हइ होइ जाई।
तुम्हरिहिं कृपाँ तुम्हहि रघुनन्दन
जानहिं भगत भगत उर चन्दन" ॥

वह तो केवल श्री गुरु कृपा साध्य, केवल भगवत् कृपा साध्य तत्त्व ज्ञान का आभास अन्य साधनों से अलभ्य है। उसे प्राप्त कर लेने के पश्चात् मनुष्य को और किसी वस्तु के लाभ की आवश्यकता ही नहीं रहती—

"यल्लब्ध्वा चाधिकं लाभं मन्यते नाधिकं ततः"॥

अर्थात् उस परम लाभ को प्राप्त कर लेने पर मनुष्य की सम्पूर्ण वासनायें स्वतः शांत हो जाती है, और वह सर्वदा के लिये निहाल हो जाता है।

(११)

स्तव राजमिमं पुण्यं
पठन्ति श्रद्धयान्विताः ।
श्री गुरोः कृपया तेषां
करस्थाः सर्वसिद्धयः ।।

इस परम पवित्र स्तव राज, अर्थात् "तत्त्व समीक्षा स्तव" मात्र का श्रद्धा भक्ति पूर्वक पाठ करने से श्री सिद्ध सिद्धेश्वर श्री गुरुदेव की कृपा से सम्पूर्ण भौतिक और आध्यात्मिक सिद्धियाँ पूर्ण सुलभ हो जाती है।

इसका वास्तविक अभिप्राय यह है कि यदि जीवन में मनुष्य को प्रतिदिन इतना समय मिल सके जिसमें सम्पूर्ण स्तव का नित्य पाठ कर सके तब तो परम आनन्द का कोई ठिकाना ही नहीं है, अन्यथा समयाभाव के कारण केवल तत्त्व समीक्षा दशक का पाठ करने से भी पूर्ण शान्ति और सुख की उपलब्धि होती है। क्यों कि ये मूल सूत्र हैं, इन ही से दिव्य ज्योति प्राप्त करके आगे के रहस्यों का उद्घाटन करने की सामर्थ्य प्राप्त हुई है। यह मेरा निजी अनुभव है। आप भी अनुभव प्राप्त करने के लिये इस कर्मभूमि में आये हैं, अनुभव करके देखिये, अग्नि का दाहकत्व कस्तूरी की सुगन्धि और मणियों के दिव्य प्रकाश का विश्वास दिलाने के लिये शपथ की आवश्यकता नहीं होती है, वह तो त्रिकाल सत्य, ध्रुव और अटल तत्व हैं ।।११।।

इति श्री तत्त्व समीक्षा सुमनस्तबकम्

शुभम्

ॐ

श्री सिद्ध सिद्धेश्वराय सद् गुरवे नमः ।

अथ स्वरूप समीक्षा सुमनस्तवकम् ॥

(१)

महेन्द्राचल सम्भूता
योगि सागर गामिनी ।
पुनातु भुवनं पूर्णा
पुण्यस्तुति कथा नदी ॥

श्री सद्गुरु स्तुति कुसुमाञ्जलिः के द्वितीय स्तबक का नाम "स्वरूप समीक्षा सुमनस्तबक" निर्द्धारित किया गया है। इसमें परात्पर ब्रह्म के भिन्न भिन्न स्वरूपों का दिग्दर्शन करा के केवल एक अनिवर्चनीय शिव तत्व की सिद्धि सम्पादित की गई है, तथा उसी की सर्वात्मना शरण ग्रहण करने में मानव जीवन की सार्थकता द्योतित की गई है।

यह परम पवित्र कथा स्तुति-रूपी लोकपावनी गंगा अन्य नदियों की अपेक्षा अधिक विचित्र है। सांसारिक नदियां जल के प्रवाह को प्रवाहित करती हैं, तथा उनमें स्नान करने से मनुष्य की शारीरिक तथा मानसिक शुद्धि करती है। किन्तु इस कथा नदी में यह विचित्रता है कि शब्द स्वरूप ही इसकी जलधारा है, और शब्द नित्य आकाश का गुण होने के कारण नित्य वस्तु है, तथा वायु-मण्डल में अक्षुण्ण रूप से व्यापक रहने के कारण, जहाँ पर नदियों का जल नहीं पहुँच सकता ऐसे स्थानों पर भी जैसे पर्वत गुफाएँ और कन्दराओं में भी समान रूप से सर्वदा प्रवाहित रहने वाली वस्तु है।

तथा नदियाँ तो केवल उसी प्रदेश को पवित्र बनातीं हैं, जहाँ से उनका प्रवाह प्रवाहित होता है, किन्तु इस स्तुति नदी में यह विशेषता है कि एक साथ सम्पूर्ण त्रैलोक्य को पवित्र करने की शक्ति इसमें समान रूप से विद्यमान है। नदियों पर स्नानार्थी को नदी तट पर जाने की आवश्यकता होती है, परन्तु यह गंगा तो शब्द का रूप धारण करके प्रत्येक जिज्ञासु भक्त के घर पर ही पवित्र करने के हेतु पुस्तक रूप धारण करके स्वयं पहुँच जाती है। अन्य नदियाँ जिस प्रकार पर्वतों से अवतीर्ण होती हैं उसी प्रकार यह ज्ञान गंगा भी श्री महेन्द्राचल से अवतीर्ण होती है। यहाँ पर श्री स्वनाम धन्य श्री महेन्द्र स्वामी को आलङ्कारिक भाषा में अचल का रूपक दिया गया है, सो वास्तव में युक्ति युक्त प्रतीत होता है, क्यों कि पर्वत जिस प्रकार स्थिर हैं, अचल हैं, उस ही प्रकार श्री स्वामीजी महाराज की श्री परम पूज्य गुरुदेव के श्री चरणों में अचल श्रद्धा है, तथा समाधिस्थ रूप का स्वरूप नितान्त अचलाकार ही प्रतीत होता है। उस पवित्र महेन्द्राचल से यह परम पावन ज्ञान-गंगा प्रादुर्भूत होती है, जिस प्रकार लौकिक और दिव्य नदियाँ समुद्र में अवसान प्राप्त करती है, उसी प्रकार यह परम पावन ज्ञान गंगा भी श्री गुरुदेव के श्री चरणारविन्दों तक स्वयं पहुँचती है, तथा अपने यात्रियों को सुगमता पूर्वक पहुँचाती है, ऐसी यह ज्ञान सुरसरिता सर्वात्मना परिपूर्ण है, और अपनी परिपूर्णता तथा पवित्रता से न केवल एक लोक को ही पवित्र करती है, बल्कि, त्रैलोक्य को पवित्र करती हुई सम्पूर्ण चराचर विश्व के कल्याण में सर्वदा निरत है।

धन्य है इस परम पावनी ज्ञान गंगा को, और धन्य है उन अवगाहन करने वाले भाग्यशाली भक्त-वृन्दों को जो इस में अवगाहन करके कायिक, मानसिक, वाचिक और आध्यात्मिक शान्ति तथा आनन्द का रसास्वादन करते हैं।

(२)

योगीश्वराणां चरणं पवित्रं
योगीश्वराणां वचनं पवित्रम् ।
योगीश्वराणां मननं पवित्रं
योगीश्वराणां शरणं पवित्रम् ।।

इस असार संसार में भगवच्चरित्र ही एक ऐसी वस्तु है, जिसे "पावनं पावनानां" का रूप दिया जा सकता है, अर्थात् भगवद् गुण गाथा में ही पवित्र वस्तुओं को पवित्रतम बनाने की अक्षुण्ण शक्ति विद्यमान है, श्री योगिराजों के चरणारविन्द परम पवित्र हैं, क्यों कि—

"प्रायेण तीर्थाऽभिगमापदेशैः
स्वयं हि तीर्थानि पुनन्ति सन्तः ।।

सन्त पुरुष कुम्भ आदि समयों पर तीर्थ स्थानों में जाने के वहाने से तीर्थों को भी अपनी चरणरज से पवित्र करते हैं।

संसार के महान् पापों की निवृत्ति धर्मशास्त्र के आधार पर तीर्थ स्नान से होती है। अहर्निश पापियों के पाप के समावेश से तीर्थों में भी समयानुसार शक्ति का ह्रास होना आवश्यक है, किन्तु उन तीर्थों के जल को समय समय पर सन्त पधार कर अपने परम पुनीत चरण-न्यास से पुनः निष्पाप और पूर्ण प्रभावान्वित बनाते रहते हैं। इस लिये शास्त्रकारों ने योगीश्वरों के चरण कमलों को परम पावन माना है। तथा योगीश्वरों के वचन भी परम पवित्र होते हैं, उनके श्रवण मात्र से पूर्ण अज्ञानी पुरुषों में भी ज्ञान का प्रकाश प्रादुर्भूत होता है, तथा सत्संग में सुने गये उपदेशों से सद्यः मनुष्य के मन को परम शान्ति प्राप्त होती है।

इसी प्रकार योगीराजों के स्मरण और मनन भी परम पवित्रता के प्रतीक हैं। स्मरण करने मात्र से मन में उत्पन्न नाना प्रकार के

कुत्सित संकल्पों का सद्यः नाश हो जाता है। योगीश्वरों की शरण तो निस्संदेह पवित्रतम है ही, क्योंकि कैसी भी कलुषित आत्मा क्यों न हो, सच्चे हृदय से महापुरुषों की शरणागति प्राप्त करने पर स्वतः पवित्र हो जाती है, तथा अन्य व्यक्तियों को पवित्र करने की अलौकिक सामर्थ्य से सम्पन्न हो जाती है ॥२॥

(३)

हृदयारविन्दे वस मे ह्यजस्रं
न त्वद् विना मे विरहाग्नि शान्तिः ।
शान्तस्य ते दर्शन मात्र जन्मा
मिष्टान्नवन्मे मनसो न शान्तिः ॥

हे शरणागत वत्सल जगदाधार ! मुझ पापी के हृदयारविन्द में आप निरन्तर निवास कीजिये, क्योंकि आपको प्राप्त किये बिना मेरी विरहाग्नि का शान्त होना असम्भव है। यह हृदयाग्नि काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य का भयंकर रूप धारण करके जीवात्मा को प्रतिक्षण भस्मसात् करना चाहती है। अतः आपकी मधुर मूर्ति का दर्शन परम शान्त और शान्ति प्रद है, परन्तु हे प्रभो ! मेरे जीव की आपके केवल दर्शन मात्र से तृप्ति नहीं हो सकती। यह तो माया-नर्तकी के पूर्ण चक्र में चढ़ा हुआ है। जिस प्रकार हलवाई की दुकान पर सजाई हुई मिठाइयों के देखने मात्र से भूख की शान्ति होना असम्भव है। इसे तो परमशान्ति तब ही प्राप्त हो सकती है, कि जब आप मेरे हृदय को अपना स्थायी निवासस्थान बनाकर कृतकृत्य करने की अनुकम्पा करेंगे। अतः इस शून्य हृदय में विराजकर मुझे आनन्दित करने की कृपा कीजिये ॥ ३ ॥

(४)

दन्दह्यमानोऽस्मि कलत्र वित्त
चिन्ता चितायां भवतः समक्षम् ।
कथं कृपाचार्य भवत्कृपा कणा
नार्तार्ति सक्षोभ हरान्न मुञ्चसि ॥

हे कृपाचार्य ! कृपा करनेवाले पूज्य आचार्यदेव ! इस अपार भव-वारिधि में मैं पत्नी, धन, पुत्र आदि अनेक ईषणाओं की चिन्तारूपी चिता में आपके समक्ष जल रहा हूँ। ऐसी दशा में दुखी जीवों के दुःख को तुरन्त शान्त करने में पूर्ण प्रभावशाली अपने कृपाऽमृत के बिन्दुओं से मेरी आत्मा को सिंचित करके क्यों नहीं शान्त करने की कृपा करते हैं ? प्रारम्भ में श्री पूज्य गुरुदेव को कृपाचार्य पद से सम्बोधित करने का यह अभिप्राय है कि आप कृपा के आचार्य परम कारुणिक हैं। इस संसाररूपी कर्दम में मैं आकण्ठ मग्न हूँ, कभी पत्नी के भरण-पोषण की चिन्ता में व्यग्र रहता हूँ, तो कभी गृहस्थ के तेल नमक लकड़ी के चिन्तन में लगा रहता हूँ, कभी बच्चों की पढ़ाई की चिन्ता और कभी उनके वस्त्र-भोजन की चिन्ता मेरी आत्मा को पीडित करती है, वह चिन्ता ही मानो एक प्रकार की भयंकर चिता है, क्योंकि चिन्ता को महापुरुषों ने चिता की अपेक्षा अधिक घातक सिद्ध किया है। और चिता मृतक शरीर को ही जलाकर भस्म करती है, परन्तु यह चिन्ता ऐसी भयंकर है कि जीवित शरीर को ही सुखा-सुखाकर जलाती है, घुला-घुला कर मारती है । वह चिन्ता-रूपी चिता यदि आपके परोक्ष में मुझे जलाती तो कोई व्याकुलता की बात नहीं थी। बिना रक्षक के भाग्य का खेल समझकर उस जलन को मैं सहन कर लेता, परन्तु अधिक दुःख की बात यह है कि "भवतः समक्षम्" अर्थात् आपके देखते-देखते उसमें जल रहा हूँ, और आपका विरद कृपाचार्य है, फिर मेरी पीड़ा को, सांसारिक आधि-व्याधियों को शांत करने के लिए मुझ पर कृपाऽमृत बिन्दुओं की

वर्षा क्यों नहीं करते ? जिनसे मेरे सब क्लेश दूर हो जावें, और मैं आपकी कृपा से सुख का अनुभव कर सकूँ, जिससे आपका कृपाचार्य विशेषण भी पूर्ण सार्थक हो जावे ॥ ४ ॥

(५)

केचिज्जनाः त्वां कृपमाहुरीड्य
यतिं च केचिन्नृपतिं च केचित् ।
सर्वं स्वरूपस्य न तेऽस्ति रूपं
रूपाणि सर्वाणि तवैव रूपम् ॥

हे नाथ ! कुछ मनुष्य स्तुति करने योग्य आपके शुभ स्वरूप को कृपाचार्य मानते हैं, तथा कुछ व्यक्ति आपको यतीन्द्र मानते हैं। कुछ लोग आपको महाभारत कालीन किसी राजा का रूप मानते हैं। आप तो सर्वगत सर्वस्वरूप हैं। अतः आपका कोई विशेष रूप नहीं है। यावन्मात्र संसार के सब रूप आपके ही स्वरूप होने से, सम्पूर्ण प्राणियों के यावन्मात्र रूप सब आपके ही स्वरूप तथा आपकी ही शक्ति से प्रतिभासित, और आपकी ही चिच्छक्ति से अनुप्राणित हैं।

(६)

रूपं त्वदीयं नयनाभिरामं
शान्ताकृतिं संयम शोभिगात्रम् ।
दृशापिवन्तोऽपिन तृप्तिमापु
र्लेखा अलेखत्व मनुप्रपन्नाः ॥

हे मन्मथ मन्मथ ! आपका स्वरूप परम शोभा का निधान है, आपका योगी वेश तथा आकृति परम शान्त है, और आपके परम सुन्दर गात्र संयम के कारण परम सुषमा के आकर हैं। आपकी रूप माधुरी का पान करने के कारण ही मानों देवता आश्चर्य चकित होकर निर्निमेष दृष्टि से आपके दर्शन करते हुये चित्र लिखित

से प्रतीत होते हैं। यहाँ देवताओं की स्वतः निर्निमेष वृत्ति को आश्चर्यजन्य मानकर उत्प्रेक्षा की गई है ॥ ६ ॥

(७)

अहं तृषार्तोऽस्मि अनेक जन्मलि
निरीक्षितुं ते वदनारविन्दम् ।
पुनः पुनर्जीवन मृत्यु श्रृङ्खला
बद्धोऽपि किं नाथ ! न तेऽनुकम्प्यः ॥

हे देव ! मैं अनेक जन्म जन्मान्तरों से आपके मुखारविन्द के दर्शन की पिपासा से प्यासा हूँ, अर्थात् बारम्बार संसाररूपी रंगमंच पर जन्म ले ले कर कालग्रास बनता हूँ, तथा पुनः पुनः जन्म लेता हूँ। यहाँ अनेक नाटक दिखाकर पुनः मृत्यु का ग्रास बनता हूँ, फिर पैदा होता हूँ और मरता हूँ, और बारम्बार जीवन और मृत्यु रूपी बेडियों में जकडा जाकर आपके समक्ष उपस्थित किया जाता हूँ, फिर भी हे नाथ ! मेरी इस प्रकार अपराधी कैदी के समान दयनीय दशा को देखकर भी आपके चित्त में मेरे प्रति दया के भाव क्यों नहीं जागृत होते हैं ? महान् अपराधी भी जब ऐसी दयनीय दशा में बारम्बार आकर रक्षा की प्रार्थना करे तो प्रत्येक दयालु की वृत्तियाँ उस पर दया करने को अवश्य प्रेरित होती हैं। परन्तु न मालूम मेरा ऐसा कौन सा अपराध है, जिसके कारण आपको मेरी दयनीयतम दशा पर भी दया नहीं आती। अतः हे करुणा वरुणालय ! यह अपराधी अब इस जन्म में तो आपकी दया भिक्षा का पात्र बन सके ऐसी कृपा कीजिये, जिससे आपके दयालुता, और कृपालुता के विरद की भी रक्षा हो, और मेरा आपकी कृपा दृष्टि से इस भव सागर से उद्धार हो जावे। ॥७॥

(८)

अनुकम्पस्व मां दिनं
शरण्य ! शरणागतम् ।
शरणागत दीनानां
परित्राण परायण ! ॥

हे शरण्य-शरणागत प्रतिपालक ! मैं परम हीन और दीन हूँ, आपके शरणागत वत्सल विरद को स्मरण करके आपकी शरण में आया हूँ। आप शरण में आये हुये दीन पुरुषों की रक्षा करने में निरन्तर बद्ध परिकर हैं। अतः मुझ दीन पर दया करें, दया करें, दया करें। यदि मेरे कर्म दया करने योग्य नहीं हैं, तब भी आप आप अपने शरणागत परित्राता विरद की रक्षा के हेतु ही इस अनाथ पर कृपा कीजिये ॥ ८ ॥

(९)

योगेश ! योगीश्वर योग योक्ता
योग्योऽसि योगार्जित भूति भोक्तुम् ।
योग्येषु योगस्य निधिं निधातुं
योगाग्निना ते पुनरेव योगः ॥

हे योगेश ! आप योगियों के अधिराज हैं, और योग शास्त्र के सिद्धहस्त कर्णधार हैं। अतः योग द्वारा उपार्जित ऐश्वर्य के भोगने के पूर्ण योग्य हैं। परन्तु योगोपार्जित वैभव का भोग न करके, आप इस प्रकार सन्त सम्राट् के वेश में ही आत्मा में रमण करते हैं, इसका कारण यह प्रतीत होता है कि संसार के सुयोग्यतम व्यक्तियों में योग की दिव्य सिद्धियों का आधान करने के हेतु आप बारम्बार योगाग्नि से अपने शरीर को भस्म करके पुनः पुनः नवीन यौगिक जरा मृत्यु रहित कलेवर धारण करके इस ही वेश में पु

पुनः विचरते हैं। कदाचित् आपकी ऐसी अन्तरंग इच्छा प्रतीत होती है कि जिस प्रकार भयंकर कलिकाल ने संसार के वेदशास्त्र और विद्याओं का अन्त कर दिया है, इसी प्रकार योग शास्त्र का भी अन्त न कर दे, नहीं तो बस संसार का सर्वनाश हो जावेगा।

अतः जब तक कोई उचित उत्तराधिकारी आपको न मिले तब तक योग निधि की धरोहर आप किसके पास रक्खें, दूसरी बात यह है कि—

"अहष्ट्वाऽन्यतमं लोके रूपौदार्य गुणैः समम्"

अर्थात् रूप, उदारता और गुणों में आपके समान और कोई दूसरा है ही नहीं, जिसे आप इस अनुपम निधिका योग्य उत्तराधिकारी समझ सकें। अतः स्वयं ही उसकी रक्षा के निमित्त योग द्वारा अपने भौतिक शरीर को योगाग्नि से सुसंस्कृत कर के नवीनता का सम्पादन करते हैं। धन्य है आपकी महिमा, और धन्य आपका लोक हित के लिये योगदर्शन रक्षा का सिद्धान्त। हम तुच्छ जीव आपके गुणों का कहाँ तक गुणगान कर सकते हैं ॥ ९ ॥

(१०)

त्वमेव योगैरखिलैर्विमार्ग्यः
मार्ग्योऽसि भोगैरपि भाग्यवद्भिः
दृशि त्वदीये सम भोग योगौ
कृपा त्वदीयाऽत्र विशेष कारणम् ॥

हे योगी हृदयहँस ! सम्पूर्ण योग साधनाओं के द्वारा अहोरात्र योगी लोग अपने हृदयकमल में आपके दर्शन प्राप्त करने के प्रयत्न में तत्पर रहते हैं।

उनकी पूर्ण योग साधना के प्रभाव से भी आपका दर्शन भाग्य से ही किसी किसी समाधिस्थ योगी को यदा कदा प्राप्त होता

है, परन्तु हे भगवन् ! जो इस संसार में पूर्ण भाग्यशाली हैं,— उनको सांसारिक भोगों में रत होने पर भी भोग सामग्री में ही आपकी त्रिभुवन कमनीय छवि के दर्शन प्राप्त हो जाते हैं क्योंकि आपकी दृष्टि में भोग और योग को समान स्थान प्राप्त है।

यह ही निश्चित नहीं है कि आपके दर्शनों से केवल योगी ही कृत कृत्य हो सकें, और सांसारिक भोगानुरक्त नितान्त वञ्चित ही रहें, क्योंकि आप तो साक्षात् ब्रह्म हैं, और भोले भण्डारी आशुतोष हैं, इस लिये आपकी विशाल दृष्टि में भोग और योग समान हैं, केवल आपकी कृपा ही आपके दर्शन और दया के प्रति प्रधान कारण है। भोग और योग ये सांसारिक उपाधियाँ हैं। जब आपके श्री चरणों की कृपा होती है, तब इनकी कोई आवश्यकता ही नहीं "किस विधिराजी राम" यह वास्तविक ज्ञान होना ही मनुष्य को दुर्लभ है। जो सर्वात्मना आपके श्री चरणाश्रित श्रद्धालु सच्चे भक्त हैं, उनको दर्शन देने के लिये आप उनके पीछे पीछे फिरते हैं, क्योंकि आपकी प्रतिज्ञा है कि—

"नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ताः यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद !"॥

"हे परम भागवत ! भक्त नारद ! न तो मैं वैकुण्ठ धाम में ही निवास करता हूँ, और न योगी पुरुषों के हृदय में ही निवास करता हूँ, मेरे परम श्रद्धालु भक्त जहाँ मुझे गान करते हैं, स्मरण करते हैं, वहीं पर सर्वदा निवास करता हूँ"। इस प्रतिज्ञा के अनुसार भाग्यशाली व्यक्तियों को भोग विभूतियों में रत रहते हुये भी भगवद्दर्शन का आह्लाद प्राप्त होता है, परन्तु वह सब उस जगत्कारण कारण, परम कौतुकी, अखिल विश्व चित्तचोर की केवल कृपा से ही साध्य है।

परम स्वतन्त्र होने के कारण यह पता लगाना नितान्त असम्भव

है कि उसकी सन्तुष्टि किस कार्य से है। जो कार्य लौकिक दृष्टि में निन्दनीय प्रतीत होता है; अनेक स्थान पर आप उससे भी प्रसन्न होते देखे गये हैं, अतः हमें तो—

"राजी हैं हम उसीमें, जिसमें रजा है तेरी
यहाँ यूं भी वाह वाह है, और यूं भी वाह वाह है"

केवल कृपा के भिक्षुक को अपनी भीख से काम है। भिक्षा देने वाले के कार्य की समालोचना या उसकी प्रवृत्ति निवृत्ति से कोई सरोकार नहीं। अतः हे दीनबन्धो ! मुझ दीन पर भी कृपा कणों की अमृत वर्षा कीजिये ॥ १० ॥

(११)

कृपा कटाक्षं कुरु शान्त बुद्धे !
शान्तस्य ते शान्तिमयं कटाक्षम् ।
भवाम्बुधेस्तीव्र तरङ्ग ताडितः
कृपा कटाक्षेण भवामि शान्तः ॥

हे परम शान्त स्वरूपिन्! आप इस तुच्छ सांसारिक जीव पर अपनी परमानन्द मयी कृपा दृष्टि का सुन्दर दान दीजिये, आपका स्वरूप परम शान्त है, तथा दृष्टिपात में पूर्ण शान्ति विद्यमान है। इस भयंकर संसार समुद्र की उत्कट तरङ्गों से ताडित हूँ, यदि ऐसी दशा में आपकी कृपा दृष्टि से मुझे परम शान्ति प्राप्त हो जावेगी तो मैं निहाल हो जाऊंगा, अर्थात् इस भयंकर संसार सागर में जिधर भी दृष्टि पड़ती है उधर ही चारों ओर अशान्ति की ज्वालायें दिखलाई दे रही हैं, यदि कहीं सुखद शीतल छाया दिखलाई देती है तो वह केवल आपके श्री चरणों के आश्रय में दिखती है। अतः आप श्री चरणारविन्दों का आश्रय प्रदान कर अनुग्रहीत करने की कृपा करें ॥ ११ ॥

(१२)

भवार्णवेऽस्मिन्दुख बीचि संकुले
पुत्राप्त बान्धव कलत्र कुटुम्बि मत्स्यैः ।
छिन्नस्य मे मर्मसू नास्ति हृद्-व्यथा
त्वत्कूर्त टोप निग्रहीत चेतसः ॥

हे कारुण्य वारान्निधे ! यह संसार रूपी समुद्र दुःख रूपी तरङ्गों से चारों ओर से क्षुब्ध है, और इस में मेरी जीवात्मा बुरी तरह निमग्न है, तथा पुत्र, पुत्री, कुटुम्बी, और स्त्री रूपी मगर मच्छ और मच्छियां मेरे मर्म स्थलों को निरन्तर काट रहे हैं। कभी पुत्र कहता है "मुझे पुस्तक लाओ", पत्नी कहती है "पुत्री विवाह योग्य हो गई, वर ढूँढो," इत्यादि प्रेरणाओं से अहर्निश मनुष्य कभी मानसिक व्यथा से और कभी भयङ्कर रोगों से व्यथित होता है। ये सब मानों मच्छियों के समान इस प्राणी के मर्मस्थल की मांस पेशियां उपाड़ उपाड़ कर खाती हैं। फिर भी हे नाथ ! मेरे हृदय में आपकी कुर्ता और टोपी से विभूषित सुन्दर छवि विद्यमान है। जिसके कारण इन सांसारिक क्लेशों से ज़रा भी दुःख प्रतीत नहीं होता, क्योंकि मूर्च्छित मनुष्य का जब डाक्टर ओपरेशन करता है, तब उसको तनिक भी कष्ट का पता नहीं लगता। इसी प्रकार आपकी रूप सुधा ने मेरे मन को आप्लुत कर रक्खा है। अतः सांसारिक कष्ट मुझे ज़रा भी दुःखदायी प्रतीत नहीं होते। सब कुछ सुख दुख हानि लाभ आपकी कृपा का फल समझकर सहर्ष सहन कर लेता हूँ ॥ १२॥

(१३)

कुर्ता टोप धरं वन्दे
अर्द्ध मीलित लोचनम् ।
सिद्धासन समासीनं
सर्व सिद्धि नमस्कृतम् ॥

हे देव! मिरजई कुर्ता और टोपा धारण किये हुये आपके स्वरूप को जिसमें ध्यान मुद्रा के कारण नेत्र अर्द्ध मीलित हैं, तथा आप सिद्धासन से विराजमान हैं, और सम्पूर्ण ऋद्धि सिद्धि नमस्कार कर रही हैं, ऐसे दिव्य रूप को मैं बारम्बार प्रणाम करता हूँ ॥ १३ ॥

(१४)

शिव एव शिवः शिव एव शिवः
शिव एव शिवः शिव एव शिवः ।
शशि मण्डल मण्डित भाल धरो,
हर एव हरो हर एव हरः ॥
फरिण मण्डित दिव्य कपोल धरो,
भव एव भवो भव एव भवः ।
गुरु रेव गुरु र्गुरु रेव गुरु,
र्गुरु रेव गुरु र्गुरु रेव गुरुः ॥

हे प्रभो! आप का दिव्य शिव रूप चराचर सम्पूर्ण विश्व में व्यापक है। पृथ्वी, आकाश, जल, तेज और वायु अखिल परमाणुओं तक में आपका शिव स्वरूप ही चारों ओर व्याप्त है। अर्थात् "सर्वं ब्रह्ममयं जगत्" के सिद्धान्त के अनुसार सर्वत्र दृश्य पदार्थों में शिव का स्वरूप ही विद्यमान है, तथा चन्द्र मण्डल से विभूषित भालयुक्त सर्वत्र हर ही हर है। हर के अतिरिक्त कोई सत्ता ही संसार में विद्यमान नहीं है। नाग राज वासुकि से विभूषित कपोल को धारण करने वाले भव ही भव की सत्ता सर्वत्र विद्यमान है। हे गुरो! आप साक्षात् चन्द्रांशुभाली श्री शिव गुरुदेव ही शिव गुरुदेव की सत्ता सर्वत्र व्यापक है। उसके अतिरिक्त कोई शक्ति संसार में है ही नहीं, अर्थात "सर्वं शिवमयं जगत्" या "सर्वं गुरुमयं जगत्" की प्रतीति होना यह आपकी ही एक मात्र कृपा का फल है ॥ १४ ॥

(१५)

हृदयाब्जे   महेन्द्रेण
        धृतोऽसि ज्ञान काम्यया।
महेन्द्राचल प्रोद्यन्तं
        भास्करं प्रणतोऽस्म्यहम् ॥

हे परम कारुणिक श्री गुरुदेव ! आपके श्री चरणाश्रित भक्त शिष्य महेन्द्र ने ज्ञान की शिक्षा प्राप्त करने के लिए आपके शुभ स्वरूप को अपने हृदय कमल में धारण किया है। अर्थात् श्री महेन्द्र स्वामी के हृदय कमल को आपने अपनी दिव्य रश्मियों से प्रफुल्लित किया है। उसके पश्चात् महेन्द्र रूपी अचल पर उदीयमान आप सूर्य देव के श्री चरणों में मैं बारम्बार प्रणाम करता हूँ।

उपरि लिखित पद्य में गुरु स्वरूप को सूर्य का रूपक प्रदान किया गया है, तथा श्री महेन्द्र स्वामी में उदयाचल के समान महेन्द्राचल का आरोप किया गया है, जिस प्रकार उदयाचल पर उदीयमान सूर्य को सम्पूर्ण संसार प्रणाम करता है, और सूर्य देव के साथ साथ जिस पर्वत को सूर्योदय कराने का गौरव प्राप्त है उसे भी लोग प्रणाम करते हैं। क्योंकि उसकी कृपा से ही लोग सूर्य का दर्शन प्राप्त करते हैं। उसी प्रकार श्री महेन्द्र स्वामी को ही आपके दिव्य स्वरूप का हम लोगों को ज्ञान प्रदान करने का गौरव प्राप्त है। अतएव वे भी पूर्ण श्रेय के अधिकारी हैं, अन्यथा हम सांसारिक प्राणियों की बुद्धि सर्वदा ही भ्रान्त रहती, और ज्ञान का दिव्य प्रकाश हमें किसी भी प्रकार प्राप्त होना नितान्त असम्भव था। अतः हम आपके साथ साथ आपका भान कराने वाले श्री महेन्द्र देव के भी पूर्ण ऋणी हैं ॥१५॥

(१६)

विश्वोद्भव प्रलय पालन कर्णधार।
धार्यः कथं स्याद् हृदयारविन्दे ।
धाराप्रवाहित मदीय शरीर नौकाम्।
धृत्वा करेण शनकैश्चरणे बेधान ।।

हे जीवन नौका कर्णधार! आप सम्पूर्ण संसार के उत्पत्ति पालन और प्रलय कार्य के कर्णधार हैं, अर्थात् अपनी दिव्य शक्ति से ब्रह्म रूप धारण करके सम्पूर्ण विश्व को उत्पन्न करते हैं, विष्णु रूप से सब का पालन-पोषण करते हैं। शंकर रूप से अखिल विश्व का संहार करते हैं। ऐसे आपके महान् स्वरूप को मैं अपने तुच्छ हृदय में किस प्रकार धारण कर सकता हूँ। हे देव! मेरी यह शरीर रूपी नौका सृष्टि रूपी भँवर में फँसी हुई है, अर्थात् जल के भँवर में जो नौका फँस जाती है, वह डूबने से पहिले चारों ओर बार बार फिरती है, उसी प्रकार मैं भी बारम्बार जीवन और मृत्यु का शिकार बन रहा हूँ, तथा इस भयंकर सृष्टि के भ्रम में फँस कर मेरी बुद्धि भ्रान्त हो गई है। अब आप मुझ पर कृपा करके अपने श्री चरणारविन्द रूपी तीर भमि पर मेरी इस जीव-नौका को आश्रय देने की कृपा करें। भँवर में पड़ी हुई नौका को यदि कोई सामर्थ्यशाली व्यक्ति सहायक हो तो वह खैंच कर तट पर लगा सकता है। इस ही प्रकार आप से बढ़ कर सामर्थ्यशाली संसार में कौन है। जिससे प्रार्थना करके त्राण की इच्छा प्रकट करूँ, अब तो आपके हाथ ही लाज है। मैं आपका हूँ, चाहें तो डुबा दें, चाहें तो पार लगा दें, अतः आशा यह ही करता हूँ कि आप जैसी दिव्य-विभूतियाँ तो संसार का कल्याण करने के लिए ही अवतीर्ण होती हैं, सो आप अनुकम्पा करके मेरी जीवन तरी को अवश्य ही श्री चरणों की शरण प्रदान करने की कृपा कीजिए ॥१६॥

(१७)

आदिनाथ ! कृपानाथ !
नाथनाथ ! जगद्गुरो ।
अनाथनाथ ! नाथेश !
अनाथान्नाथयस्वनः ॥

हे आदिनाथ ! अर्थात् नाथ सम्प्रदाय के सर्व प्रथम प्रवर्तक श्री शिव गोरख ही हैं, अतः आप सर्व प्रथम नाथ हैं। तथा कृपानाथ हैं, बड़े दयालु हैं, स्वामियों के भी स्वामी हैं, और अखिल विश्व के एक मात्र गुरु हैं। तथा अनाथों के एक मात्र स्वामी हैं जिनका संसार में कोई भी रक्षक नहीं है, उनके रक्षक आप ही हैं, तथा नाथों के नाथ हैं और स्वामियों के भी अधिपति हैं, अतः आप जैसे सामर्थ्यशाली अनाथों के नाथ की उपस्थिति में भी हम किस प्रकार अनाथ रह सकते हैं, अतः कृपा करके शीघ्रसनाथ कीजिए, ताकि आप जैसे सर्व समर्थ स्वामी को प्राप्त करके हमारी आत्मा सनाथ हो जावे, और इस में बल तथा आत्म विश्वास और साहस का आपके आश्रय से संचार हो सके ॥१७॥

(१८)

विष्णुः क्रोशति सत्येन
विष्णोः शपथ पूर्वकम् ।
सुलभा सकला सिद्धि
योगिराज प्रसादतः ॥

हे सर्वज्ञ ! यह आपके श्रीचरणाश्रिताश्रित विष्णुदत्त संसार के मिथ्या प्रपञ्च में फँसे हुए लोगों को विश्वास दिलाने के लिए अपने इष्टदेव भगवान् विष्णु की शपथपूर्वक पुकारता है, कि सम्पूर्ण इहलौकिक तथा पारलौकिक सिद्धियाँ आपकी कृपा से मनुष्य को पूर्ण सुलभ हो सकती हैं, इसमें तनिक भी सन्देह को स्थान नहीं है ॥१८॥

(१६)

नाथितो भवता नाथ !
अनाथो लोक नाथकः ।
लोक नाथोऽपि संत्यक्तो
अनाथो लोक भिक्षुकः ॥

हे नाथ ! आपसे सनाथ किया गया अनाथ प्राणी भी लोकनाथ लोकेश्वर बन सकता है। आपके द्वारा उपेक्षित संसार का सम्राट् भी अनाथ बनकर घर-घर भिक्षाटन करता फिरता है। किन्तु भिक्षा से भी पेट नहीं भर सकता है, क्योंकि भगवद् विभूति मर्मज्ञ श्री गोस्वामीजी ने लिखा है कि "भीख न मिलहिं कुबेर घर, जो कुदृष्टि रघुवीर" अर्थात् जिसपर प्रभु की कुदृष्टि है, उसको कुबेर के समक्ष हाथ फैलाने पर भी भिक्षा नहीं मिल सकती। अतः आपकी कृपा ही सकल कल्याण की जनयित्री है। उसी कृपा के हम सांसारिक जीव भिक्षुक हैं। अतः हमपर वही दिव्य कृपा करके हमें भी सनाथ बनाइए ॥ १६ ॥

(२०)

शिवनाथ शिवानाथ !
नाथेषु हीरकोपम !
त्वया नाथेन धन्यास्ते
सनाथाः लोकनायकाः ॥

हे त्रिभुवननाथ त्रिलोचन ! आप ही शिवनाथ हैं, तथा आप ही पार्वती के प्रिय स्वामी हैं। नाथों में आप ही अपनी दिव्य छटा से हीरे के समान देदीप्यमान हैं। आप जैसे सर्व समर्थ स्वामी को प्राप्त करके इन्द्र, वरुण, कुबेर, यम आदि लोकपाल धन्य हैं। जिनके मस्तक पर आप जैसे सर्वसामर्थ्यशाली प्रभु विद्यमान हैं, आपकी छत्रछाया में वे निश्शङ्क और अखण्ड शासन कर रहे हैं ॥ २० ॥

(२१)

त्वमक्षर समोऽव्यक्तः
त्वमक्षर समोऽव्ययः ।
त्वामेवाक्षर ब्रह्माणं
साक्षराः हृद्युपासते ॥

हे योगीश्वर ! आप कभी क्षीण न होनेवाले अक्षर ब्रह्म ओंकार के समान अविनाशी हैं, अव्यक्त रूप सम्पन्न हैं, तथा त्रिदेव की अक्षुण्ण शक्ति से सदा विभूषित हैं। आप ॐकार के समान सृष्टि-प्रलय में भी नश्वर नहीं हैं। विद्वान् तथा ब्रह्मविद्या निष्णात पुरुष अक्षर ब्रह्म अर्थात् ॐकार रूप में आपकी ही हृदय में उपासना करके नैष्ठिक शान्ति को हृदय में प्राप्त करते हैं। अर्थात् वेदों का बीज ॐकार आपका ही साक्षात् स्वरूप है। और ॐकार के साक्षात् रूप आप हैं। ॐकार की उपासना आपकी उपासना है और आपकी उपासना ॐकार की उपासना है। ब्रह्म के इन दोनों रूपों में कोई भेद ही नहीं है ॥ २१ ॥

(२२)

त्वमक्षराणा मधिपोऽसि योगिन्
योगात्मभिर्योग दृषैव लक्ष्यः ।
लक्ष्योऽप्यलक्ष्यत्व मनुप्रपन्नो
प्रपन्न लक्ष्यैः पुनरेव लक्ष्यः ॥

हे योगेश्वर ! आप सम्पूर्ण अक्षरों के स्वामी अक्षर ब्रह्म रूप हैं। योगी पुरुष ध्यानारूढ़ होकर अध्यात्म दृष्टि से आपके ॐकार स्वरूप का अपने हृदय कमल में दर्शन करते हैं, और उसे अपना लक्ष्य बनाकर ध्यान करते हैं। पुनः आप उन योगी पुरुषों के लिये योगदृष्टि द्वारा लक्षित होकर भी कुछ समय पश्चात् अलक्षित हो

जाते हैं, अर्थात् यह मार्ग साकार से निराकारोपासना का प्रतीक है। इसको सुगमतापूर्वक यों समझिये कि प्रारम्भ में वे आपके ॐकार रूप का हृत्कर्णिका मध्य में दर्शन करते हैं। तत्पश्चात् ज्यों ज्यों योग साधना उत्तरोत्तर बढ़ती है, ॐकार का मान भी लुप्त हो जाता है, अथात् निराकार ब्रह्म का आभास हृदय में प्राप्त करते हैं। तत्पश्चात् जब योग की चरम सीमा पर पहुँच जाते हैं तब लक्ष्य को प्राप्त कर लेने पर आपका दिव्य स्वरूप पुनः दृष्टि गोचर होता है। अतः आपका स्वरूप योगियों द्वारा भी अज्ञेय है। मुझ जैसे सांसारिक विषय कीट उसे किस प्रकार समझने में सामर्थ्यवान् हो सकते हैं॥ २२॥

(२३)

त्वां लक्ष्यभूतं नयनाभिरामं
श्यामं सुनासं सुकपोल चक्षुषम् ॥
सिद्धासनं सिद्ध गणाधि सेवितं
वीक्ष्यैव लोका:उपयान्ति सिद्धताम् ॥

हे सिद्धाधीश! आप उन योगियों को जिन्होंने लक्ष्य सिद्धि प्राप्त कर ली है, किस प्रकार के रूप में दर्शन प्रदान करते हैं? अर्थात् जो आपका स्वरूप उनके चरम चक्षुओं का लक्ष्य बन जाता है, तथा नेत्रों को परम सुन्दर प्रतीत होता है। परम सुन्दर श्याम वर्ण से सुभाषित हैं, सुन्दर शुक तुण्डोंपम नासिका से युक्त है, सुन्दर तम कपोल और परम सुन्दर नेत्रों से मण्डित है। जिस छवि में आप सिद्धासन से विराजमान हैं, तथा सिद्धगण आपकी सेवा में कैलाश पर्वत पर तल्लीन हैं। ऐसी आपकी दिव्य छवि को देखने मात्र से ही प्राणी सिद्धता को प्राप्त कर लेते हैं, अर्थात् स्वयं सिद्ध बन जाते हैं॥ २३॥

(२४)

लक्ष्यात्परं त्वां मुनयो नमन्ति
लक्ष्यत्व मायान्ति त्वयाऽनुलक्षिताः।
अलक्षितो योग समाधि मद्भिः
भक्त्या प्रपन्नै श्चरमेन्द्रिलक्ष्यः॥

हे देवाधिदेव! महर्षि वर्य! आपको लक्ष्यवस्तु से परे अर्थात् इन्द्रियातीत रूप में महर्षिवृन्द नमस्कार करते हैं। आपके द्वारा जिन पर केवल एक बार भी कृपादृष्टि की गई है, वे लोग संसार के नेत्रों के लक्ष्य बन जाते हैं। अर्थात् सर्व ऐश्वर्य समन्वित बन जाने के कारण प्राणी मात्र को उनकी ओर देखना पड़ता है। हे देव! वैसे तो आप योग की समाधि में मग्न महर्षियों से भी अलक्षित हैं परन्तु पराभक्ति द्वारा आप चरम चक्षुओं के भी दृष्टिगोचर होने की कृपा करते हैं। यद्यपि आपका दिव्य स्वरूप ज्ञान दृष्टि से भी अलक्ष्य है फिर भी भक्तिद्वारा भक्त आप के रूप का दर्शन लौकिक नेत्रों से करने में समर्थ होते हैं। उचित ही है श्रीमद्-भगवद्गीता में भगवान् श्री कृष्ण ने अपने श्रीमुख से भक्त अर्जुन को उपदेश दिया है—

"भक्त्यामामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः"

केवल भक्ति से ही मेरे स्वरूप को जान सकते हैं कि मेरा विराट् स्वरूप कितना विशल है, और मैं कैसा हूँ।

वस्तुतः केवल भक्ति ही आपके स्वरूप ज्ञान और प्राप्ति का एक मात्र साधन है॥ २४॥

(२५)

सिद्ध सिद्धेश्वरं सिद्धं
सिद्ध सिद्धेश वन्दितम्।
सिद्धार्थं सिद्ध सन्देशं
सिद्धाधीशं नतोस्म्यहम्॥

हे सिद्धि साम्राज्य शालिन ! उपरि वर्णित महिमा समन्वित आप स्वयं सिद्ध हैं, और सिद्धों के स्वामी हैं, तथा सिद्ध और सिद्धेश्वरों से वन्दनीय हैं। आपके सम्पूर्ण अर्थ स्वतः सिद्ध हैं, तथा संसार को सिद्धत्व का सन्देश आपसे ही प्राप्त होता है, ऐसे श्री सिद्ध सिद्धेश्वराधीश श्री गुरुदेव ! आपके श्री चरणों में शतशः प्रणाम निवेदन होवें ॥ २५ ॥

(२६)

सिद्धेन्द्र ! सिद्ध सङ्कल्प !
सिद्ध संकल्प सूचक !
सिद्धं त्वां वीक्ष्य लोकेऽस्मिन्
भिक्षुको लोक वन्दितः ॥

हे सिद्धेन्द्र ! स्वयं सिद्ध मनोवाञ्छित ! (स्वयंसिद्ध सब काज) अर्थात् सिद्ध की वह पराकाष्ठा की दशा से सम्पन्न, जिसमें मन में सोचते ही तुरन्त कार्य की सिद्धि होती है। इस प्रकार कल्पवृक्षोपम विभूति सम्पन्न, आप सिद्ध हुई मन की कामना की सूचना भी भक्तवृन्द को तुरन्त प्रदान करते हैं। ऐसे परम सिद्ध-सिद्धेश्वर नरावतार श्री शङ्कर का दर्शन करने मात्र से भिक्षुक भी संसार से वन्दनीय हो जाते हैं। अर्थात् जिसने आपके दशन का सौभाग्य प्राप्त किया हो, वह सांसारिक दृष्टि से भिक्षुक होने पर भी सम्राट् की अपेक्षा कहीं अधिक सौभाग्यशाली है ॥ २६ ॥

(२७)

भक्त्या केवलया बद्धो
प्यबद्धः कर्म बन्धनैः ।
बन्ध मोक्षौ च ते देव !
अबद्धस्य विडम्बनम् ॥

हे भक्तवत्सल ! यद्यपि आप कर्मबन्धन से नितान्त असंयत हैं, फिर भी भक्ति के बंधन में बँधकर समय-समय पर अपने प्रिय भक्तों के आधीन रहते हैं। हे देव ! सांसारिक कर्मबन्धन और मुक्ति ये दोनों तत्त्व आप जैसे परम स्वतन्त्र नियन्ता के लिए एक विडम्बना है। अर्थात् जीव रूप से प्राणीमात्र के हृदय में विराजकर लौकिक बन्धन-ग्रस्त होना तथा मुक्ति की अभिलाषा प्रकट करना ये सब आप जैसे महान् सामर्थ्यशाली की लीलामात्र है ॥ २७ ॥

(२८)

त्वांधारणा ध्यान समाधियोगै
ध्र्यायन्ति लोकेश्वर ! ध्यानमास्थिताः ।
ध्यानावरुद्धोऽसि ममापि तामसं
दीप्तुं मदीयं हि मलीन मानसम् ॥

हे लोकेश्वर ! बड़े-बड़े महर्षिवृन्द, धारणा ध्यान और समाधि जो कि योग-शास्त्र के प्रधान अङ्ग हैं, उनके द्वारा निरन्तर ध्यान लगाकर आपका चिन्तन करते हैं। मैं योग की दुरूह क्रियाओं के ज्ञान से नितान्त शून्य हूँ, फिर भी आपकी दयालुता का स्मरण करके, तमोगुण की वृत्तियों से व्याप्त मेरे बन्ध-मोक्ष के कारण, इस मन को देदीप्यमान करने के हेतु आपकी दिव्य छबि को ध्यान में धारण करता हूँ। ताकि आपके विराजने से मेरे इस तमसावृत्त दुष्ट मन का उद्धार येनकेन प्रकारेण हो सके। अतः कृपा करके, इस मन-मन्दिर को, आपके निरन्तर विराजने से, कृतकृत्य करने की कृपा कीजिए ॥२८॥

(२९–३०)

मानसेऽस्मिन् महामोह–ध्वान्त सन्तत तामसे ।
तमसावृत्त सर्वस्वे तमोगुण परायणे ॥
वस त्वं राजहंसोऽसि हंस दीप्ति प्रदायक ! ।
तव सहवास सायुज्यान् मानसो मानसायताम् ॥

हे राजहंस ! इस महान् मोहरूपी अन्धकार से चारों ओर से निरंतर आवृत्त, संपूर्ण वृत्तियाँ जिसमें अज्ञानान्धकार से आवृत्त हैं, और जो अहर्निश तमोगुण की वासनाओं में लीन रहता है। ऐसे इस अज्ञानान्धकार समाच्छन्न हृदय में आप राजहंस के रूप में निवास करने की कृपा कीजिए। जिससे कि आपके सहवास का आनंद प्राप्त करके यह मेरा मन ब्रह्म के प्रकाश को प्राप्त करता हुआ, मानस-सरोवर के रूप को धारण करके परम सुखद, परम सुन्दर और लोक दर्शनीय बन सके। हे देव ! हंस के निवास से ही मानस-सरोवर की वास्तविक शोभा का शास्त्रकारों ने उल्लेख किया है। अतः हंसस्वरूप में जब आप इसमें निवास करेंगे, तब यह मन क्षुद्र सरोवर होने पर भी केवल आपके निवास मात्र की विशेषता से मानस सरोवर की गणना में आकर निहाल हो जावेगा। यह ही मेरी आन्तरिक अभिलाषा है। इसे कृपाकर के पूर्ण कीजिए, जिससे यह भ्रांत जीव कृतकृत्य हो सके ॥ २६–३० ॥

(३१)

त्वं वायु सूर्योऽग्निर्मही महाब्धि
स्त्वं चन्द्रतारक सरित्सर औषधिः त्वम्।
त्वं प्राण आत्मा मन इन्द्रियाणां
नेता महात्मा पुरुषः पुराणः ॥

हे विश्वरूपधारिन् ! आप ही वायुरूप धारण करके संपूर्ण संसार के जीवों को प्राण प्रदान करते हैं। आप ही सूर्य रूप में नित्य उदय होकर संसार का जीवन चलाते हैं। आप ही अग्निरूप से भरण-पोषण प्रदान करते हैं, तथा पृथ्वी का रूप बनाकर अखिल चराचर को धारण करते हैं। आप ही महासमुद्र रूप से समय-समय पर वर्षा करके विश्व को अनुप्राणित करते हैं। आप ही चन्द्ररूप धारण करके अपनी परम शीतल रश्मियों से विश्व को आह्लादित करते हैं, तथा औषधियों का परिपाक करते हैं।

आप ही नक्षत्ररूप में प्रतिभासित होकर संसारचक्र का यथावत् परिपालन करते हैं। आप ही सरिता और सरोवरों के रूप में हृष्टि-पुष्टि प्रदान करते हैं। आप ही औषधि रूप से जीवन-प्रदाता हैं। इसमें "औषध्यः फल पाकान्ताः" इस न्याय वे सब प्रकार के अन्न जो पृथ्वी पर उत्पन्न होते हैं, वे सब औषधि ही माने जाते हैं। अतः अन्न का रूप धारण करके विश्व को जीवित रखनेवाली सत्ता आपका ही रूप है।

आप ही सर्वत्र व्यापक नित्यस्वरूप आकाश हैं, तथा हे भगवन्! आप ही प्राण, अपान, उदान, व्यान और समान रूप से शरीर-क्रिया को संचालित करनेवाले प्राणवायु के रूप हैं। आप ही जब मायावृत्त दशा में शरीरावच्छिन्न रहते हैं, तब जीवात्मा के नाम से व्यपदिष्ट किये जाते हैं। आप ही बन्धन और मोक्ष के कारण मन रूप हैं, तथा आप ही मन और इन्द्रियों के नायक पुराण पुरुष हैं। आपकी महिमा मनसा वाचा कर्मणा अज्ञेय हैं। उसे यह तुच्छ जीव किस प्रकार यथार्थ रूप में जानने के लिए सामर्थ्यशाली हो सकता है॥ ३१॥

(३२)

त्वमेन मात्मान मनु प्रपन्नं
पूर्वाजितात्म सुकृतोदय सम्प्रपन्नम्।
भूत्वा प्रपन्नार्ति हरो न पासि
का सा प्रपा? यत्र न पान्थ तृप्तिः॥

हे देवाधिदेव! यह मेरी क्षुद्र जीवात्मा, पूर्वजन्म में उपार्जित पुण्य पुञ्ज के संस्कार उदय होने के कारण आपकी त्रिताप नाशनी शरण में जैसे तैसे प्राप्त हुई है। इस मेरी जीवात्मा की आप शरणागत वत्सल होकर भी अपने विरद को सम्हाल कर क्यों नहीं रक्षा करते हैं? जिस प्रपा (प्याऊ) पर पथिकों की तृषा की सर्वात्मना निवृत्ति और तुष्टि नहीं होती है, वह प्रपा अपने नाम को

किस प्रकार सार्थक बना सकती है, आपका तो यह विरद लोक प्रसिद्ध है कि—

"सकृदेव प्रपन्नाय, तवास्मीत्यभियाचते
अभयं सर्व भूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम ॥"

अर्थात् भाव से अथवा कुभाव से एक बार भी जो मेरी शरण में आ जाता है, तथा एकान्त चित्त से "मैं आप का ही हूँ" इस प्रकार याचना करता है, उसे मैं सम्पूर्ण प्राणियों से अभयदान प्रदान कर देता हूँ, यह मेरी दृढ प्रतिज्ञा है। इत्यादि, स्थान स्थान पर की गई प्रतिज्ञाओं का अनुपालन जब ही होगा कि शरणागत प्रत्येक प्राणी की आप सर्वात्मना रक्षा करेंगे। अतः हे नाथ! यदि मेरे पापों के कारण आप मुझे शरण प्रदान करने में संकोच करते हैं तो भी अपने विरद की रक्षा के लिए तो मेरे समान पाप पुञ्जों का भी उद्धार आपको करना आवश्यक है। अतः कृपा करके आत्मज्ञान रूपी जल से मेरी तृषा को भी शान्त करने की कृपा कीजिये ॥ ३२ ॥

(३३)

प्रपन्न पारिजातोऽसि
प्रपन्न भय नाशनः ।
प्रपन्नार्पित सर्वस्वः
प्रपन्नार्ति विनाशनः ॥

हे शरणागत वत्सल! आप शरण में आनेवाले भक्तों के लिये पारिजात अर्थात् कल्पवृक्ष रूप हैं। जिस प्रकार पारिजात की छाया में जाते ही स्वतः मनुष्य की सब वासनायें शान्त हो जाती हैं, तथा जिस वस्तु की वह अभिलाषा करता है, वह तुरन्त सामने उपस्थित हो जाती है। शरणागत व्यक्तियों के लौकिक और पारलौकिक सम्पूर्ण भयों के नाश करनेवाले हैं। इसके अतिरिक्त आप

में यह विशेषता और है कि शरणागतों की रक्षा के लिये आप अपना सर्वस्व न्यौछावर करने को सर्वदा प्रस्तुत रहते हैं, जैसा कि श्री गोस्वामी जी ने मानस में वर्णन किया है कि—"जनकहँ कछु अदेय नहिं मोरे" अर्थात् ऐसी मेरे भण्डार में कोई वस्तु नहीं है, जिसे कि मैं अपने भक्त को न दे सकूँ।

हे दानि शिरोमणे ! यह पूर्ण सत्य है, क्योंकि भक्तों को जब आप अपने आपको ही प्रदान करने के लिए सर्वदा प्रस्तुत रहते हैं तो पुनः अन्य वस्तु का तो महत्व ही क्या है। शरणागतों के भय का सर्वात्मना नाश करने में आप सर्वदा बद्ध परिकर हैं ॥३३॥

(३४)

प्रपन्न प्राण संत्राण
स्त्राता तत्त्व विदग्रणी ॥
प्रपन्नं प्रणतं दीनं
नावमन्तुं त्वमर्हसि ॥

हे प्रपन्न पारिजात ! शरणागतों के प्राणों की रक्षा करने में आप ही एक मात्र पूर्ण सामर्थ्यशाली हैं, तथा लौकिक दृष्टि में उनका और उनके कुटुम्ब का भरण-पोषण करने में सतत निरत हैं। जैसा कि आगे श्री गुमानी भक्त के उपाख्यान से पूर्ण विदित है, तथा तत्त्व-ज्ञानियों में सर्वश्रेष्ठ हैं, अतः मैं शरणागत हूँ, आपके श्री चरणारविन्दों में प्रणत हूँ, क्योंकि त्रैलोक्य में इन श्री चरणों के अतिरिक्त अन्य स्थान में मुझे आश्रय ही नहीं दिखता है।

तथा तीसरी उपाधि मेरे साथ और भी लगी हुई है कि मैं लौकिक और शास्त्रीय दोनों दृष्टियों से दीन हूँ, लोक में धन-धान्यादि की कमी के कारण दीनता मानी गई है, तथा शास्त्रीय दृष्टि से जो व्यक्ति आत्म-ज्ञान शून्य हो उसे दीन माना गया है। तब मैं दोनों दृष्टियों से ही दीन हूँ। हे प्रभो ! ऐसे आपके द्वार पर पड़े हुए

भिक्षुक का अपमान मत कीजिए। उसे तो सर्वात्मना शरण प्रदान करके अपने यश की श्री वृद्धि कीजिए। आपके अतिरिक्त मुझे अन्यत्र कहीं भी आश्रय नहीं है, जैसा कि श्री विनय पत्रिका में उल्लेख है—

नाहिनै नाथ ! अवलम्ब मोहि आन की।
करम मन बचन पन सत्य करुना निधे,
एक गति राम ! भवदीय पद त्रान की ॥

इत्यादि बचनों के अनुसार अन्य किसीका भी अवलम्ब नहीं है। केवल आपके श्री चरणों में आशापूर्ण नेत्रों से टकटकी लगाये हुए कृपाऽमृत की प्रतीक्षा में हूँ। अतः अब कृपा करके उद्धार कीजिए, उद्धार कीजिए ॥३४॥

॥ इति श्री स्वरूप समीक्षा सुमनस्तबकम् ॥
द्वितीयः

ॐ

॥ श्री सद्गुरवे नमः ॥

अंथ रहस्य समीक्षा सुमनस्तबकम् ॥३॥

यह स्तबक "रहस्य समीक्षा सुमनस्तबक" नाम से निर्दिष्ट है, क्योंकि इसमें जो प्रार्थना की गई हैं। वे अध्यात्म परोक्ष्य से किसी तत्त्व विशेष का रूपक देकर की गई हैं, इसीके अनुसार निम्नलिखित पद्य इस संसार को भवाटवी का रूपक देकर वर्णन किये गये हैं।

(१)

भवाटवी भ्रान्त भवत्कथोत्सुको,
भारं वहन् गोखर तुल्य चेष्टः।
इतस्ततोऽर्हनिश तापतप्तो,
हिंसारताऽनेक विहंग पीडितः॥

हे सच्चिदानन्द श्री विग्रह सम्पन्न ! श्री सिद्ध सिद्धेश्वर ! यह मेरा जीव रूपी पथिक इस संसार रूप गहन बन में मार्ग भूल गया, तथा भ्रान्त हो गया, परन्तु इसने आपकी कथा इस अटवी में प्रविष्ट होने के पूर्व ही सुन रक्खी थी, किन्तु इस बीहड़ बन में प्रविष्ट हो जाने के पश्चात् भ्रमात्मक ज्ञान से आवृत हो जाने के कारण पूर्वजन्म-स्मृति का इसे पूर्ण ज्ञान नहीं रहा, और बैल और गधे के समान इस संसार रूपी बन में इधर से उधर बोझा लादे उदर पूर्ति के निमित्त फिरता रहा। यह बन बड़ा भयंकर और अगाध है, इसमें मार्ग भूलने पर निस्तार होना नितान्त असम्भव है। अतः नाना प्रकार के सन्ताप यानी शीत, घाम, वर्षा, वात, या कभी स्त्री की चिन्ता में पीड़ित तो कभी धनैषणादि अनेक संतापों से सन्तप्त होता है, अनेक हिंसक प्राणियों के भय से पीड़ित होता है। बन के पक्ष में शेर, शूकर, चीते आदि हिंसक प्राणी सर्वदा शिकार की खोज में रहते ही हैं। उसी प्रकार इस संसार रूपी बन में भी, कभी पुत्र

द्रव्य की इच्छा प्रकट करता हुआ पिता को दुखी करता है, तो कभी पत्नी कलह करके पति को विद्रोहाग्नि में जलाती है। बहिन भानजी, जिधर जाता है, कहीं भी शान्ति नहीं दिखाई देती; केवल लाओ, लाओ का शब्द ही चारों ओर सुनाई पड़ता है। वे ही इस भवाटवी के क्रूर हिंसक पशु हैं, उनसे सर्वात्मना पीड़ित होकर—

(२)

संक्षुब्धचित्तः सततं तृषातुरः
　　संत्रस्यमाणोऽथ कुटुम्बिदस्युभिः।
स्वशक्ति संदर्शन बद्धचेष्टो
　　स्वगोत्र दारात्मज शक्त्यरक्षितः॥

हे परम कारुणिक! मेरा यह मन परम दुखी हो जाता है, तथा निरंतर क्षुब्ध तथा विषय पिपासा से त्रसित हो जाता है। अटवी पक्ष में बीहड़ बन में प्रपा आदि न होने के कारण तथा कूप आदि जलाषय अगम्य होने के कारण प्यास से व्याकुलता का वर्णन किया गया है। (क्योंकि आगे चल कर इस भ्रान्त जीव को गजेन्द्र का रूपक देकर भगवत् अनुकम्पा भाजन बनाने की कामना से इस रूपक का निर्माण किया गया है) तथा भवाटवी पक्ष में तृष्णा पिशाची से व्याकुल है, क्योंकि मनुष्य जब वृद्ध हो जाता है, तब उसके दन्त, केश, श्रोत और नेत्र सब जीर्ण हो जाते हैं, किन्तु वृद्धाऽवस्था में तृष्णा तरुण हो जाती है यथा :—

जीर्यन्ति जीर्यतः केशाः दन्ताः जीर्यन्ति जीर्यतः।
चक्षु श्रोत्रे च जीर्यंते, तृष्णैका तरुणायते॥

के अनुसार जिसकी कभी शान्ति ही नहीं हो सकती ऐसी महान् पिशाचिनी तृष्णा से व्याकुल, तथा कुटुम्बी रूपी दस्युओं से चारों ओर से डरता और घबराता हुआ, कुटुम्बियों को दस्युओं का रूपक देने का अभिप्राय यह है कि, माता बहिन पिता पुत्र आदि जिनको कि मनुष्य अपना पूर्ण प्रिय मानता है, वे सब यह ही

अभिलाषा करते हैं कि इसके सम्पूर्ण धन वैभव जायदाद को अकेला मैं ही ले लूँ। यद्यपि सब के चित्त में भावना एक सी रहती है, फिर भी अपने हृदय की बात, भाई दूसरे भाई से नहीं कहता, पत्नी पती से नहीं कहती, भाई बहिन से नहीं कहता और एक दूसरे की ताक में रहते हैं। जिस प्रकार चोर अपने हृदय के अभिप्राय को परस्पर चोरों में भी प्रकट करते शंकित रहते हैं, वही दशा इन कुटुम्बी दस्युओं की है।

उनके द्वारा डराया गया यह मेरा मन रूपी मत्त हाथी, अकस्मात् एक दिन भोगरूपी सरोवर में अमृत समझकर अवगाहन करने के लिये अवतीर्ण हो गया, क्योंकि भोगों का स्वरूप आपात रमणीय है, इनमें केवल आनन्द का भ्रम मात्र है। वास्तविक आनन्द तो एक अनिर्वचनीय और अलौकिक तत्त्व है। उसकी तो छाया भी सांसारिक भोगों में नहीं है, ये भोग तो अपने ही शरीर के परमोत्तम सार की आहुति से प्रज्वलित होनेवाली क्षणिक ज्वाला है, जो एक सैकिण्ड में ही बिजली के करेण्ट की भाँति मनुष्य का सर्वस्व तथा जन्म जन्मान्तर के संचित सम्पूर्ण कर्मों को भस्म कर देती है। उसी भोग सरोवर में आनन्द के भ्रम से यह मेरा मत्त मन मतंग आनन्दित होने के लिए अवतीर्ण होता है॥ २॥

(३)

विगाह्यमानो मकर स्वरूपिणा–
कामाग्निना दुष्प्रसहेन ग्रस्तः।
स्व शक्ति सन्दर्शन बद्ध चेष्टो–
स्वगोत्र दारात्मज शक्त्यरक्षितः॥

हे मन्मथ मद विभञ्जन! यह मन मातङ्ग जब आनन्द मग्न होकर भोग रूपी सरोवर में अवगाहनमत्त था। उस समय काम रूपी अत्यन्त बलिष्ठ ग्राह ने अकस्मात् आकर इसे निर्दयता से ग्रस

लिया, अर्थात् अपने वशीभूत कर लिया। तब उससे ग्रस्त हो जाने पर मन रूपी हस्ती ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर उससे छुटकारा पाने की पूर्ण चेष्टा की, जब स्वयं की शक्ति से सन्त्राण असंभव प्रतीत हुआ, तब जिनको अपना सर्वस्व समझता था, उन अपने बान्धव पत्नी पुत्र और कुटुम्बियों की पूर्ण शक्ति लगाकर उससे छुटकारा पाने की पूर्ण चेष्टा की, किन्तु हे प्रभो ! यह तो केवल भ्रम था, जो अपने थे वे भी कुछ समय पश्चात् असमर्थ होकर मुख मोड़ने लगे, तथा अपनी शक्ति क्षीण होती देखकर छोड़ छोड़ कर अनवसर में ही भाग गये, क्योंकि मानव शरीर में ही निरन्तर निवास करने वाले वे काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य रूपी ग्राह बड़े शक्ति सम्पन्न हैं। उनके चक्र में फँस जाने पर, मानव शक्ति की क्या ताकत है कि इनसे छुटकारा पा सके, रही बात कुटुम्बी और बान्धवों की सो वे तो केवल हँसी खुशी के साथी हैं, जहाँ आपत्ति के दिन देखे कि फौरन मुख मोड़ लेते हैं।

अतः सब निज बान्धवों से परित्यक्त और बलिष्ठ ग्राह से ग्रस्त इस मन रूपी हाथी की उस भोग सरोवर में पड़े पड़े पूर्ण दुर्दशा होने लगी, तब उसने:— ॥ ३ ॥

(४)

इतस्ततो कातर दृष्टिपातैः
शून्यं समग्रं भुवनं विलोक्य ।
एकं भवन्तं शरणं प्रयाति
कथं सते नाथ ! न त्राण योग्यः ॥

हे नाथ ! इधर-उधर व्याकुल और विह्वल होकर कातर दृष्टि-पात से चारों ओर देखा, और पूर्ण दुखी हुआ कि जिनको मैं अपना समझता था, तथा जिनपर तनिक भी आपत्ति आने पर सर्वस्व न्यौछावर करके प्राणपण से रक्षा करने में व्यस्त हो जाता था।

—अनेक प्रकार के छल-कपट और अन्याय करके द्रव्योपार्जन कर-कर के जिनका पालन-पोषण करता था, वे ही मेरे सगे-सम्बन्धी सब मुझे छोड़-छोड़ कर चले गए। अब मैं क्या करूँ ? और कहाँ जाऊँ ? अब इस असार संसार में मेरा रक्षक कौन है ? इस प्रकार संपूर्ण विश्व को शून्य देखकर रक्षा की आशा से; अखिल ब्रह्माण्ड के एकमात्र रक्षक, अनाथों के नाथ और निर्बलों के बल आपके श्रीचरणों को समझ-सोचकर उनकी शरण में एकान्तिक मन से शरणागत हुआ। आपका द्वार तो शरणागतों के लिए सर्वदा खुला हुआ है, तथा आपका विरद है कि—"ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्" तब यह परम हीन-दीन जीव भी आपके द्वारा किस प्रकार रक्षा के योग्य नहीं है ?—अर्थात् ऐसी दुर्दशा में आप ही अपनी दयालुता से इसकी रक्षा करके अपने कृपालु, दयालु और करुणा सिंधु विशेषणों को सफल करते हैं ॥ ४ ॥

(५)

त्राताऽसि लोकस्य चराचरस्य
त्रातुं जगत्तेस्ति सुयोग निष्ठा ।
त्रायस्व एनं बहुदुःख पीडितं
पीडाहरत्वं तव लोक विश्रुतम् ॥

हे त्रैलोक्यत्राता ! आप स्थावर और जङ्गम सम्पूर्ण संसार के रक्षक हैं। तथा इस संसार की रक्षा के लिए ही आपका योगाभ्यास है, क्योंकि योगयुक्त होकर आप सम्पूर्ण विश्व की एक साथ रक्षा करते हैं। अतः अनेक दुःखों से पीड़ित इस जीव की आप रक्षा कीजिए, क्योंकि पीड़ा हरण करने के लिए आप संसार में विख्यात हैं। आप प्राणीमात्र का निरन्तर उद्धार और रक्षा करने में निरंतर निरत रहते हैं, तथा आपके जितने नाम अग्रिम पद्य में निर्दिष्ट हैं, वे सब लोक-कल्याण के सूचक हैं, यथा— ॥ ५ ॥

(६)

शिवोऽसि शिव रूपोऽसि
शिव संकल्प साधकः ।
शिवात्मा शिवगत प्राणो
शिव शंकर सेवकः ॥

हे अभयंकर ! आप साक्षात् कल्याणकारी शिव हैं, तथा शिव के पूर्ण कलायुक्त साक्षात् अवतार हैं। शुभ संकल्पों को तुरन्त ही कृपा करके सिद्ध करते हैं। शिव के आत्म तत्त्व हैं, तथा ब्रह्म में आपके प्राण निरन्तर निरत हैं और लोक शिक्षण तथा मर्यादा पालनके लिये साक्षात् शंकर भगवान् के सेवक भी हैं। स्वयं शिव होकर भी संसार को दीक्षा देने के लिये शिव के परम भक्त हैं। तथा—॥ ६ ॥

(७)

शिव सायुज्य साकार
सामीप्यादि समन्वितः ।
सालोक्यं सार्ष्टि सम्पन्नः
शिव रूप धरो ह्यसि ॥

हे भव-भूति समन्वित ! शिव के आप साक्षात् स्वरूप हैं, शिव के पूर्ण समीप हैं, शिव के साक्षात् कैलाशधाम के निवासी हैं, और शिव के साक्षात आकार हैं। अर्थात् मुक्ति के जितने लक्षण शास्त्रकारों ने निर्दिष्ट किए हैं, वे सब लक्षण आपमें यथार्थ भाव से पूर्ण मिलते हैं, अतः आप ही साक्षात् अभयंकर शंकर हैं ॥ ७ ॥

(८)

शिव रूपं च ते तत्त्वं
योगिगम्यं सुदुर्लभम् ।
कथं माहृङ् महामन्द
बुद्धि युक्तो विचिन्तयेत् ।।

हे शम्भो ! आपका वह परम अगम्य शिव रूपतत्त्व योगियों द्वारा योग दृष्टि से भी अगम्य है, और अत्यन्त दुर्लभ है। अर्थात् योग समाधिद्वारा भी क्षण मात्र के लिए ही आपका वास्तविक साक्षात्कार किसी किसी भाग्यशाली योगी को होता है। ऐसे आपके अपूर्व स्वरूप को मुझ जैसा मन्द बुद्धि पुरुष जो कि सांसारिक विषयों में लीन है, किस प्रकार चिन्तन कर सकता है ।। ८ ।।

(९)

बुद्ध्या न ज्ञायसे त्वं वै
शुद्धयाऽपि परन्तप ! ।।
किमुताऽशुद्धयालोक
क्षुत्पिपासादि युक्तया ।।

हे परन्तप ! अर्थात् उत्कृष्ट तपोभूर्ते ! अथवा कामक्रोधादि मानव शरीर स्थित शत्रुओं को अपनी उत्कट दीधिति से सन्तप्त करने वाले शम्भो ! आपका स्वरूप पूर्ण सुसंस्कृत शुद्ध बुद्धि द्वारा भी ज्ञेय नहीं है। पुनः सांसारिक क्षुधा पिपासादि से युक्त अशुद्ध बुद्धि से किस प्रकार जाना जा सकता है ।।९।।

(१०)

केवलं त्वद्दया नाथ !
अस्माकं तारणेक्षमा ।
क्षमस्व अपराधान्मे
दयालुत्वं प्रदर्शयन् ।।
मातृवत् तव वात्सल्यं
मनीषिभि रुदाहृतम् ।।

हे योग शास्त्राम्भोज भास्कर! एक मात्र आपकी दया ही हमारे उद्धार का एक मात्र साधन है, हे दयानिधे! आप हमारे सम्पूर्ण अपराधों को क्षमा कीजिये, और अपनी दयालुता का पूर्ण परिचय दीजिए, क्योंकि बड़े बड़े सहृदय भक्त विद्वानों ने माता के समान आपका वात्सल्य वर्णन किया है, क्योंकि—"कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता नैव भवति" पुत्र चाहे कितना भी दुष्ट निकल जावे, किन्तु भगवान ने माता का हृदय ऐसे स्वर्गीय उपादानों से निर्मित किया है, उसमें वात्सल्य की कभी भी कमी नहीं आती है, इसलिए उसका दूसरा उपमान् है ही नहीं, अतः माता के समान आप भी हमारे अवगुणों की ओर ध्यान न देकर दया कीजिये ॥१०॥

(११)

माता सदा निज सुतस्य हितेऽनुरक्ता
सक्ताऽपि कर्मसुकदाऽपिसुतं न मुञ्चति
एवं भवान्योग गतान्तरात्मा–
प्यात्मात्मजान्नैव विहातुमर्हः ॥

हे दयामय! लोक में जिस प्रकार माता अपने पुत्र के हित सम्पादन में निरन्तर निरत रहती है, तथा गृहकार्य में व्यग्र होने पर भी पुत्र विषयक ध्यान का क्षण मात्र के लिए भी परित्याग नहीं करती है, उसी प्रकार योग समाधि में निरत निरन्तर आत्म-लीन होने पर भी आप, हम लोग जो आपको पुत्र के समान परम प्रिय हैं, उनके योग क्षेम का तथा पूर्ण कल्याण का प्रतिक्षण पूर्ण ध्यान रखते हैं, इसी प्रकार भविष्य में भी पूर्ण ध्यान रखते हुए हमें विसराइये नहीं, यह ही आपसे विनम्र प्रार्थना है ॥११॥

(१२)

अर्हत्तम योगीन्द्र !
योगमार्ग प्रवर्तक !
रक्षाऽस्मान् योगयुक्तस्सन्
स्वीयया योगमायया ॥

हे पूर्ण सामर्थ्यशालिन योगिराज ! आप ही संसार के कल्याण के हेतु योगशास्त्र के मार्ग के प्रणेता और प्रवर्तक हैं, सर्वप्रथम योगाचार्य भगवान् शंकर को ही माना गया है, अतः हे भगवन् ! आप योगयुक्त होकर, अर्थात् योगविधि द्वारा प्रत्येक परमाणु में व्यापक रूप धारण करके अपनी योगमाया से हम क्षुद्र सांसारिक जीवों की प्रतिक्षण रक्षा कीजिए ॥ १२ ॥

(१३)

त्वं योगमायार्णव कल्पवृक्षो
यक्षो गणैर्वन्दित पादपीठः ॥
महेन्द्रशाखोऽमर राज वल्कलो
सूर्येन्दुतारा कुसुमै रुपेतः ॥

हे योगीन्द्र ! आप योगमाया रूपी समुद्र से उत्पन्न कल्पतरु के समान हैं, जिस प्रकार क्षीर समुद्र का मन्थन करने से कल्पवृक्ष की उत्पत्ति हुई है, उसी प्रकार योगशास्त्र रूपी समुद्र से उत्पन्न कल्पवृक्ष आप हैं।

यक्ष और किन्नरों से आपके पादपीठ सर्वदा प्रणाम तथा उपासना किए जाते हैं, इस कल्पवृक्ष की श्री महेन्द्र स्वामी ही मानो सुन्दर शाखा हैं, तथा देवाधिदेव इन्द्र ही मानों सुन्दर छाल हैं, और सूर्य चन्द्रमा तथा तारे जो आपकी शक्ति के व्यापकत्व के निरन्तर साक्षी हैं, वे इस आपके स्वरूप रूपी कल्पवृक्ष के सुन्दर पुष्प हैं। आपके

इस दिव्य, विराट् व्यापक स्वरूप को हम बारम्बार प्रणाम करके अपनी मनोकामनाओं को निरन्तर प्राप्त करते रहते हैं ॥ १३ ॥

(१४)

त्वं हंसोऽसि महायोगिन् !
हंस वंश समुद्भवः ॥
हंसार्पित सर्वस्वो
हंस वाहन सम्मतः ।

इस पद्य में हंसपद श्लिष्ट है, इसके अनेक अर्थ होते हैं। हे महामहिम योगिश्वर ! आप हंस हैं, अर्थात् आप ही साक्षात् ब्रह्म हैं। श्रुति में उल्लेख आता है कि "हंसो वैसः" अर्थात् ब्रह्म हंस का रूप है, तथा हंस के वंश से उत्पन्न हैं, यानी ब्रह्म वंशोद्भव हैं, अथवा हंस के समान निर्मल और निष्कलङ्क, तथा नीरक्षीर विवेचन में निरन्तर तत्पर वह वंश परम धन्य है, जिसमें आप उत्पन्न हुए हैं तथा आपने अपना सर्वस्व ब्रह्मार्पित कर रक्खा है। और हंसवाहन अर्थात ब्रह्माजी के परम सम्मत हैं, क्योंकि श्री शम्भु के गुणों का गान करने में ही ब्रह्मदेव अपना सम्पूर्ण समय व्यतीत करते हैं, ऐसा अलौकिक दिव्य आपका हंस रूप है ॥१४॥

(१५)

हंसं त्वां शरणं यामि
हंस सायुज्य काम्यया ।
त्वत्पाद सेवनाद् ब्रह्मन्
आत्मा हंसायतां मम ॥

हे प्रभो ! आपके उस दिव्य हंस रूप की जो आपने सनकादि ब्रह्मर्षियों को ज्ञान प्रदान करने के हेतु धारण किया था, शरण में प्राप्त हूँ। मेरे हृदय में भी ब्रह्म साक्षात्कार की कामना है। उसे पूर्ण

करने के लिए मैंने शरण प्राप्त की है, हे ब्रह्मन् ! आपके चरणारविन्दों का सेवन करने से मेरी आत्मा को भी हंस रूप प्रदान कीजिए, जिससे यह जीवन सफलता को प्राप्त हो सके, अथवा, आपके श्री चरणारविन्दों के आश्रय में शरणागति प्राप्त करने से मेरी आत्मा को हंस के समान निष्कलंक, उज्ज्वल और सारग्राहिणी तथा कार्या-कार्य विवेकशालिनी बनाने की कृपा कीजिये ॥१५॥

(१६)

चैतन्यामृत चन्द्रिकायित-तनुच्छायोऽसि छायाप्रद ।
छाया संश्रित रोगशोक शमकश्शंकारकः शंकरः ॥
शंकातर्कित मानसैः सुरगणैस्सेव्यत्व वृत्तिकरः ।
शंनः किन दधासि नाथ ! मुदितोभृत्येषु भद्रंकरः ॥

हे छायाप्रद ! आपके श्री विग्रह की निर्मल देदीप्यमान कान्ति चैतन्य अर्थात् चित्शक्तिरूप अमृत से अद्भूत चैतन्य रूपी चन्द्रमा की चन्द्रिका स्वरूप है, इसका सारांश यह है कि, ब्रह्म का स्वरूप सत्-चित्-और आनन्दमय है, उनमें से चित् शक्ति रूप जो ब्रह्म का स्वरूप है वही मानों गाम्भीर्य में समुद्र है। उस चैतन्य रूप अमृत समुद्र से उद्भूत चन्द्रमा की चाँदनी के समान आपके श्री विग्रह की छबि है। ऐसे चैतन्य स्वरूप कल्पवृक्ष की छत्र-छाया में रहने वाले आश्रित प्राणियों के रोग और शोक को समूल शान्त करनेवाला आपका कल्याणकारी शंकर स्वरूप है। देवताओं के ऊपर जब जब आपत्ति आती हैं, तब तब शंकाक्रान्त मनवाले देवताओं से आपके शुभ स्वरूप की पूर्ण सेवा की जाती है। हे नाथ ! अपने मृत्यों का निरन्तर कल्याण करने वाले स्वामी आप हम पर प्रसन्न होकर हमारा कल्याण करने में इतना विलम्ब क्यों लगा रहे हैं, हे भद्रंकर ! आपके सेवक हम जैसे प्राणियों का शीघ्राति शीघ्र कल्याण तथा योगक्षेम करने की कृपा कीजिए ॥१६॥

(१७)

सद्रूपोप्यसद्रूपो
सदसन्निर्विकल्प कः ।
निर्विकल्पक वेद्योऽसि
सविकल्पक लक्षितः ॥

हे देव ! आप कभी सत् रूप में चराचर में व्यापक होकर निवास करते हैं, तथा कभी असत् रूप को धारण करके निराकार वृत्ति का आश्रय लेकर उसे कृत-कृत्य करते हैं। कभी वेद में प्रतिपादित अपनी विचित्र सत्ता को कृत-कृत्य करने के लिए—"सद सद्भ्यामनिर्वचनीयः" वचन के अनुसार सत् और असत् से परे अनिर्वचनीय निर्विकल्पकसमाधि से ज्ञेय हो जाते हैं, और पुनः अपने स्वरूप की विचित्रता को प्रकट करने के लिए, सविकल्पक समाधि ज्ञेय साक्षात् मूर्त रूप धारण कर लेते हैं ॥१७॥

(१८)

वाणीं मदीयां तव गान गानैः
कर्णौ च मे त्वद् गत सूक्ति सूक्तैः ।
नेत्रो मदीये तव रूप दर्शनैः
सन्तर्पितुं व्यक्त स्वरूपमाय ॥

हे विश्वरूप ! मेरी वाणी को आपके गुणगान से पवित्र करने के लिये, तथा मेरे कानों को आपके सुन्दर सुन्दर सूक्तों के श्रवण करने से कृतार्थ करने को और मेरे नेत्रों को आपकी त्रिभुवन मोहनी छवि से तृप्त करने के हेतु ही आपने चरम चक्षुगोचर परम सुन्दर स्वरूप धारण किया है, यह मेरी दृढ़ धारणा है। भगवान् ! अपने परम भक्तों के कल्याण के निमित्त ही लीला वपुष् धारण करते हैं ॥१८॥

(१६)

व्यक्त स्वरूपिन् ! हृदयारविन्दे
त्वां प्राप्य चात्मा न क्षणं जहाति ।।
कथं जहात्परमोऽस्ति नान्यथा
आत्मा हि लोके सुतरां सुवल्लभः ।।

हे व्यक्त स्वरूप धारिन् ! हृदय रूपी सहस्र दल कमल में आपका दर्शन करके मेरी आत्मा आपको एक क्षण भी छोड़ना नहीं चाहती, निरन्तर आपकी रूप माधुरी में ही रमण करना चाहती है। छोड़ भी किस प्रकार सकती है ? संसार में अन्यत्र कहीं भी इसको इतना आनन्ददायक अन्य स्वरूप ही नहीं दिखलाई देता है, क्योंकि अपनी आत्मा ही संसार में सब तत्त्वों से परम प्रिय होती है, अतः आप परमात्म स्वरूप हैं, और यह मेरा जीव आपका ही तो एक अंश है। आत्मा की तृप्ति के लिये परमात्म तत्त्व से अधिक और कौन-सा रूप पूर्ण तृप्ति करनेवाला हो सकता है। जैसी की श्रुति है, "न वारे !!! पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवति, उत् आत्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति, न वारे ! जायायै कामाय जाया प्रिया भवति, उत आत्मनस्तु कामाय जाया प्रिया भवति" इत्यादि श्रुति वाक्यों से सिद्ध है कि, पती पती है इस लिये पत्नी को प्रिय नहीं होता, किन्तु इस लिये प्रिय होता है कि वह उसकी अन्तरात्मा को प्यारा लगता है। इस प्रकार स्त्री इस लिये पति को प्रिय नहीं होती कि वह स्त्री है, अपितु अपनी अन्तरात्मा को प्रिय लगने के कारण ही पत्नी प्रिय होती है। इसी प्रकार आत्म तत्त्व जिस परमात्म तत्त्व का अंश है, उसे छोड़कर अन्य किस पदार्थ को अधिक प्रेम कर सकता है, अतः हे भगवन् आप परमात्म तत्त्व हैं, इसी लिये मेरी आत्मा आपमें अधिक रमण करती है ॥१६॥

अतः—

(२०)

सुवल्लभं त्वां वचसा गृणामि
सुवल्लभं त्वां मनसा स्मरामि ।
सुवल्लभं त्वां शिरसा नमामि
सुल्लभं त्वां शरणं ब्रजामि ॥

हे परात्पर ब्रह्म ! परम प्रियतम आपके परम प्रियनामों का का नित्य वाणी द्वारा कीर्तन करता हूँ। आपके परम प्रिय स्वरूप का मन में स्मरण करता हूँ। आपके परम प्रिय को मस्तक से नित्य नमस्कार करता हूँ, और आप परम प्रियतम की शरण में प्रतिपल अपनी जीवात्मा को अर्पित करता हूँ ॥२०॥

(२१)

ब्रजामि यत्रैव च तत्र तत्र
नित्येष्वनित्येषु चराचरेषु ।
तवैव रूपं हृदये वसन्त
मादर्श वद् भान्त मनुब्रजामि ॥

हे सर्वात्मन् ! मैं इस परम अगाध भव वारिधि में जहाँ जहाँ जाता हूँ, वहाँ पर ही आपकी परम सुन्दर छबि देखता हूँ, सम्पूर्ण आकाशादि नित्य पदार्थों में तथा सम्पूर्ण अनित्य वस्तुओं में, स्थावर जङ्गम सम्पूर्ण प्राणियों में आपके स्वरूप को सब विश्व के हृदय में देदीप्यमान और आदर्श की भांति सम्पूर्ण बिम्बों को ग्रहण करनेवाला, परम सुशोभित स्वरूप देखकर सर्वत्र आपकी परम ललाम छवि का अवलोकन करके अपने स्वरूप को कृत-कृत्य करता हूँ, तथा सर्वत्र आपकी मनोहर झांकी को प्रणाम करके निम्नलिखित वचन के अनुसार कृत-कृत्य और परम धन्य होता हूँ, कि—

"सिया राम मय सब जग जानी,
करऊँ प्रणाम जोरि जुग पानी" ॥ २१ ॥

॥ इति श्री रहस्य समीक्षा सुमन स्तबकम् ॥३॥

ॐ

॥ श्री सद्गुरुवे नमः ॥

॥ अथ प्रपन्न संत्राण समीक्षा सुमन स्तबकम् ॥ ४ ॥

(१)

अनुव्रजन्तं मदनान्तक त्वं
दासं प्रपन्नं शरणागतं माम् ।
हीनं च दीनं भव दाव पीड़ितं
कथं दयासागर ! त्यक्तु मर्हसि ॥

यह "प्रपन्न संत्राण समीक्षा सुमन स्तबक" है, इसमें शरणागत की रक्षा के लिए अपने हृदयसर्वस्व से प्रार्थना की जा रही है।

हे मदनान्तक ! मैं आपकी खोज में जन्म-जन्मान्तर से बारम्बार अनेक योनियों में वेश बदल-बदल कर आपका अनुगमन करता रहा हूँ, और आपका दासानुदास हूँ, तथा आपकी अभयप्रद शरण में पड़ा हुआ हूँ। मेरी दशा बड़ी दीन-हीन है, माया नटी के फन्दे में फँसकर उसकी इच्छाऽनुसार बाजीगर के बन्दर के समान नृत्य करता हूँ, पूर्ण दयनीय दशा से युक्त हूँ, और संसाररूपी दावानल से पीड़ित हूँ, ऐसी मेरी परम दुर्दशा देखकर भी हे दयासागर ! आप दया-समुद्र होकर भी मेरा परित्याग क्यों कर रहे हैं। आप तो दया के अगाध समुद्र हैं, दया की दो-चार कणिका कम हो जाने से आपके दया के अगाध और अक्षय समुद्र में कमी नहीं आ सकती।

अतः हे दयासिन्धो ! मेरी अवस्था पर विचार करके देखिए। मैं आपके द्वारा उपेक्षणीय नहीं हूँ, आपकी शरणागत हूँ, अतः कृपा करके मेरी रक्षा कीजिए॥ १ ॥

(२)

वैधाती लिपि रद्याऽपि
न केनापि प्रेमार्जिता ॥
इति लोक प्रवादोऽपि
त्वयैव वितथः कृतः ॥

हे देवाधिदेव महादेव! आज तक भूमण्डल में जितने भी अवतारादि हुए हैं, उनमें से किसीमें भी ब्रह्मा की लिपि में हस्तक्षेप करने की सामर्थ्य नहीं हुई, अर्थात् संसार में जो यह लोकोक्ति प्रचलित है कि "विधिकर लिखा न कोऊ मेटनिहारा" इत्यादि वाक्यों को आपने ही अपनी दिव्य शक्ति से व्यर्थ सिद्ध किया है। सारांश यह है कि अपनी अणिमा, गरिमा, लघिमा और प्राकाम्य आदि ऋद्धि सिद्धियों से जन्म-जन्मान्तर के रंकों को भी आपने क्षण मात्र में कुबेरसम वैभव सम्पन्न बना दिया है। धन्य है आपकी दानशीलता उदारता, और कृपा, जिससे प्रेरित होकर महाकवियों ने आपकी स्तुतियों में इस प्रकार वर्णन किया है कि, "आशुतोष तुम अवढर दानी, मोपर कृपा करिय जनजानी" अर्थात् जो वैभव ज्ञान तथा सम्पत्ति भाग्य में नहीं लिखी हुई है, उसे भी आपकी कृपा एक क्षण मात्र में प्रदान कर देती है। उसी कृपा का यह जीव भिक्षुक है, अतः इस पर भी कृपाऽमृत कणों की वर्षा कर निहाल कीजिये ॥ २ ॥

(३)

मृत्युञ्जयोऽसिमृत्योस्त्वं
जेता परम दुर्जयः ।
मृत्युञ्जय रूपं त्वां
मृत्युं जेतुं वयं नुमः ॥

हे मृत्युञ्जय ! आपका शुभ नाम ही संसार में महामृत्युञ्जय प्रसिद्ध है। जिसका अर्थ है महान् मृत्यु को भी जीतने वाले। आप अपने नाम के अनुसार यम और काल पर भी पूर्ण विजयी हैं, और स्वयं महान् सामर्थ्यशाली होने के कारण सर्वथा अजेय हैं। अतः हम मर्त्य जो प्रतिक्षण काल के गाल में रहने वाले हैं, तथा जिनके पीछे यमराज निरन्तर पाश लेकर फिरता है, ऐसे सांसारिक जीव उस अकाल मृत्यु पर विजय प्राप्त करने के लिए आपके मृत्युंजय रूप का बारम्बार ध्यान और स्मरण करते हैं, तथा आपके उस परम शुभ स्वरूप को बारम्बार प्रणाम करते हैं॥ ३ ॥

(४)

जित्त्वा जित्त्वा पुनरपि पुनः युद्धभूष्वेव तीर्णः
पीत्त्वा पीत्त्वा पुनरपि पुनः प्राप्त हालाहलोऽसि ॥
दत्त्वा दत्त्वा पुनरपि पुनर्यक्ष कोशं ददासि
मायामेतां हरसि न कथं नाथ ते दास दासीम् ॥

हे मृड् ! आप प्रत्येक युग में बारम्बार असुरों को युद्ध-भूमि में जीत-जीत कर पुनः पुनः युद्ध करने को अवतीर्ण होते हैं। त्रिपुरासुर तारकासुर आदि असंख्य भयंकर असुराधीशों का आपने जो वध किया है, उनकी कथाएँ लोक-प्रख्यात हैं।

हे नीलकण्ठ ! आप बारम्बार भंग-धतूरे आदि मादक पदार्थ पी-पी कर भी लोक-कल्याण के निमित्त हालाहल जैसे परम उग्र वीर्य विष तक का दुग्ध की भाँति हँसते-हँसते पान कर जाते हैं, हे अवढर दानि शिरोमणे ! आप अपने भक्तों को ऐश्वर्य-सम्पत्ति, पुत्र-पौत्र और सांसारिक संपूर्ण वैभव प्रदान करके भी सन्तुष्ट नहीं होते, बल्कि प्रसन्न होने पर यक्षों का अक्षय कोश तक प्रदान करने की कृपा करते हैं, जैसा कि रावण आदि अनेक भक्तों के लिए अनेक बार आपने प्रदान किया है।

हे नाथ ! यह आपके दासों की दासी अत्यंत भयंकर मायारूपी पिशाची को क्यों नहीं दूर करते हैं ? यह हम सांसारिक जीवों को ग्रसकर अपने आधीन करती हुई अहर्निश नृत्य करवाती है, क्योंकि बिना आपकी अनन्य कृपा के मानव-जीवन में मायाजनित क्लेशों का मिटना अत्यंत असम्भव है,

"राम भजन बिन सुनहुँ खगेशा । मिटहिं न जीवन केर कलेशा ॥"

जैसा कि श्री काक भुशुण्डिजी ने श्री गरुडजी को उपदेश दिया है कि बिना भगवद्भजन के जीवों के क्लेशों का अन्त होना नितांत असम्भव है। श्री भगवान् के सच्चे भक्तों को माया नहीं व्यापती है, किन्तु भगवत्प्रेरणा से वह लोक-भयङ्कर माया ही भक्त को पराविद्या के रूप में सन्मार्ग का दिग्दर्शन कराती है। यह है भगवत् की अलौकिक दिव्य विभूति का वैभव, अतः आपकी किङ्करी इस माया को प्रेरित कीजिए कि यह पराविद्या के रूप में हमारी सहायता करे, क्योंकि आपकी महिमा तो लोक विश्रुत है कि—

"गरल सुधा रिपु करइं मिताई । गोपद सिन्धु अनल सितलाई ॥"

गरल आदि घातक तत्त्व भी केवल आपकी कृपा से मानव-जीवन के पोषक बनकर सहायक हो जाते हैं ॥ ४ ॥

(५)

ददासि प्रणतानेव
धन धान्य परिग्रहान् ॥
अप्रणतानामपि हरसिभोः !
काल कष्टं दरिद्रम् ॥

हे दानि शिरोमणे ! आप अपने प्रणाम करनेवाले भक्तों को तो धन धान्य और सुन्दर पारिवारिक विभूतियाँ प्रदान करते ही हैं, किन्तु आपकी परमोदारता तो यह है कि जो लोग स्वप्न में भी आपको प्रणाम नहीं करते उनके भी आप मृत्यु कष्ट और दारिद्र्य

का हरण करते हैं। हे देव ! आप तो विश्वोपकार निरत हैं, आपकी माया से प्रेरित जो जीव आपके स्वरूप को बिलकुल भूल जाते हैं, उनको भी लोक पिता होने के नाते आप कभी भी नहीं भूलते। महान् पापी नीच अन्यायी तथा अत्याचारियों को भी भ्रान्त जीव समझ कर उनके साथ भी आप पूर्ण कृपा का व्यवहार करते हैं, क्यों न करें ? तभी तो आपको भोले भण्डारी और विश्वभर्ता के नाम से पुकारा जाता है। धन्य है आपकी अलौकिक महिमा और धन्य है आपका अनुपम गुणगान। इस मानव जिह्वा में इतनी शक्ति कहाँ है कि आपकी गुणगाथा यथावत् वर्णन कर सके ॥ ५ ॥

(६)

विश्वोपकार निरतो
विश्वस्य परिपालकः ॥
न ते ईर्ष्या मदोदम्भः
स्वप्नेऽपि परिलक्ष्यते ॥

हे मदनार्ति नाशन ! आप सम्पूर्ण संसार के कल्याण में सर्वदा निरत हैं, तथा अखिल विश्व के एक मात्र पालन करनेवाले हैं। आप मन में कभी भी किसी के प्रति, ईर्ष्या अथवा अपनी शक्ति पर अहंकार और दम्भ की वासना स्वप्न में भी उत्पन्न नहीं करते। आपका स्वभाव तो प्राणीमात्र पर कृपा करना तथा प्राणीमात्र का उद्धार और पोषण करने का है। ॥ ६ ॥

(७)

पूर्णस्य ते नास्तिहि भेदभावो
पूर्णोहि पूर्णान्कुरुषे मनोरथान् ।
रथाश्व वाजीन् सकलान् बिभर्षि
विभर्षि नागानपि नाग संघान् ॥

हे पूर्णस्वरूप ! आप तो सर्वदा पूर्ण ही हैं, पूर्ण होने के कारण भेदभाव की वासना आपके हृदय में उत्पन्न होना नितराम्-असम्भव है, क्योंकि ऐसी तुच्छ भावनाएँ तो क्षुद्र हृदयों में ही उत्पन्न होती हैं। वायु के वेग में इतनी शक्ति कहाँ कि हिमालय पर्वत को हिला सके, आप तो स्वयं पूर्ण होकर अपने अनन्य भक्तों के मनोरथों को प्रतिक्षण पूर्ण करते हैं।

मानव हृदय में ज्ञान का प्रकाश अधिक होने के कारण मनुष्य तो आपसे यदा कदा प्रार्थना भी कर सकते हैं, किन्तु आप तो रथ, घोडे, हाथी, मक्खी और चींटी तक यावन्मात्र चराचर तत्त्व हैं, उन सब का भरण पोषण करते हैं। मणभर वस्तु के भोजन से तृप्त होनेवाले हाथियों का पेट भी उतने ही आनन्द से भरते हैं, और एक कण से तृप्त होनेवाली चींटी को भी आनन्दमग्न होकर तृप्त करते हैं। आपको तो सब के लिए तृप्ति प्रदान करनी, अतः आप सम्पूर्ण विश्व की परम तृप्ति में सर्वदा निरत हैं ॥ ७ ॥

(८)

त्वां कालमाहुः प्रकृतेः परं विभुं
केचित् कृतान्त मपरे यमं च ॥
नूनं कृतान्तोऽसि कृतेनु तेषां
ये तावका स्तेषु न त्वं कृतान्तः ॥

हे प्रभो ! प्रकृति से परे आपके भूमास्वरूप को महापुरुष काल रूप से निर्दिष्ट करते हैं। वस्तुतः यह उचित ही है, क्योंकि महाप्रलय में तृतीय नेत्र की ज्वाला से आप सम्पूर्ण संसार का संहार तो करते ही हैं, उसके साथ साथ यम, वरुण, कुबेर आदि सम्पूर्ण लोकपालों के भी नाश के आप ही एकमात्र कारण हैं। आपका स्वरूप पूर्ण रूप से व्यापक हैं, कुछ लोग आपको कृतान्त के रूप में मानते हैं, और

अन्य व्यक्ति आप ही को यम स्वरूप मानते हैं। हे भूमन् ! आप उनके लिये अवश्य ही कृतान्त रूप हैं, परन्तु जो आपके अनन्य सेवक हैं, और मंगल मूर्ति मय श्री शिव के रूप में जो आपका ध्यान करते हैं, उनके लिये आपका स्वरूप मंगल मय कल्याणकारी और आनन्द-प्रद है। अग्रिम पद्य में इस तथ्य का स्पष्टीकरण किया जावेगा—

(६)

तेषां कृते त्वं प्रिय वल्लभोऽसि
प्रेष्ठोऽसि आनन्द मयोऽसि नित्यम् ॥
यथा हि सैंही सुकराल दंष्ट्रा
जहाति बालानयने करालताम् ॥

हे परम वल्लभ ! उन आपके भक्त पुरुषों के लिये तो सर्वदा आपका स्वरूप परम प्रिय है, परम वल्लभ और प्रिय से भी प्रिय है, आनन्द-मय है। जिस प्रकार सिंहनी की भयंकर डाढें, अन्य मृगादि प्राणियों के लिये भयंकर काल स्वरूप होने पर भी अपने बालकों को मुँह में भरकर स्थानान्तर में ले जाने के समय, कर्कशता का परित्याग करके पूर्ण कोमलता को धारण कर लेती हैं।

सारांश यह है कि आपके भक्त जब अपने पाञ्चभौतिक शरीर का परित्याग करते हैं, तब उनके प्राणों का अपहरण करने के लिये आये हुए यमराज को भी वे आपके स्वरूप का निरन्तर ध्यान करने के कारण आपके स्वरूप में ही देखकर, (क्योंकि उनकी वृत्तियाँ तो यहाँ तक दृढ़ हो जाती हैं कि "सर्वं विष्णुमयं जगत्" का भान होने लगता है) उन्हें मृत्यु के समय भी पूर्ण प्रसन्नता ही होती है। इसमें यह दृष्टान्त है कि जिस प्रकार सिंहनी की कठोर डाढें जो कि अन्य प्राणियों को चबाने के लिये पूर्ण कर्कश और भयङ्कर हैं, वे ही दंष्ट्रायें जब सिंहनी के बच्चे पैदा होते हैं, तब वह चलना सीखने से पहिले अपने बच्चों को मुख में भरकर, एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँ-

चाती है, उस समय वे ही दंष्ट्रायें अपने बच्चों की पूर्ण नरम त्वचा में ज़रा भी नहीं चुभती हैं। इसी प्रकार जो लोग आपको यम रूप मानते हैं, तथा आपसे भेजी हुई मृत्यु से डरते और काँपते हैं, उनको तो आपका वही भयंकर यम रूप दृष्टिगोचर होता है, किन्तु जो आपके परम प्रेमी भक्त हैं, वे आपके द्वारा प्रदान की गई परम प्रिय वस्तु को आपका उपहार समझ कर जिस प्रकार सहर्ष शिरोधार्य करते हैं, उसी प्रकार आपसे प्रेषित मृत्यु को भी, आपकी ही इच्छा से प्राप्त होनेवाली परम प्रिय भेंट समझकर सहर्ष स्वींकार करने को सर्वदा तैयार रहते हैं। उनका दृढ़ विश्वास रहता है कि मेरे प्रभु सर्वदा मंगलमय हैं, मंगल विधायक हैं; और भक्तों के मंगल में सर्वदा निरत हैं। उनके द्वारा भेजी गई प्रत्येक वस्तु हमें परम प्रिय है, अतः उस दुःखद मृत्यु को भी परमानन्द से आलिङ्गन करने को कटिबद्ध रहते हैं। ऐसे निज अनन्य भक्तों के लिये, वे कराल यम यातनायें भी आपकी इच्छा से प्राप्त होने के कारण उतनी ही कोमल प्रतीत होती हैं। जिस प्रकार कि शेरनी की भयंकर दाढें उसके दुधमुँहे बच्चों को परम मृदु और आनन्दप्रद प्रतीत होती है, क्योंकि जिस प्रकार सिंहनी का अबोध बालक अपने हानि लाभ को कुछ भी नहीं सोच सकता, वह तो अनन्य भाव से माता की दया के सहारे निश्चिन्त और निर्भय रहता है, उसी प्रकार भक्त भी अपने योगक्षेम की तनिक भी परवाह न करके केवल आपकी दयार्द्र भावना पर ही एकमात्र दृष्टि रखते हैं। अतः प्रत्येक अवस्था में उनके योगक्षेम का आप स्वयं चिन्तन करते हैं, और उन्हें किसी भी अवस्था में ज़रा भी दुःखी नहीं होने देते हैं। धन्य है आपकी भक्त वत्सलता ! तथा भक्त भरण की शक्ति !! हमको भी उसी दया का पात्र बनाकर हमारे जीवन को भी सफल करने की कृपा कीजिये ॥८॥

(१०)

तथैव भक्तास्तव सौम्यरूपं
शान्तं स्मितावलित मन्दहासम् ॥
क्वचित् शिवं त्वां क्व च विष्णुमाद्यं
क्वचिच्चशक्ति प्रणवं क्वचिच्च ॥

हे दयामय ! उसी प्रकार आपके परम प्रिय भक्तवृन्द, आपके परम सौम्य रूप को जो कि परम शांति का भण्डार है, और जिस स्वरूप में प्रेम से तिरछी चितवन के साथ मन्द-हास्य की मुद्रा भक्तों के मन को वशीभूत करती है, ऐसी आपकी मधुरतम मूर्ति को कहीं पर शिव के रूप में ध्याते हैं, तथा कहीं पर विष्णु के रूप में ध्यान करते हैं, और कहीं पर महालक्ष्मी, महासरस्वती तथा महाकाली के रूप में दर्शन करते हैं। कहीं पर ब्रह्मज्ञानी पुरुष ॐकार के रूप में ध्यान करते हैं। हे परम मंगलमय ! अपने-अपने हृदय की रुचि के अनुसार वे कितने भी रूपों में देखकर क्यों न तृप्त हों ? वास्तव में तो आप एक ही हैं। केवल भक्तों की रुचि की भिन्नता के कारण आप उन्हें यथारुचि भिन्न-भिन्न स्वरूप में दर्शन देकर प्रसन्न तथा कृतकृत्य करते हैं॥ १० ॥

(११)

यथेष्ट देवं सुविलोक्य तृप्ताः
प्रसन्न चित्ताः परमोत्सुकाश्च ॥
बालाः यथा स्वां जननीं क्षुधार्ता
स्तथैव ते पादतलं विशन्ति ॥

हे प्रणत कुटुम्ब पालक ! वे आपके अनन्य प्रेमी भक्त अपने-अपने इष्टदेव के रूप में आपका ध्यान करके तृप्त हो जाते हैं। उनका मन प्रसन्न हो जाता है, तथा वे आपकी शरण को प्राप्त करने के लिए परमोत्सुक हो जाते हैं। जिस प्रकार क्षुधा से पीड़ित बालक बहुत

समय के पश्चात् आई हुई अपनी माता की गोद में पूर्ण उत्सुकता के साथ जाकर उसमें चिपककर आनन्दमग्न हो जाता है, तथा उन बालकों के हृदय में और वासना लेशमात्र भी दिखलाई नहीं देती है, उसी प्रकार आपके प्रेमी भी परमानन्दमय आपकी शरणरूप गोद को प्राप्त करके आपके श्रीचरणों में ही आनन्दमग्न होकर लीन हो जाते हैं:—

"यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः"

क्योंकि उस परम लाभ से अधिक आनन्द और लाभ अन्यत्र कहीं भी है ही नहीं ॥११॥

(१२)

तेषां त्वं त्वद्भक्तानां
योगक्षेम करो ह्यसि ।
ममापि मन्द भाग्यस्य
योग क्षेम करो भव ॥

हे भक्त हृदय पारिजात ! आप अपने उन अनन्य प्रेमी भक्तों के सम्पूर्ण योगक्षेम का पालन पोषण रक्षण दीक्षण का भार—

"अनन्या श्चिन्तयन्तो मां येजनाः पयुपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥"

इस श्रीमद् भगवद् गीता के रमणीय वचन के अनुसार सम्पूर्ण दायित्व आप अपने वरद हाथों में ले लेते हैं। हे दयामय ! मैं भी एक मन्द भाग्य प्राणी हूँ, मेरे भी योग क्षेम का भार उन ही दयालु हाथों में लेकर अनुग्रहीत कीजिए क्योंकिः—

दीन बन्धु दूसरो कहँ पावों ?
को तुम विनु परपीर पाइ है ? के हि दीनता सुनावों ।
प्रभु अकृपालु, कृपालु अलायक, जहँ जहँ चितहिं डोलावों ।
इहै समुझि सुनि रहौं मौन ही, कहि भ्रम कहा गवावों ॥

हे प्रभो ! आप जैसा दीन बन्धु दूसरा कहाँ पाऊँगा। हे नाथ ! तुम को छोड़कर पराए (भक्त के) दुःख से दुखी होनेवाला दूसरा कौन है ? फिर अपनी दीनता का दुखड़ा किसके आगे रोता फिरूँ ? जहाँ जहाँ मैं अपने मन को डुलाता हूँ। वहाँ वहाँ कहीं तो ऐसे स्वामी मिलते हैं, जिनके दया नहीं है, और कहीं ऐसे मिलते हैं जो दयालु तो हैं, पर अयोग्य (असमर्थ) हैं। यह सुन समझकर चुप ही रह जाता हूँ, क्योंकि ऐसों के सामने कुछ कहकर अपना भरम ही क्यों खोऊँ ? (भेद भी खुल जायगा और कुछ होगा भी नहीं) ॥ १२ ॥

(१३)

भक्ता नाम नुरक्तानां
शान्तानां समचेतसाम् ।
आत्म तत्त्व प्रकाशेन
योग क्षेम करोभव ॥

हे भक्त हृदयारविन्द मिलिन्द ! हम सांसारिक जीव आपके श्री चरणारविन्दों में निरन्तर अनुरक्त हैं, तथा आपके अनन्य सेवक हैं। आपके चरणारविन्द के मधुर रस का कुछ आस्वादन प्राप्त हो जाने के कारण शान्त वृत्ति से युक्त हैं, तथा समानता की भावना से ओत प्रोत हैं। हम पर पूर्ण कृपा करके आत्म तत्त्व की दिव्य ज्योति प्रदान कर हमें योगक्षेम से समन्वित करने की कृपा कीजिये। योग शब्द का अर्थ ऐसे स्थलों में अलब्ध की प्राप्ति में प्रयुक्त होता है, तथा लब्ध पदार्थ की रक्षा को क्षेम कहते हैं। अतः जो आत्मज्ञान रूप तत्त्व हमें प्राप्त नहीं है उसकी प्राप्ति कराइये, और प्राप्त हुए आत्मज्ञान की सुरक्षा अपने वैभव से स्वयं करने की अनुकम्पा कीजिये ॥१३॥

(१४)

त्वमात्म तत्त्वामृत पान तुष्टो
पुष्टः परं सगुणभक्ति रस प्रवाहैः ॥
राधाऽधरामृत सुधारस चंचरीकं
श्री कृष्ण चन्द्र भ्रमरं हृदये विभर्षि ॥

हे सगुण भक्तिरस मकरन्द मिलिन्द ! आप आत्मा के तत्वज्ञान रूप अमृतरस का अहर्निश पान करके प्रसन्न चित्त हैं, तथा भगवान् की सगुणोपासना के परम मधुर पीयूष रस का आस्वादन करने से परम पुष्ट हैं।

श्री लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्री कृष्णचन्द्र की अद्वितीय प्रेम-पात्री अनिन्द्य सौन्दर्य सौभाग्यशालिनी भगवत्प्राणप्रिया श्री राधारानी जी के अधरामृत के रसास्वादन के लिये परम चतुर भ्रमर रूप श्री कृष्णचन्द्र रूपी भृङ्ग को अपने हृदय कमल में निरन्तर धारण करते हैं।

इसका अभिप्राय यह प्रतीत होता है कि श्री राधाजी के अनन्य भक्त होने के कारण, श्री प्रियाजी की श्री मूर्ति आपके हृदयारविन्द में अनवरत विराजमान रहने के कारण—श्री राधा प्राण वल्लभ श्री वृन्दावनचन्द्र स्वतः ही अपनी प्राण वल्लभा के प्रेम से पराधीन होकर आपके हृदय रूपी राधा निकुञ्ज में निरन्तर निवास करके आपको आनन्द-विभोर रखते हैं। अतः आपकी भक्ति का सौभाग्य वाणी से अगोचर है। जिस हृदय में युगल सरकार निरन्तर विराजकर अपनी त्रिभुवन मोहिनी छटा से जिसे प्रतिक्षण देदीप्यमान रखते हैं, धन्य है, उस परम भक्त हृदय को! उसका वाणी के द्वारा वर्णन होना नितान्त असम्भव है ॥१४॥

(१५)

कदाऽपि रामं श्री लक्ष्मणं त्वं
सीता लताऽलिङ्गित सर्वगात्रम् ॥
योगीन्द्र ध्यानामृतपानपात्रं
योगासनस्थो हृदये विभर्षि ॥

हे कैलाश गिरिगुहा विहारिन् ! श्री शम्भो ! कभी कभी योगासन पर विराजमान होकर आप जगतजननी श्री जानकी जी से आलिंगित हैं सम्पूर्ण गात्र जिनके, ऐसे मर्यादा पुरुषोत्तम श्री अवधेश लाड़ले श्री राम, जिनके अनुचर भक्त लखणलाल समीप में स्थित हैं। तथा जिनकी मन मोहक छबि सुधा योगि-राजों के ध्यानामृत का पान पात्र है, ऐसे श्री रघुनन्दन की छवि को अपने हृदय में धारण करके परम प्रसन्न हो जाते हैं॥ १५॥

(१६)

त्वां शंकरं शंकरं मूर्तिशालिनं
श्री राम सीतांकित सर्वगात्रम् ।
श्री कृष्ण राधांकित रोमराजिं
प्रभुं भजे हैडकखान् वासिनम् ॥

हे भगवन् ! आप अभयंकर श्री शंकर की लोक कल्याण करने वाली साक्षात् मूर्ति हैं, तथा आपके सम्पूर्ण गात्र श्रीराम सीता के स्वरूप और नामों से अंकित हैं। शरीर के प्रत्येक रोम श्री कृष्ण और श्री राधाजी के स्वरूप और नामों से अंकित हैं, ऐसे श्री हैडाखान वासी श्री शंकरावतार शिवमूर्ति श्री सिद्ध सिद्धेश्वर प्रभु का हम निरन्तर ध्यान, स्मरण और कीर्तन, कर के अपनी आत्मा को प्रसन्न करते हैं। इस पद्यत्रयी से स्पष्ट है कि यह भगवत् स्तव एक प्रकार से त्रिवेणी की परम पवित्र और सुन्दर धारा है,

जिसमें अवगाहन करने पर मनुष्य को संपूर्ण आनन्द स्वतः उपलब्ध हो जाते हैं। जिसकी एक धारा श्रीरामभक्ति है, तो दूसरी धारा श्री कृष्ण भक्ति है, और तीसरी धारा सदाशिव भक्तिरस-प्रवाह से ओत-प्रोत है। क्योंकि सम्प्रदायवाद में फँसे हुए जीवों का उद्धार, उनके दृष्टिकोण के बहुत संक्षिप्त तथा संकीर्ण हो जाने से, होना मुश्किल है। अतः तीनों तत्त्व इस त्रिवेणी में समान रूप से प्रवाहित होकर इसकी धारा को परम पावन सुखद और पूर्ण रूपेण पापपुञ्ज प्रणाशिनी बनाने में समर्थ होते हैं। दूसरे इस पावन चरित्र के मूल-सूत्रों में भी जो प्रारंभिक प्रस्थान किया गया है कि "नाना मत समुद्भ्रांत जीव ज्योतिप्रदायकम्।" (पद्य ४, तत्त्व स० सु० स्त०) उसकी सर्वात्मना पुष्टि इस तथ्य से होती है, और वास्तव में देखा जावे तो भी मानव हृदय को पूर्ण शान्ति भी बिना तत्त्व त्रय की उपासना के प्राप्त होना नितान्त असम्भव है। क्योंकि मानव सृष्टि तथा शरीर की कल्पना गुण त्रय के समावेश का परिणाम है। अतःकाल प्रकृति स्वभाव और मनोवृत्ति के भेद से मन की पूर्ण तुष्टि त्रिवेणी स्नान से ही सम्भव है। अतः हे श्रद्धालु भक्तवृन्द ! आप भी इस त्रिवेणी के परम पावन स्नान का निरन्तर आनन्द प्राप्त करके तो देखिये कि इसमें कितनी शान्ति कितना आनन्द और कितनी शक्ति है। स्वतः कुछ दिनों में आपको प्रतिभासित होगी, क्योंकि सूर्य को दिखाने के लिए अन्य प्रकाश की आवश्यकता नहीं होती है। वह तो स्वतः प्रकाशमान् तेजपुंज और परम भास्वर स्वरूप है ॥१६॥

(१७)

लीलां त्वदीयां हृदयारविन्दे
संस्मृत्य चेतो मम ते सुलग्नम् ॥
अन्तर्गतं गुप्त तमं रहस्यं
न गोपयन्त्यात्मजनेषु सन्तः ॥

हे सच्चिदानन्द त्रिशूलिन ! आपके परम पावन चरित्र को हृदयरूपी कमल में स्मरण करके मेरा चंचल चित्त आपके श्री चरणों में निरत हो गया है। अतः महापुरुषों के हृदय स्थित परम गुप्त रहस्यों को भी मेरी लेखनी को सफल बनाने के लिए तथा अपने भक्तों का मनोविनोद करने के लिए प्रकट करने की कृपा कीजिये, क्योंकि सत्पुरुष परम गुप्त तत्त्व को भी अपने निजजनों से गुप्त नहीं रखते हैं ॥ १७ ॥

(१८)

आत्म स्वरूपोऽसि महास्वरूपिन् !
महत्स्वरूपं नहिं नेत्र लक्ष्यम् ॥
लक्ष्यत्वमायाति सुदिव्य दृष्टया
त्वत्पाद पद्माश्रित पादसेवनात् ॥

हे महत्स्वरूप शालिन् ! आप ही आत्मा के निर्विकार सच्चिदानन्द स्वरूप हैं। आपका विराट् स्वरूप इन चरम चक्षुओं से लक्षित होना नितान्त असम्भव है। उस स्वरूप को तो योगीश्वर ध्यान समाधि में मग्न होकर ही देख सकते हैं, परन्तु आपके श्री चरणाश्रित, परम भक्त शिष्यरत्न, श्री स्वनाम धन्य श्री महेन्द्र स्वामीजी महाराज के चरणारविन्दों का सेवन करने से प्राप्त हुई, सुन्दर दिव्य दृष्टिद्वारा तुरन्त आपका वह दिव्य स्वरूप दृष्टि गोचर हो जाता है ॥ १८ ॥

(१९)

त्वत्पादरेणू कृत दिव्य अञ्जनो
यद्यत् प्रपश्यामि लिखामि तत्तत् ॥
सत्यं शपामि नयनैः स्वकीयै-
र्यदत्र किञ्चिद्यदि कल्पयामि ॥

हे दिव्य मूर्ते ! आपके श्री चरणारविन्दों की दिव्य रज के अञ्जन से नेत्रों को माँज कर उन अञ्जन सुमज्जित नेत्रों से जो कुछ देखता हूँ उसे ही अपनी लेखनी से लिख रहा हूँ ।

जैसा कि श्री गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज ने श्री गुरु चरणों की परम पावन रज की परमोत्कृष्ट शक्ति का वर्णन किया है, कि—

"गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन,
नयन अमिय दृग दोष विभंजन"

उस ही दिव्य महौषधि से मेरे नेत्रों में भी आपकी कृपा से दिव्य ज्योति प्राप्त हुई है। मैं अपने नेत्रों की शपथ पूर्वक सत्य निवेदन करता हूँ कि इसमें कल्पना लेश मात्र भी नहीं है ॥१९॥

(२०)

कल्पनातीत ! कल्पान्ते
त्वमेको ज्योति रूप धृक् ।
सप्तर्षिभिः सेव्यमानः
ब्रह्म ज्योतिः स्वरूप धृक् ॥

हे कल्पनातीत ! कल्पना से दूर परात्पर ब्रह्म, कल्प के अन्त में, इस सृष्टि के अवसान में आप केवल ज्योति का रूप धारण करके अवशिष्ट रहेंगे। उस समय सप्तर्षि आपकी स्तुति तथा सेवा में निरत होंगे, केवल ब्रह्म ज्योति का रूप धारण करके आप विराजमान रहेंगे, और सम्पूर्ण कारण और कार्यतत्त्व नित्य में लीन हो जावेंगे ॥२०॥

(२१)

पुनः स्वजन चिन्तायां
मग्नो पथ प्रदर्शकः ॥
कल्पादौ ब्रह्म रूपेण
शास्ता वेद स्वरूप धृक् ॥

हे सृष्टि रचना कर्णधार ! पुनः "यथा पूर्व मकल्पयत्" इत्यादि वैदिक श्रुति के अनुसार सृष्टि की चिन्ता में मग्न विधाता के लिये, आप मार्ग प्रदर्शन कराते हैं, तथा कल्प के आदि में ब्रह्म का रूप धारण करके वेदों के दिव्य ज्ञान को धारण करते हुए उन वेदों के दिव्य ज्ञान का प्रचार करते हैं ॥२१॥

(२२)

वेद वेद्यो वेदज्ञो
वेद वेदित वेदितः ।
वेद वाद रतो वेदान्
प्रचारेण प्रयोक्ष्यसि ॥

हे वेद सर्वस्व ! आपका स्वरूप वेदों से ज्ञेय है, तथा आप ही वेदों के यथार्थ ज्ञान के निधान हैं, और वेदों से ही आपका वास्तविक स्वरूप जाना जाता है। ऐसे आप स्वयं वेद वाद में निरत होकर कल्प के आदि में वेदों का पूर्ण प्रचार करके संसार में पुनः दिव्य ज्ञान की ज्योति प्रसारित करते हैं ॥२२॥

(२३)

जीवोऽयं बहु रोग शोक ग्रसितः
गेहे वसन् कर्म फलेषु तुष्टः ॥
मायाख्य पत्न्या बहु वित्त काम्यया
त्वद्रूप द्वारावतिकां सुप्रेषितः ॥

हे नाथ ! दानि शिरोमणे ! यह मेरा अज्ञानी जीव घर में निवास करता हुआ, अनेक रोग और शोकों से रात दिन पीड़ित रहने पर भी अपने पूर्व जन्म कृत कर्मों के फलों के रूप, जो कुछ थोड़ा बहुत अन्न वस्त्र उपलब्ध होता है, उसीको प्राप्त कर, यथा लाभ सन्तोष

करता हुआ सन्तुष्ट था, किन्तु माया रूपी पत्नी के द्वारा बहुत धन प्राप्ति की कामना से बाध्य करके आपके रूप रूपी द्वारिका नगरी को प्रेषित किया गया। सारांश यह है कि भक्त भगवान् से विनम्र निवेदन करता है कि हे प्रभो ! यह मेरा जीव रूपी सुदामा ब्राह्मण अपने कर्म फल जन्य सुख दुःख को भोगता हुआ, जो कुछ भगवदिच्छ या भिक्षा में प्राप्त हो जाता है उसे ही अपने कर्मों का फल समझ कर अपने घर में प्रसन्न चित्त था, किन्तु जिस प्रकार सुदामा की पत्नी ने सुदामा को प्रेरित करके उसके पूर्व मित्र श्री कृष्ण के पास द्वारिका भेजा था, उसी प्रकार यह मेरा जीव रूप सुदामा भी, अपने कर्मों से उपलब्ध कर्म फलों से सन्तुष्ट था। परन्तु हे कृपालो ! इस माया रूपी पत्नी ने इसे प्रेरित करके जीव के पूर्व मित्र जो आप ब्रह्म हैं, उनके पास आपके रूप रूपी द्वारिका में इसे भेजा॥ २३॥

(२४)

स्वकृत्य तण्डुल कणानत्ति क्षुद्र मूल्यान्
धृत्वास्व कुक्षौ स्तिमिताग्र दृष्टिः॥
शनैः शनैश्शंकित दृष्टिपातै-
स्त्वत्पाद द्वारा वतिकां प्रविष्टः॥

हे परम कारुणिक ! तब वह जीव रूपी सुदामा ब्राह्मण अपने कम रूपी तण्डुल कणों को, जिनका कि मूल्य अत्यन्त क्षुद्र है, अपनी पोटली में बाँधकर शून्य दृष्टि धारण करता हुआ, अर्थात् अपनी आन्तरिक बुद्धि रूपी दृष्टि को लक्ष्य स्थान पर निश्चल करके शंका शंकित दृष्टिपात से इधर उधर देखता हुआ आपके श्रीचरण रूपी द्वारिका में पहुँचा। अर्थात् जिस प्रकार सुदामा की पत्नी ने, उसके साथ श्री भगवान् के सम्मुख भेंट संजोने के लिये चिड़ुए भेजे थे, उसी प्रकार इस माया रूपी पत्नी ने भी इस जीव के द्वारा किये गये शुभाशुभ कर्म रूपी चिड़ुए उस परब्रह्म के सामने भेंट संजोने को बाध कर दे दिये।

तब वह उस पोटली को काँख में दबा कर निश्चल दृष्टि से आपके श्री चरणों का ध्यान करता हुआ, तथा शंकित दृष्टि से इधर उधर देखता हुआ, कि मैं पापों का पुञ्ज हूँ. मुझे कोई देख तो नहीं रहा है, मेरे पूर्व मित्र मुझे पहिचानेंगे या नहीं, उनसे किस मुँह से मिलूँगा, पहिले तो कभी उनका स्मरण भी नहीं किया, इत्यादि वासनाओं से नाना प्रकार के संकल्प विकल्प करता हुआ; आपका रूप ही मानों द्वारिका नगरी है, उसमें प्रवेश कर गया ॥२४॥

(२५)

आसाद्य तत्रैव च पूर्वदृष्टं
मित्रं स्वकीयं नयनाभिरामम् ।
राज्ञां महैश्वर्य समन्वितं प्रभुं
कृष्ण भवन्तं शरणं प्रपन्नः ॥

हे परमात्मन् ! वहाँ पर पहिले के जन्म जन्मान्तर के अपने अभिन्न मित्र, नेत्रों को आनन्द देने वाले, राजाओं के सम्पूर्ण ऐश्वर्य से विभूषित पूर्ण शक्ति से विराजमान आपके रूप रूपी श्री कृष्ण की शरण में पहुँच गया ॥ २५ ॥

(२६)

स्मरता पूर्वं सख्यं च
स त्वया पूर्ण सत्कृतः ।
तस्य कक्षे स्थितान्भोग-
चिडुका नादाय भक्षता॥

हे अपार कारुण्य वारान्निधे ! आपने अपनी पूर्व मैत्री का स्मरण करके उस जीव रूपी सुदामा का पूर्ण सत्कार किया, तथा उसकी काँख में खोंसे हुये कर्म रूपी चिडुवों को उससे छीन कर भक्षण कर लिये, अर्थात् जीव ब्रह्म का ही अंश है, जब अंशी के

पास जीव रूपी अंश पहुँचा तो उसने इसे पहचाना, और इस जीव पर कृपा करके, जो उसके कर्मरूपी तण्डुल कण जिनका शुभाशुभ फल भोगने के लिये उसे पुनः संसार रूपी रंग मंच पर जाना पड़ता, उनको भक्षण करके उसका सर्वात्मना उद्धार कर दिया ॥२६॥

(२७)

त्वया मित्रत्व सौहार्दं
पूर्ण रूपेण दर्शितम् ।
कथं न लभतां सिद्धिं
धनधान्यगजान् श्रियम् ॥

हे दया वारिधे ! आपने उसके साथ मित्रत्व के सौहार्द को पूर्ण रूप से प्रदर्शित किया, तब आप जैसे त्रैलोक्याधीश को मित्र रूप में प्राप्त करके भी वह धन, धान्य, हाथी और लक्ष्मी का क्यों पात्र नहीं बनता ? और सम्पूर्ण सिद्धियों का एक मात्र भाजन क्यों नहीं होता ? अर्थात् तुरन्त अपने मित्र ब्रह्म के समान ही वैभव शाली बन गया ॥ २७ ॥

(२८)

सौवर्णान् शात कौम्मांश्च
वासांसि विविधानि च ।
दारिद्र्यं भक्षितं तस्य
त्वया तण्डुल रूपधृक् ॥

अनेक प्रकार के सोने और कुन्दन के आभूषण नाना प्रकार के वस्त्र और वैभव का अधीश्वर हो गया, क्योंकि तण्डुल रूप में विद्यमान उसके दारिद्र्य का जब आपने भक्षण कर लिया, तब वह किस प्रकार महान् वैभव शाली नहीं बन जाता, अर्थात् मनुष्य के कर्म ही तो उसके बन्धन के प्रधान कारण हैं। जब श्री शिवब्रह्म

की कृपा से उसके कर्म ही नष्ट कर दिये गये तब वह अपने अंशी पर ब्रह्म का साक्षात् शुद्ध रूप बन गया, अर्थात् वह जीव रूपी ब्राह्मण ब्रह्म बन गया, अतएव ब्रह्म के सम्पूर्ण वैभव और ऐश्वर्य के भाग का पूर्ण भाजन और परम धन्य हो गया ॥ २८ ॥

(२६)

सोहं त्वां शरणं यामि
रक्ष मां सर्वतोभयात् ।
त्वयि दृष्टे न दृष्टव्यं
मयाऽन्यस्य मलिनं मुखम् ॥

हे देवाधिदेव ! वह ही मैं जीव रूपी सुदामा आप श्री कृष्ण ब्रह्म की शरण में आया हूँ, हे दयानिधे ! मेरी सब ओर से इस भयंकर सांसारिक भय से रक्षा कीजिये, आपके श्री चरणारविन्दों की एकान्त सच्चे हृदय से शरण प्राप्त कर लेने पर मुझे किसी अन्य साधारण व्यक्ति अथवा मामूली देवताओं का मुख देखने की और उनसे प्रार्थना करने की आवश्यकता ही नहीं रही, अब तो जब मैं सर्वात्मना शरण में आ ही गया तो आप ही कहिये कि—

"देव दूसरो कौन दीन को दयालु !
सील निधान सुजान-सिरोमनि सरनागत-प्रिय प्रनत पालु ॥१॥
को समरथ सरवज्ञ सकल प्रभु, सिव सनेह मानस मरालु ।
को साहिब किए मीत प्रीतिवस खग निसिचर कपि भील भालु" ॥२॥

हे देव (आपके सिवा) दीनों पर दया करने वाला दूसरा कौन है ? आप शील के भण्डार, ज्ञानियों के शिरोमणि, शरणागतों के प्यारे और आश्रितों के रक्षक हैं । आपके समान समर्थ कौन हैं ? आप सब जानने वाले हैं, सारे चराचर के स्वामी हैं और श्री शिव जी के प्रेमरूपी मानस सरोवर में विहार करने वाले हंस हैं ॥२॥

अतः अब तो अच्छा हूँ या बुरा, पुण्यात्मा हूँ अथवा पापपुंज, जैसा हूँ आपका हूँ। आप ही मेरे रक्षक हैं, इस कारण मेरी रक्षा कीजिये, मेरा सर्वात्मना उद्धार कीजिए ॥२९॥

(३०)

चन्द्रश्चन्द्र कलान्वित्त श्शशिधर श्चन्द्रप्रदश्चन्द्रहक्
सूर्य स्सूर्य महश्च सूर्य निरत् स्सूर्य प्रभा दायकः ॥
अग्निश्चैवच अग्निबाण निरतो अग्निय सृष्टिकरः
खं वायुर्जल मेदनीमयतनुः पायात्सदा शंकरः ॥

हे अष्टमूर्त सदाशिव ! आप साक्षात् चन्द्रमा के स्वरूप हैं, चंद्रमा में जिस प्रकार शीतलता, आल्हादकता तथा प्रकाश है, वह सब आप की ही कृपा का फल है, आप साक्षात् चंद्र रूप हैं, (एक बार श्री सिद्ध सिद्धेश्वर सदाशिव ने, अलमोड़ा मण्डलान्तर्गत भँलौंच निवासी एक झाड़ी में एक वैद्य को साक्षात् चन्द्र रूप में दर्शन प्रदान किया था) तथा चन्द्र कलान्वित हैं, चन्द्रमा की कला को आमरण के रूप में मस्तक पर धारण करते हैं। इसलिए संसार आपको शशिधर नाम से व्यपदिष्ट करता है, तथा चन्द्रप्रद हैं, शीतल प्रकाशमान ज्ञान के प्रदाता हैं। तथा चन्द्रहक् हैं, अर्थात् आपके विराट् रूप का वामनेत्र चन्द्रदेव हैं (श्री महाराज ने एक बार कृपा करके भलौंच निवासी शास्त्री को, जो अच्छे वैद्य थे, उनको अट्ठारह गुन्नीस वर्ष की अवस्था में चन्द्र हक् स्वरूप का पाँच मिनिट तक साक्षात् दर्शन कराया था) ये दोनों साक्षात् अनुभव इन दोनों महानुभावों की स्वयमनुभूति थी जो इनकी कृपा से प्राप्त हुई है। हे विश्वरूप ! आप सूर्य स्वरूप हैं, तथा सूर्य के अन्दर तेज आपका ही साक्षात् स्वरूप है जिससे सूर्य सम्पूर्ण संसार को प्रकाशित करता हुआ अपने स्वरूप को भी प्रकाशित करता है, सूर्य में निरत हैं, "यदादित्ये प्रतपति तत्तेजो विद्धिमामकम्" सूर्य के मध्य जो आपका तेज विराज-

मान है, उसका ध्यान करने में निरत हैं, तथा सूर्य को अपनी कृपा से प्रकाश प्रदान करने वाले हैं। आप स्वयं अग्निरूप हैं, तभी तो पंचाग्नि तपस्या में अग्नि की जाज्वल्यमान चिता पर आपका हजारों स्त्री-पुरुषों ने साक्षात् अग्नि के रूप में आश्चर्य-चकित नेत्रों से दर्शन करके जन्म सफल किया था। तथा अग्नि-बाण का प्रयोग करने में तत्पर हैं, (लोगों को श्री सद्‌गुरु देव के विषय में यह धारणा थी कि आप महाभारत काल के कोई महापुरुष हैं, अतः एक भक्त ने अग्नि-बाण के विषय में श्री महाराज से प्रश्न किया था, कि वास्तव में अग्नि-बाण आग्नेय सृष्टि की वृष्टि करने के काम आता है। क्या यह सत्य है ? श्री महाराज भक्त वत्सल और परमोदार ठहरे, मन्द हास्य के साथ उससे कहा कि एक तिनका लाओ, पास से ही वह एक साधारण तिनका लाया, और तत्क्षण अभिमन्त्रित करके श्री गुरुदेव ने उसे फैंका कि तुरन्त बन में अग्नि की जाज्वल्यमान लपटें चारों ओर उठने लगीं, तब भक्त के व्याकुल होकर प्रार्थना करने पर अपने कमण्डलु से अभिमन्त्रित जल के प्रक्षेप से अग्नि को तुरन्त शान्त कर दी) इस कारण अग्नि-बाण निरतः, तथा आग्नेय सृष्टिङ्करः दोनों विशेषण सफल और सत्य हैं। तथा अग्नि से सम्पादित होने वाले कार्यों की सृष्टि के कर्ता हैं, आकाश वायु जल पृथ्वी रूप स्वरूप को धारण करने वाले श्री शंकर रूप गुरुदेव हमारी सर्वदा रक्षा करें ॥३०॥

(३१)

क्रीजेण्डरोऽलक्ष्य गति
स्वप्ने संलक्ष्य रूपिणम्।
शरणं ते समनुप्राप्तः
स्वं लक्ष्यं प्राप्तवान्क्षणे ॥

हे विश्व-व्यापक श्री सिद्ध सिद्धेश्वराधीश ! आपकी गति प्राणी-मात्र से अलक्षित है, तथा आपके कार्य भी बुद्धि से अतीत हैं। अभी

आपने नील्स् ओल्फ क्रीसैण्डर नामक यूरोपियन भक्त को साक्षात दर्शन प्रदान किए, तथा आदेश दिया, जिससे वह वहाँ से तुरन्त चल कर आपकी अभय शरण में आया, और तुरन्त ही आपके दर्शन मात्र से उसने आपकी अनुकम्पा से लक्ष्य की सिद्धि प्राप्त की। श्रीमन्मुनीन्द्रजी महाराज परम सिद्ध सद्गुरु हैं, आपके पावन प्रादुर्भाव से असंख्य जीवों का कल्याण हुआ, उनके भक्तों द्वारा बहुत सी अलौकिक बातें सुनी जाती हैं।

श्री सद्गुरु देवजी की त्रिताप सन्तप्त जीवों के कल्याणार्थ अहैतु की करुणा सुधावृष्टि, अविच्छिन्न, सतत तथा अविराम है, अनन्त रूप से अनन्त जीवों के उद्धार कार्य हो रहे हैं। अभी थोड़े ही दिन पूर्व की सर्व-विदित सत्य घटना है, यद्यपि श्री महाराज जी तीस वर्ष से अन्तर्धान हैं, परन्तु कृपा करके भक्तों एवं श्रद्धालु-साधकों को दर्शन देते ही रहते हैं।

एक सुयोग्य यूरुपियन सज्जन थे, जिनका नाम है श्री नील्स ओल्फ क्रीसैण्डर, ये स्वीडन देश के विश्व प्रसिद्ध अभिनेता, जर्मनी की सुप्रसिद्ध युनिवर्सल फिल्म कम्पनी के अधिष्ठाता, दानवीर तथा दार्शनिक थे। ये जन्म सिद्ध थे, तथा इनकी आध्यात्मिक गति विधि चढ़ी बढ़ी थी।

अमेरिका में जहाँ कुछ ये वर्षों से निवास कर रहे थे, वहाँ इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी, इनके बचन सिद्ध बचन माने जाते थे, ये निरामिष भोजन करते थे, ६७–६८ की अवस्था में इनको रूस की राजधानी मास्को के शयनागार में श्री मुनीन्द्र हैड़ाखानवाले बाबा के दर्शन हुए, उसी समय इनकी धर्मपत्नी को भी श्री मुनीन्द्रदेव ने दर्शन दिये, उस समय इनकी धर्मपत्नी लेनिनग्राड में थीं, जब दूसरे दिन दोनों स्त्री-पुरुष मिले तो दोनों का स्वानुभव एक ही था। योगी के दर्शनार्थ वृत्तियाँ मचलने लगीं, विशुद्ध हृदय की एकमात्र यह ही

पहिचान है कि भगवान् के श्रीचरणों में लगे, श्री भगवान् "पावनं पावनानाम्" हैं, अतः पवित्र हृदय परम पवित्र श्री भगवान् की प्राप्ति किये बिना, विश्राम ही नहीं ले सकता। क्षुधा की निवृत्ति भोजन करने से ही होगी, इसी नियमानुसार उपरोक्त स्वीडिश महोदय भी भारत में आए, पांडिचेरी श्री अरविन्द आश्रम में भी कुछ काल व्यतीत किया, परन्तु उन्हें इस प्रवास में पूर्ण सन्तोष नहीं मिला। अज्ञात प्रेरणा से वे अल्मोड़ा आये, और कसारदेवी नामक निर्जन स्थान में लगभग दो वर्ष रहे।

वहाँ पर उन्हें श्री सद्गुरुदेवजी महाराज के दर्शन कई बार हुए, जिनके दर्शन उन्हें मास्को में हुए थे, अपने जन्म-जन्मान्तर के सद्-गुरु को प्राप्त कर धन्य-धन्य हो गए। उन्होंने सुन्दर कलात्मक मशाले की मूर्ति बनाई है। इस घटना के स्मृतिरूप वह मधुर एवं आकर्षक मूर्ति आज भी अलमोड़ा में एक प्रतिष्ठित घर में सुरक्षित रक्खी है। २६ अप्रेल सन् १९४६ को वे यूरोपियन महाशय अलमोड़ा से चले गये।

ऐसी घटनाएँ अब तक श्री महाराज जी की दया से कितनी ही हुई, और हो रही हैं। इसका ज्ञान सब को नहीं है, जैसे प्रभु अनंत हैं, वैसे ही उनका चरित्र भी अनन्त तथा अलौकिक है ॥३१॥

(३२)

सत्यो लोक प्रवादोऽयं
त्वया सत्यः कृतः क्षणात्।
क्षणेन गुरुसान्निध्या-
ज्जनोऽमृतमवाप्नुयात् ॥

हे महाप्रभो! क्षणमात्र में ही श्री सद्गुरुदेव की कृपा से मनुष्य अमृत (आत्मदर्शन अथवा मुक्ति) को प्राप्त कर लेता है, यह जो

सत्य लोकोक्ति संसार में प्रचलित है, उसे आपने विदेश-स्थित भक्तों का भी उद्धार करके सत्यता प्रदान की है ॥ ३२ ॥

(३३)

तवैव चरणेषु समाप्य भौतिकं
देहं गतोऽसौ पदमव्ययं क्षणात् ।
सत्यं दयां तेऽमृत तत्त्व सम्प्लुतां
संसार भूति निरतेषु कुरुष्वयोगिन् ॥

वह परम भाग्यशाली क्रीसैण्डर आपके ही श्रीचरणों में अपने स्वत्व की भौतिकता का नाश करके अव्यय ब्रह्मपद का अधिकारी बन गया। अर्थात् मनुष्य के हृदय में भगवत्-साक्षात्कार तथा आत्मानुभूति की ज्योति जागृत हो जाने पर चाहे वह पाँच भौतिक शरीर से संसार में कुछ दिन जीवन-यात्रा करता रहे, फिर भी वह जीवन्मुक्त अवस्था में देहाभिमान शून्य होकर विचरण करता है, परम पद का तो पूर्ण रूप से उस ही दिन अधिकारी हो जाता है, जब कि सद्गुरुदेव का वरद हस्त उसके मस्तक को अलंकृत करता है। वास्तव में हे योगीश्वर ! आपकी अनुकम्पा अमृत तत्त्वमय है, उससे क्षणमात्र में ही जीवन में अमरत्व का आभास हो जाता है। उस अनुकम्पा को कपा करके सांसारिक वैभव (सम्पत्ति, हुकूमत, सोने-चाँदी के सिक्कों) के खिलौने जो हम संसारी जीव हैं, उनके उद्धार के लिए कीजिए, जिससे हम अज्ञानियों का पूर्ण उद्धार हो सके। आपके अतिरिक्त परम सामर्थ्यशाली और कौन है, जो हमारा रक्षक बन सके ? जिसके पास जाकर अपनी दयनीय दशा का निवेदन करके शान्ति प्राप्त कर सकें ॥ ३३ ॥

(३४)

स एव धन्यऽस्ति मनुष्यलोके
रशा प्रवासी सद् औल्फनील्सः ।
यत्कौशलोपार्जित चित्र विद्या
प्रसादतो नेत्र चषैः पिवामः ।।

हे आर्त बन्धो ! इस मनुष्य लोक में रशा से आपकी शरण ताक कर आया हुआ वह श्री नील्स औल्फ क्रीसैण्डर धन्य है, जो अपनी श्रद्धा भक्ति के कारण आपकी अनुकम्पा का भाजन बना । उस परम भाग्यशाली के मूर्ति निर्माण कला कौशल की कृपा से हम जैसे हतभाग्य व्यक्ति भी आपकी परम सुन्दर मूर्ति के दर्शन से अपने नेत्रों को सफल कर लेते हैं, तथा आपकी दिव्य रूप माधुरी का नेत्र रूपी प्यालों से पान करके अपना जन्म सफल कर लेते हैं।

अन्यथा आपकी परम दिव्य श्री विग्रह से शोभित छबि का किस प्रकार दर्शन करने के लिये समर्थ होते ।

जब उस महापुरुष ने आपकी परम सुन्दर मूर्ति का निर्माण किया तो हम भी अपने नेत्र रूपी प्यालों से दर्शन सुधा को तृप्ति पर्यन्त पान करते हैं, और करते रहेंगे, इस लिये वह प्रवासी पूर्ण रूपेण धन्यवाद का भाजन है ।। ३४ ।।

(३५) (३६)

युग्मकम्

त्वंचापि धन्योऽसि महाप्रभाव !
प्रकाशितुं योगपथ प्रभावम् ।
प्रारम्भिके बार्द्धक रूपधारी
द्वितीय चित्रे तरुणो बभूव ।।
चित्रे तृतीये च शिशु स्वरूपो
स्वरूपवाञ्चन्द्र किरीट जुष्टः ।
भक्त प्रसादाय स्वयोग सिद्धिं
प्रकाशवाँलोक हिताभिलाषया ।।

हे महा प्रभाव शालिन् ! सब से अधिक धन्यवाद के भाजन तो आप हैं, क्योंकि योग मार्ग की असीम और अलौकिक शक्ति को प्रकट करने के लिये, पहिले चित्र में आपका स्वरूप, प्रौढाऽवस्था को प्रकट करनेवाला, कंटोपा तथा कुर्ता धोती पहिने हुये था।

दूसरे ही क्षण उसी हालत में जब दूसरा फोटो लिया गया तो बडी आश्चर्यजनक बात हुई, कि तारुण्यभाव पूर्ण परम सुन्दर चित्र का निर्माण हुआ, फोटो में नंगा शरीर आया, उस पर यज्ञोपवीत स्पष्ट झलक रहा है, परम सौन्दर्य श्री विभूषित, चन्द्रमा के सुन्दर शिरपेच से सुशोभित भालयुक्त, अपने स्वरूप को साक्षात् चन्द्रशेखर प्रकट करते हुए चित्र का निर्माण कराकर, भक्तों पर कृपाभावना से, अपनी पराकाष्ठा की योग सिद्धि को लोक कल्याण की अभिलाषा से आपने प्रकट किया, जिससे कि भयंकर कलिग्रसित जीवों के हृदय में ब्रह्म के प्रति अनास्था के भाव उदय न हो सकें, तथा योग शास्त्र में भावी सन्तति विश्वास रख के अपना आत्म-कल्याण कर सके।

एक समय श्री पं० ज्वालादत्तजी जोशी, मेजर बसु, तथा महा-महोपाध्याय श्री आदित्यराम महाचार्य M. A. प्रयाग से श्री महाराज की सेवा में दर्शनार्थ पधारे, और उस समय उनके साथ रुस्तम नामक पारसी फोटोग्राफर भी थे, उस समय आदित्यराम भट्टाचार्य के अनुरोध पर मेजर बसु के अतिशय प्रार्थना करने पर श्री महाराज ने उन पर कृपा करके संसार के कल्याण निमित्त उन्हें चित्र खैंचने की आज्ञा प्रदान कर दी। उन महानुभावों ने दो कापियाँ एक साथ में श्री रुस्तम नामक प्रसिद्ध पारसी फोटोग्राफर द्वारा खिचवाई, कि यदि पहिली कापी बिगड़ जावे तो दूसरी से सुन्दर तम चित्र बना सकें। जब चित्रों का प्रक्षालन किया गया तो दोनों चित्र भिन्न भिन्न अवस्था भिन्न भिन्न मुद्रा और भिन्न भिन्न छवि से विभूषित थे। धन्य है योग योगेश्वर का अलौकिक अभूत पूर्व चमत्कार ! इससे

सिद्ध होता है कि योगीराज एक क्षण में ही कितने रूपों का परिवर्तन कर सकते हैं। ऐसे अनेक चमत्कार श्री सद्गुरुदेव में हज़ारों आदमियों ने देखे। एक समय में ही अनेकों स्थानों पर अनेक आदमियों से हज़ारों कोस के अन्तर पर दर्शन तथा वार्तालाप आदि सहस्रशः चमत्कार प्रत्यक्ष देखे गये।

धन्य है आपकी शक्ति और सामर्थ्य, क्यों न हो देव ! आप तो साक्षात् भगवान शंकर के दिव्यावतार ठहरे ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

(३७)

तव प्रभावाच्चरित्रं ते
सुगुप्तं प्रकटी कृतम् ।
क्षन्तुमर्हसि देवेश !
भक्तानां हृदय शान्तये ॥

हे देवेश ! आपके प्रभाव और कृपा से ही आपका परम गुप्त चरित्र प्रकट किया गया है। यह ऐसी चेष्टा आपके अनन्य भक्तों के हृदय की शान्ति और आह्लाद के निमित्त प्रेरणा प्राप्त करके की गई है, अतः हे देवाधिदेव ! इस ढीठता को क्षमा करने की कृपा करें ॥३७॥

(३८)

भक्ताः रहस्यं जानन्ति
सुगुप्तं त्वद् हृदि स्थितम् ।
यथा त्वं वै विजानासि
तेषां हृदय संस्थितः ॥

हे अंतर्यामिन् ! आपके परम भक्त आपकी कपा से गुप्ततम हृदय स्थित रहस्य को भी जानते हैं, जिस प्रकार उनके हृदय में अहर्निश

विराजमान रहकर उनके हृदय की प्रत्येक बात को आप जानते हैं, उसी प्रकार अनुकम्पा से वे भी आपके गुप्त रहस्यों को तथा लीलाओं को जानते हैं ॥ ३८ ॥

(३९)

नाम्ना त्वदीयेन सदा सदाशिव !
त्रैलोक्य संक्षोभ निवारणं कृतम् ।
को नाम आधिर्भव मादृषां विभो !
निवारणे यस्य कृतः समाधिः ॥

हे सदाशिव ! श्री सिद्धसिद्धेश्वर ! आपके केवल एक बार भी नाम का ग्रहण करने मात्र से अखिल त्रैलोक्य के कष्टों का निवारण क्षणमात्र में हो जाता है ।

हे व्यापक अखिलेश्वर ! मुझ जैसे दीनों की ऐसी कौन-सी विशाल मानसिक व्यथा है, जिसके निवारण में आप समाधिमग्न होकर विलम्ब कर रहे हैं। अतः हे देव ! अब अधिक विलम्ब मत कीजिए, और शीघ्रातिशीघ्र कृपा करके दरिद्र दुःख और दुविधाओं को हरण करके सुख-सम्पत्ति और आत्मज्ञानजन्य पराशान्ति प्रदान कीजिये ॥ ३९ ॥

॥ इति श्री प्रपन्न संत्राण समीक्षा सुमन स्तबकम् ॥

ॐ

श्री सद्‌गुरवेनमः

अथ प्रमोद बन विहार समीक्षा सुमन स्तबकम् ॥५॥

(१)

साम्प्रतं साधु वेशस्त्वं
लीलाधामरतः प्रभो !
यतेः प्रच्छन्न वेशेण
लोके चरसि सुव्रत ! ॥

यह "प्रमोद बन विहार समीक्षा सुमन स्तबक" नामक पञ्चम सुमन गुच्छ है। इसमें श्री सिद्ध सिद्धेश्वर सद्‌गुरुदेव, यती का वेष धारण करके श्री अवधेश लाडले मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम की लीलाओं का निरीक्षण करके प्रतिपल अवध में आनन्द विभोर होते हैं, इसका वर्णन किया गया है।

हे सुव्रत ! परम सुन्दर योग समाधि तपस्या रूप व्रत का पालन करने वाले ! श्री सिद्ध सिद्धेश्वर ! इस समय भी आप सुन्दर साधु का वेष बनाकर, भगवान् के दिव्य रूप, धाम, लीला और नाम का रसास्वादन करते हुए, गुप्त यती के वेश में संसार में परिभ्रमण करते हैं। कभी मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम के सुमधुर चरित्र का अयोध्या चित्रकूटादि में आनन्द लेते हैं, कभी आनन्दबन काशी में पहुँचकर श्री शिवतत्त्व के आनन्द में मग्न होते हैं, और कभी वृन्दावन में पधारकर श्री लीला पुरुषोत्तम श्री कृष्ण तत्व की रास केलि का आनन्द प्राप्त करते हुए अपने नेत्रों को परम प्रियतम के दर्शन से सफल करते हैं ॥१॥

(२)

प्रमोदानन्द वृन्दायाः
वनेषु विहरन्क्रमैः ।
निर्वाणं तृणवत् त्यक्त्वा
परानन्दमुपाससे ।।

हे आनन्द कन्द ! आप कभी प्रमोद वन अर्थात् अवध में भगवान् मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम की लीलाओं का सुमधुर रसास्वादन करते हुए विहार करते हैं। पुनः कुछ समय के लिये आनन्दबन अर्थात् काशी में पधार कर अपने ही शिव तत्त्व के आनन्द रस का, विचरण करते हुए आनन्द लेते हैं। पुनः वृन्दावन में पहुँच कर अपने परम प्रियतम लीला पुरुषोत्तम की विहार भूमि व्रज में रास क्रीडाओं का निरीक्षण करके आनन्द मग्न हो जाते हैं। इस प्रकार भगवन्नाम, लीला, धाम और रूपों के रसास्वादन में मग्न होकर मोक्ष को तिनके के समान तुच्छ समझ कर परब्रह्म के सगुण रूप के रसास्वादन में अहर्निश लीन रहते हुए, आत्म विभोर दशा में रमण करते हैं ।।२।।

(३)

वन त्रयानन्द सुखं क्व नन्दने
क्व मन्दरे रास रसाऽनुभूतिः ।
लीला रसास्वादन लुब्ध ! चेतः
आनन्दवृन्द प्रमोदेषु सिंचसि ।।

हे सर्वगत प्रभो ! प्रमोद, आनन्द और वृन्दावन जिनको कि मर्यादा पुरुषोत्तम और लीला पुरुषोत्तम ने, अपने लीला विहार का प्रधान धाम बनाया है, उन भगवत्पादांकित वनों का-सा आनन्द देवताओं के उस नन्दनवन में कहाँ प्राप्त हो सकता है ? वह तो केवल सामान्य देवताओं के ही मनोविनोद का स्थान है, और ये तीनों महा-

बन तो देवाधिदेव त्रैलोक्यनायक के क्रीडांगण रहे हैं। देवता और देवेन्द्र के निवासस्थान उस मन्दराचल पर्वत पर भगवान् की पूर्णानन्दमयी दिव्य रास लीलाएँ कहाँ उपलब्ध हो सकती हैं ? इस कारण से आप भगवत् लीला के रसास्वादन में परम मुग्ध अपने मन को प्रमोद बन, आनन्द बन तथा वृन्दाबन में भगवद् विभूतियों का साक्षात् दर्शन करके सींचते हैं।

अर्थात् इन दिव्य धामों में, अब भी निरंतर भगवान् की परमानन्दमयी दिव्य लीलाएँ नित्य प्रतिक्षण होती रहती हैं, परंतु उन दिव्य लीलाओं का अवलोकन चर्म-चक्षुओं से नहीं हो सकता है। उनका रसास्वादन दिव्य नेत्रों से अब भी महापुरुष जिन पर भगवान् की पूर्ण कृपा होती है, सर्वदा किया करते हैं। उन ही अमृतमयी भगवत् लीलाओं से आकृष्ट होकर श्री शंकरावतार श्री सिद्ध सिद्धेश्वर यती का प्रच्छन्न वेश बनाकर अपनी रुचि के अनुसार निरीक्षण करते विचरते हैं ॥ ३ ॥

(४)

रूपस्य नाम्नो महिमां सुधाम्नां
लीलावतारस्य कृतीन्कृतार्थयन् ।
नग्नोप्यनग्नो नयनाभिरामो
रामं प्रमोदाधिपतिं दिदृक्षसि ॥

हे मदनान्तक ! भगवान् के परम सुन्दर रूप की, तथा परम पावन नाम की, तथा साक्षात् श्री विग्रह के निवास-स्थान धाम की दिव्य लीलाओं को कतार्थ करने की अभिलाषा से आप दिगम्बर होने पर भी कौपीनाच्छादनादि वस्त्रों का परिधान धारण करके सुन्दर तथा नयनाभिराम साधु का वेश बनाकर श्री प्रमोद बन में श्री अवधेशलाडले मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम की छवि के दर्शन करके अपने आपको कृतकृत्य करते हुए आनन्दमग्न होते हैं।

संसार में भगवत् रूप, नाम, लीला और धाम, ये चार पदार्थ ही परम प्रधान माने गए हैं। आनन्द की पराकाष्ठा का रसा-स्वादन परम भक्त इनके स्वरूपास्वादन में ही करते हैं ॥ ४ ॥

(५)

रूपं यदीयं नयनाभिरामं
प्रतिक्षणं त्वं हृदयारविन्दे ।
ध्यानाऽवरुद्धेन्द्रिय पान पात्रैः
पिवन्नितान्तं नहिं तृप्तिमेषि ॥

हे मन्मथ मद नाशन ! जिन अवधेश कुमार मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम के अलौकिक दिव्य रूप का आप अपने हृदयारविन्द में ध्यानावरुद्ध अन्तर्मुखी इन्द्रिय रूपी पान पात्रों (चषकों) से पान करके अहर्निश आनन्द मग्न होते हैं, और पान करते करते अघाते ही नहीं हैं ॥५॥

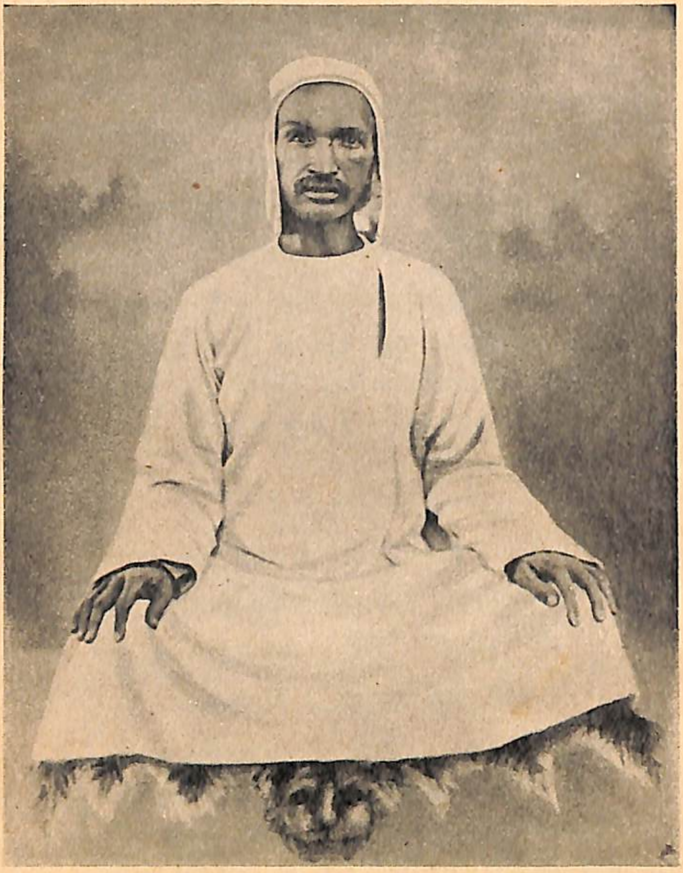
(६)

तदेव रूपं शिव ध्यातु कामः
दिगम्बरो दर्शनमात्र भिक्षुकः ॥
साकेत धामाधिप प्राङ्गणे स्थितो
दृशापिवन् मोक्ष सुखं विनिन्दसि ॥

हे शिव ! जगत्कल्याण कारिन् ! उस ही परम सुन्दर तथा "पावनं पावनानाम्" की रूप माधुरी सुधा का ध्यान करने की अभिलाषा से, आप प्रत्येक त्रेता युग के अन्त में दिगम्बर तथा कपाल रूपी भिक्षा-पात्र को हाथ में संजोकर, साकेतपुर के अधिपति श्री अयोध्यानाथ दशरथ के प्राङ्गण में भिक्षुक रूप में पधारकर अपने परम आराध्य इष्टदेव की बालमूर्ति के रूप माधुर्य को नेत्रों से पान करते हुए, मोक्ष सुख की अवहेलना किया करते हैं, अर्थात् भगवत् रूप दर्शन की तुलना में मुक्ति का कुछ भी मूल्य नहीं है ।

सद्‌गुरुः सद्‌गुणोधारो ध्यानगम्यः सदाशयः

सत्यं परं चिदानन्दं संस्मरामि हि सर्वदा ।।



सर्वश्री समलङ्कृत श्रीमद्योगाचार्य श्रीमन्महामुनीन्द्र सद्‌गुरु

श्री हैड़ाखानवाले बाबा

शास्त्रकारों ने अनेक स्थानों पर निर्देश किया है कि "विलुठति चरणाग्रे मोक्ष साम्राज्य सिद्धिः" अर्थात् परम भागवत भक्तों के चरणों में मोक्ष साम्राज्य लक्ष्मी सर्वदा ठुकराई जाती है। इत्यादि वचनों से सम्पूर्ण विश्व को विदित है कि भगवान् के परम भक्त कभी भी मोक्ष की इच्छा ही नहीं करते हैं। वे तो श्री भगवान् के श्रीचरणों के दर्शन, भगवत् लीलाओं का स्मरण, तथा भगवन्नाम रस के मत्त मधुप हैं। उनकी आन्तरिक कामना तो केवल यह ही रहती है कि—

"दिवि वा भुवि वा ममास्तु वांसो
नरके वा नरकान्तक ! प्रकामम्।
अवधीरित शरदारविन्दौ
चरणौ ते मरणेऽपि चिन्तयामि"॥

वे आपके अनन्य भक्त तो मृत्यु के समय भी, आपका दर्शन तथा आपकी लीलाओं का साक्षात्कार चाहते हैं। चाहे वह नर्क से भी नर्क में क्यों न हो वहीं पर सुख का रसास्वादन करते हैं। अतएव भगवान् शंकर तो सर्व प्रथम भक्तराज हैं, तब वे भगवत् दर्शन के समक्ष क्यों न मुक्ति की अवहेलना करें, ऐसे भगवत् कृपारसिकों का तो केवल यह ही लक्ष्य रहता है, कि:—

"अरथ न, धरम न, काम रुचि, गति न चहौं निर्वाण
जनम जनम, रति रामपद, यह वरदान न आन"

वह परम सौन्दर्यशाली रूप कौन सा है, उसका ही अग्रिम पद्यों में वर्णन है ॥६॥

(७)

श्यामं सुनासं सुकपोल चक्षुषम्
सुकाक पक्षावृत चारु कुण्डलम्॥
नग्नं मनोज्ञं कटि किंकिणी वृतं
रत्न प्रभाशोभित हेम नूपुरम्॥

यह "बालक रूप रामकर ध्याना" का स्वरूप इस प्रकार का है। जिस रूप की भगवान शंकर आराधना में मग्न रहते हैं, तथा भक्ति शास्त्र के प्रधानाचार्य श्री काकभुशुण्डिजी जिस छवि में अहोरात्र तल्लीन रहते हैं।

श्याम अर्थात् मसृणता लिए हुए परम सौन्दर्य सम्पन्न श्याम वर्ण तथा मुख पर शुकतुण्ड के समान परम सुन्दर नासिका, और परम छवि के निधान कपोल तथा कुवलय दल विशाल, श्वेत-श्याम रतनार, बांके रसीले नेत्रों से संपन्न, और सुन्दर रत्न-जटित कुण्डलों से अलंकृत कानों से विभूषित, तथा जिस रूप में कुण्डलों की छवि काक-पक्षों से पूर्ण रूपेण आवृत हो रही है, और बाल-स्वरूप होने के कारण मनमोहक नग्न आकृति से सुमण्डित, और कटि पर परम रम्य सुवर्ण की मणिजटित करधनी से विभूषित, और श्री चरणों में रत्नों की कांति से भास्वर मनोहर नूपुर धारण किए हुए ॥७॥

(८)

इतस्ततो चंचल पाद क्षेपैः
क्रीड़ापर क्रीड़नकार्द्र चित्तम् ।
सौमित्रि शत्रुघ्न परीत देहं
भरतेन भ्रात्रा सह मोद मानम् ॥

इधर उधर चञ्चल चरणारविन्दों के पादविक्षेपों से अवधेश के प्रांगण में क्रीड़ा में तत्पर, बाल स्वभाव सुलभ चापल्य से खिलौनों में जिनका चित्त व्यस्त है, तथा श्री लखणलाल और श्री शत्रुघ्न लाड़ले जिनके साथ छाया के समान अनुपद सहचर हैं और श्री राम के प्रेम की साक्षात् मूर्ति श्री भरतलाल के साथ बाल-क्रीड़ा में प्रसन्न चित्त होकर संलग्न हैं ॥८॥

(९)

एकत्र भ्रातॄन् स्व हृदा स्वजन्तं-
अन्यत्र बालोचित घर्षयन्तम् ।
परत्र बालैः सह नर्तयन्तं
वेदान्त तत्त्वं नयनैर्निरीक्षसि ॥

हे महेश्वर ! आप अपने परम प्रिय प्रभु को महाराज दशरथ के प्रांगण में कहीं पर लक्ष्मण और शत्रुघ्न भ्राताओं को प्रेमपूर्वक अपने हृदय से आलिंगन करते हुये, श्री आराध्य देव के दर्शन कर कृतार्थ होते हैं। कहीं पर बाल्यकाल सुलभ क्रीडा में कृत्रिम रोश की मुद्रा से झगडते हुये, और डराते हुये प्रभु का दर्शन प्राप्त कर विस्मित होते हैं, तथा किसी स्थान पर अपने बन्धुओं के साथ नृत्य लीला में संलग्न देखकर पुलकित तथा स्तम्भित होते हैं, इस प्रकार वेदान्त के तत्त्व, योगीध्यानैकगम्य परब्रह्म को बाल्य कौतुक में निरत देखकर उनके दर्शन से अवध में अपने नेत्रों को सफल करते हैं ॥ ९ ॥

(१०)

श्री कौशलेन्द्रस्य समान पात्रे-
एकत्र राज्ञासह भोजयन्तम् ।
दध्योदनाक्लिन्न मुखारविन्द-
दन्तान् स्मितैः पूर्ण प्रदर्शयन्तम् ॥

श्री परम भाग्यशाली राजाधिराज, अवधेश्वर श्री दशरथ जी के साथ, महाराज के स्वागथाल में एक स्थान पर विराज कर, राज-भोग का आनन्द प्राप्त करते हुये, तथा दही और भात से सने हुये मुखारविन्द में सुन्दर दन्त कलिकाओं को बारम्बार मन्द हास्य द्वारा पूर्ण रूपेण दिखलाते हुये, अपने आराध्य के परम मधुर दर्शनों का आनन्द प्राप्त करते हैं। स्वभाव से ही बालक का मुख स्वतः परम

रमणीय होता है, उस पर भी जब वह प्रसन्नता से किलक कर, अपनी सुन्दर दन्त कलिका, माता पिता को दिखलाता है, उस समय तो माता पिता के स्वर्गीय हृदयों में स्वर्ग की साक्षात् झलक प्रतिबिम्बित हो जाती है। उसमें भी जब त्रैलोक्यनायक स्वयं बालक रूप धारण करके माता पिता तथा दर्शनार्थी भक्तों को आह्लादित करने के हेतु स्मित (मन्दहास्य) करें, तो उस स्मित पर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का वैभव भी न्यौछावर कर दिया जावे तो परम तुच्छ ही है, धन्य है प्रभो आपकी माया, तभी तो आपने—

"स्वीयया माययाऽजोपि स्वयमेव विमोहितः"

इस बचन के अनुसार श्री ब्रह्माजी द्वारा निर्मित माया से उनको ही विमुग्ध कर दिया था। यह ही आपकी भक्त वत्सलता का सबसे महान् उदाहरण है, कि भक्त के मन की तृप्ति के लिये, कहीं पुत्र बनते हैं, तो अन्यत्र पिता भी, कहीं पर मित्र बनते हैं, तो कहीं पर शत्रु ही बनकर कृत कृत्य करते हैं। परन्तु आपके अनन्य भक्तराज सदाशिव तो जिस रूप में आप संसार में पधारते हैं, उसी में रसास्वादन करके तृप्त होते हैं, इसका नाम है, भक्त और भगवान् के हृदय का ऐक्य।

आपको धन्य है, आपकी माया और आपके परम भक्त सभी धन्यवाद के पात्र हैं। इतनी ही लीला पर्याप्त नहीं है, किन्तु इससे भी अधिक आपकी भुवनमोहनी लीला का और भी स्वरूप देखिये किः—

(११)

पुनः पुनः कांचन धान्यपात्र्या
काकाय ग्रासं ददतं सुधीन्द्रम्।
काकस्य सामीप्य भयेन भीत्या
नृपस्य कण्ठार्पित बाहुपाशम्॥

हे रामचन्द्र मुखचन्द्र चकोरायित नेत्र ! अपने पूज्य पिता श्री दशरथ के साथ सहभोज में एक साथ भोजन करते करते, काक का रूप धारण करके उच्चिष्ठ निज प्रसादी की लालसा से प्रतीक्षाऽतुर काक भुशुण्डि को देखकर, भक्त मन की अभिलाषा को तुरन्त पहिचान कर सुवर्ण की कटोरी से उनको ग्रास देते हुए, पुनः लौकिक बाल मर्यादा की रक्षा के निमित्त, काक भुशुण्डि रूप काक के प्रसाद कणिका ग्रहण करने के लिये, समीप आने पर प्राकृत बालक के समान भय विह्वल होकर अपने स्नेही पिता के गले में लिपटते हुए, बालक राम की छवि से हे श्री सिद्धावतार शिव ! आप आनन्द विभोर हो जाते हैं, कि धन्य है तुम्ह मायापति की माया को कि जिसके सामान्य भृकुटि विलास से त्रैलोक्य कम्पित हो जाता है, तथा जो काल का भी काल है; वह परब्रह्म आज दशरथ के अजिर में विहार करते हुए, काक से भी इस प्रकार डर रहे हैं; धन्य है प्रभो आपकी त्रिभुवन मोहनी माया को ॥ ११ ॥

(१२)

इत्थं भक्ति रसास्वाद–
संसिक्त हृदयो भवान् ।
हृदयस्थं प्रियं नित्यं
प्रमोदे वीक्ष्य मोदसे ॥

हे त्रिपुरान्तक ! इस प्रकार भक्ति रस के आस्वादन से सिंचित हृदय सम्पन्न आप अपने हृदय में स्थित परम वल्लभ श्री अवधेश नन्दन की बाल छबि जिससे करोड़ों कामदेव लज्जित होते हैं, प्रमोद बन में देखकर दर्शनाह्लाद से परम प्रसन्न तथा पुलकित होकर आनन्दित होते हैं। क्योंकि आपके आराध्य इष्टदेव श्री बालक रूप राम ही हैं, जैसा कि श्री रामचरित मानस में आपने ही अपने श्री मुख से वर्णन किया है किः—

"इष्टदेव मम बालक रामा
शोभा वपुष कोटि शत कामा" ॥ १२ ॥

(१३)

वैदेहस्य मखे स्वकीय धनुषो दार्ढ्येनभीताननो
शक्तिं तस्य समापयन्निजनयनजैस्तीव्रैःस्फुलिंगैर्मुहुः ।।
भक्तुं तन्निज आसने समुदितं रामाख्यचन्द्रं मुदा
नेत्राभ्यां प्रपिवन् नमन् सुमुदितो धन्योऽसिश्रीशंकर !।।

हे पिनाकिन् ! महाराज जनक के धनुषयज्ञ में अपने शैव धनुष की दृढता के कारण, श्री भगवान् की कोमल कान्ति को देखकर आपका मुख भयभीत हो जाता है, कि यह मेरा धनुष पूर्णरूप से कठोर है, तथा मेरे हृदय सम्राट् परम कोमल हैं, कभी ऐसा न हो कि इनकी नरम कलाई में मुरुक चली जावे।

धन्य रे ! प्रेमी हृदय ! क्यों न हो ? अपने प्रेमपात्र के प्रति सदैव प्रेमी के हृदय का सशंक तथा शुभ कामना पूर्ण होना संसार में आवश्यक है, तथा मानव यति के वेश में ही आप द्रष्टा के रूप में उपस्थित हैं। अतः मानव हृदयोचित भावों का हृदय में उदय होना आवश्यक है, हो भी क्यों नहीं ? सत्य ही तो कहा है, "यह प्रेम को पन्थ करारो है री, तरवार की धार पंधावनो है।"

वास्तव में यह मार्ग बड़ा अनूठा है, अतः आपका मुख एक क्षण के लिये भयाक्रान्त सा हो जाता है, अतः आप अपने तृतीय नेत्र से निकले हुए अग्नि के तीव्र स्फुलिंगों से उस धनुष की शक्ति को तथा दृढता को एक क्षण मात्र में समाप्त कर देते हैं। पुनः उस धनुष के भंग करने के लिए अपने आसन से उठते हुए श्री राम रूपी चन्द्रमा की रूपसुधा को नेत्र चषकों से पान करते हुये तथा मन ही मन प्रणाम करके प्रसन्न होते हुए श्री शंकर आप धन्य हैं, तथा आपकी अपने अराध्य में जो अलौलिक भक्ति तथा प्रेम है वह भी धन्य है।

अभिप्राय यह है कि भगवान् के लीलाधाम में सम्पूर्ण भगवत् लीलाएँ निरन्तर होती ही रहती हैं, परन्तु वे मायावृत अज्ञानी पुरुषों को नेत्रों से दिखलाई नहीं देती हैं, अतः प्रमोदवन में धनुष यज्ञ की लीला का जब प्रच्छन्न यति वेशधारी सदाशिव दर्शन करते हैं, तब उनके हृदय की क्या दशा होती है ? उसका वर्णन उपरि लिखित तथा निम्न लिखित दोनों पद्यों में किया गया है ॥ १३ ॥

(१४)

आशाग्रस्त महीश काल भुजगीं वैदेह नेत्रोत्सवां
वैदेह्या निजं पाणिना सुग्रथितां माङ्गल्य मूर्तिस्रजम् ।
सत्वोद्रेक समान्वितैर्निज करैः कण्ठे प्रियस्यार्पितां
भूयो वीक्ष्य सुवीक्षितो निजहृदानन्देन धन्यः शिव ! ॥

अब आप श्री राम की धनुष यज्ञ में विजय होने के अनन्तर श्री जनकनन्दिनी के करकमलों से किये गये स्वयंवरण को किस प्रकार अवलोकन करते हैं । हे अभयङ्कर ! वह स्वयंवर की वरमाला, श्री जानकी के साथ विवाह की कामना करके आए राजाओं के हृदयों को ऐसी भयंकर प्रतीत होती थी मानो कालसर्पिणी हो, तथा वैदेह श्री जनकराज के नेत्रों को परम मांगलिक रूपधारी उत्सव के समान दर्शनमात्र से आनन्दप्रद प्रतीत होती थी। उस परम सौभाग्यशालिनी मङ्गलस्वरूपिणी माला को श्री जनकनन्दनी ने अपने करकमलों से ग्रन्थन करके निर्माण किया था, तथा सात्त्विक भाव के आधिक्य के कारण स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च समन्वित अपने मंगलमूल करकमलों से परम प्रियतम श्रीराम के हृदय में अर्पण किया था । उस समय श्री राम और जनकनन्दनी वैदेही, युगल सरकार की सुषुमा को देखकर आप मन ही मन परम प्रसन्न हो रहे थे, फिर भी निज हृदय-सम्राट श्रीराम की प्रेमभरी चितवन उस समय अपने हृदयसर्वस्व आप पर

पड़ी, तब तो बस आप प्रेमविभोर होकर सब सुधि-बुधि भूल कर आनन्द समुद्र में मग्न हुए। श्री साम्ब सदाशिव आपके सदृश संसार में और कौन प्राणी है, जो धन्यवाद का पात्र बन सके? आप ही परम धन्य हैं। यह आनन्द कैलाश में कहाँ प्राप्त हो सकता है, इसे ही प्राप्त करने के लिए आप पुनः पुनः प्रमोदवन की यात्रा करके प्रमुदित होते हैं॥ १४॥

(१५)

रथेन यान्तं जनक प्रतिज्ञा–
संरक्षणायात्त व्रतं तपस्विनम्।
प्रजाजनैरश्रुमुखैर्निरीक्षितं
स्वयं निरीक्ष्याश्रुमुखो विरक्तः॥

हे त्रिपुरान्तक! कभी आप श्री रामचन्द्रजी के मर्यादा रक्षा के निमित्त, अपने पूज्य पिता की प्रतिज्ञा का पालन करने के लिए बन में पधारते हुए स्वरूप का दर्शन प्राप्त करके अश्रुपूर्ण मुख और व्याकुल हो जाते हैं।

जिस झांकी में अपने पूज्य पिता की प्रतिज्ञा का पालन करने के लिए श्री राघवेन्द्र सरकार श्री जनक नन्दनी और श्री लखणलाल के साथ रथ में विराज कर, व्रत का पालन करने के हेतु, वल्कल वस्त्र धारण करके बन को पधार रहे हैं, तथा प्रजा के आबाल वृद्ध नरनारी परम आर्त होकर अश्रुपूर्ण नेत्रों से उनकी शोभा को निहारते हुए प्रार्थना कर रहे हैं कि—

"याचितो नो निवर्तस्व हंस शुक्ल शिरोरुहैः
शिरोभिर्निभृताचार मही पतन पांसुलैः॥"

अर्थात् हे प्रभो! हम अवध के वृद्ध-पुरुष हंस के समान श्वेत मस्तकों को धराशायी करके प्रार्थना कर रहे हैं, आप हमारी प्रार्थना को

स्वीकार करके वापिस पधारिये, पृथ्वी पर बारम्बार दण्डवत् पूर्वक प्रार्थना करने से हमारे मस्तक पांसुल (धूल-धूसरित) हो रहे हैं, आप हमारी दयनीय दशा पर कृपा करके महल को लौट चलिए। इस प्रकार अपने प्रेम का परिचय देते हुए, नर-नारियों को देखकर, यद्यपि आप विरक्त हैं; आपको कभी हर्ष शोक नहीं व्यापते हैं, फिर भी अवधवासियों का प्रभु के प्रति हार्दिक प्रेम देखकर आपके नेत्रों में प्रेमाश्रु प्रवाह उमड़ आता है, और आनन्दाश्रु पूर्ण नेत्रों से अपने प्रभु के दर्शन का आनन्द प्राप्त करते हैं। ॥१५॥

(१६)

वने व्रजन्तीं भरतस्य वाहिनीं
दृष्ट्वा भयाद्बान्धव संग्रहे रतम् ॥
निजेष्ट संरक्षण विह्वलान्तरं
गुहं विलोक्यैव मुदा सुविह्वलः ॥

हे ईशान! किसी समय निषादराज गुह के प्रेमविह्वल लीला-दृश्य को, जो कि भक्तों के हृदय में प्रेम, व्याकुलता उत्पन्न करने में पूर्ण रूप से अद्वितीय शक्तिसम्पन्न है, देखकर आप भी अपनी सुधि खो बैठते हैं।

बन में भगवान् श्री राघवेन्द्र सरकार को मनाने के लिए जाते हुए श्री भरतलाल की सेना को पूर्ण बलसम्पन्न देखकर जिस प्रेमी भक्त निषादराज के हृदय में उथल-पुथल मच गई थी, और भय तथा प्रेम में मतवाला होकर निषादों का राजा होते हुए भी; अपने बान्धवों के घर जा जाकर उनको एकत्रित करने में जो पूर्ण सावधानता से सयत्न था, और सबसे नम्रता तथा वीररसपूर्ण वाक्यों में प्रार्थना कर रहा था, कि:—"आज काज बड़ मोर" भाइयो जीवन भर में आज ही आप लोगों से मेरा सबसे महत्वपूर्ण काम पड़ा है, कभी ऐसा न हो कि आप इस पूर्ण महत्त्व के कार्य में तनिक भी शिथि-

लता करें और मेरे जीवन सर्वस्व तक इस भयंकर सेना के थोड़े भी वीर पहुँच जाने से मेरे जीवनधन को संकट का सामना करना पड़े। यदि ऐसा सम्भव हो गया तो मुझ सेवक का जन्म ही व्यर्थ हो जावेगा। अतः विह्वल मन से अपने कुटुम्बी, सम्बन्धी और प्रजा-वर्ग के संग्रह में जो पूर्ण संलग्न था। ऐसे श्री गुहराज के हृदय की प्रेम विह्वल अवस्था देखकर आप भी प्रेम और आनन्द से विह्वल हो जाते हैं ॥ १६ ॥

(१७)

जानासि मार्गं खलु प्रेमपन्थिनां
शिरीष पुष्पादपि पेलवां स्थितिम् ।
इतीव शीघ्रं शकुन स्वरूप धृक्
मनोव्यथां तूर्ण मपाकरोस्त्वम् ॥

हे राघव मानस राजमराल ! क्योंकि आप भक्तिरस के सर्व-प्रथम आचार्य हैं, अतः प्रेम-पन्थ के पथिकों के मार्ग को भलीभाँति जानते हैं। उनके हृदय की दशा शिरीष के पुष्प की अपेक्षा भी परम कोमल होती है। यह भी भलीभाँति आपको विदित है, इसी कारण से मानों आप शकुन (छींक) का रूप धारण करके स्वयं छिक्का बनकर उसके मन की व्यथा को तत्क्षण दूर करते हैं।

अर्थात् प्रेमी का हृदय ईश्वर ने जिन स्वर्गीय उपादानों से निर्माण किया है, उनके रहस्य को आप भलीभाँति जानते हैं, अतः आपको सन्देह हो जाना आवश्यक है, कि यह भगवान् का सच्चा भक्त निश्छल भाव से व्याकुल है। अतः कभी यह उन्मत्त न हो जावे, अथवा इसके हृदय को तीव्र आघात से मर्म कृन्तनी वेदना न हो जावे। इस कारण से आप शकुन का स्वरूप धारण करके तुरन्त ही उसके व्याकुल हृदय में धैर्य का संचार कर देते हैं। धन्य है आपकी

भक्त वत्सलता ! केवल आप श्री भगवान् की ही दिव्य लीलाओं का प्रमोद बन (अवध में) में आस्वादन नहीं करते हैं, प्रत्युत् अनन्य भक्तों की लीलाओं से भी अपने हृदय को आप्यायित करते हैं ॥१७॥

(१८–१९)

युग्मकम्

समागतायाः भरतस्य वाहिनेः
गजाश्वपत्ती चरणोत्थितंरजः ।
विलोक्य रौद्रेण रसेन सम्प्लुतं
रणोन्मुखं रावण नन्दनार्दनम् ॥
चापेषु तूर्णाषु मनो दधानं
गौरं सुरक्तान्त विशाल नेत्रम् ।
सुलक्ष्मणं लक्षण शोभिगात्रं
वाक्यैश्शमन्तं रमणं दिदृक्षसि ॥

हे मन्यो ! अग्रिम कथा प्रसंग में आई हुई, श्री भरतलाल की सेना के हाथी घोड़े और पादचारी सैनिकों के चरणों से उठी हुई रज को देखकर, जिनकी मूर्ति रौद्र रस से पूर्ण हो गई है, तथा जो युद्ध करने के लिये सन्नद्ध हो गये हैं, और तरकस चाप धनुष को एकत्र करके सजाने में जुट गये हैं। तथा जिनका वर्ण गौर होने पर भी क्रोधावेश के अतिरेक के कारण जिनके नेत्रों में ही रक्तिमा का संसरण नहीं अपितु मुखाकृति भी जिनकी पूर्ण लालिमा युक्त हो गई है। सम्पूर्ण गात्र जिनके पूर्ण दृढ और सुन्दर लक्षणों से सुशोभित हैं। ऐसे रावण के पुत्र मेघनाद का बध करने वाले श्री लखणलाल के क्रोधावेश को धैर्य और विवेक पूर्ण वाणी से शान्त करते हुये अपने रमण इष्टदेव मर्यादा पुरुषोत्तम का चित्रकूट पर्वत पर दर्शन करके अपने नेत्र और स्वरूप सफल करने की इच्छा करते हैं ॥ १८ ॥ १९ ॥

(२०)

त्रिकूटाचल कान्तारे
प्रणमन्तं पुरागतम् ।
मातृ संक्लेश संक्लिष्ट-
मानसं दीन चेतसम् ।।

हे देव ! इसके अनन्तर त्रिकूटाचल पर्वत के बन में अयोध्या-पुर से आकर प्रणाम करते हुये, तथा माता कैकेयी के कृत्य जनित दुःख से जिनका मन परम क्षुब्ध हो रहा है, तथा जिसके हृदय में दीन भावों की धारा अविच्छिन्न गति से प्रवाहित हो रही है ।। २० ।।

(२१-२२)

युग्मकम्

भ्रातुर्वरिष्ठस्य हितेऽनुरक्तं
भक्तं प्रपन्नं शरणागतं च ।
हार्दीं दशां स्वां विनिवेदयन्त-
मश्रु प्रवाहार्दित क्लिन्न गात्रम् ।।
अनेक सौगन्ध निदर्शनेन
दशां स्वकीयां विनिवेदयन्तम् ।
आर्तं सुबन्धुं भरतं प्रपन्नं
स्वपादुके क्षेम करे ददन्तम् ।।

हे परम कारुणिक ! जो भरतलाल अपने ज्येष्ठ भ्राता के हित में मनसा वाचा कर्मणा निरत हैं, तथा जो परम भक्त सम्राट् हैं, अपना सर्वात्मना आत्म समर्पण करके पूर्णरूपेण बनवासी श्री राम की शरण में आये हैं। इसके अतिरिक्त अपने हृदय की अन्तरंग दशा का आर्त भाव से निवेदन करने में तत्पर हैं, अविरल अश्रु-प्रवाह

से जिनके अंग प्रत्यंग आर्द्र हो रहे हैं, अनेक शपथपूर्वक अपनी दयनीय अवस्था का अपने परम प्रिय से निवेदन करने में तत्पर हैं। ऐसे आर्त शरणागत भ्राता भरत पर दया करके कल्याण कारिणी पादुकाएँ प्रदान करते हुये प्रभु की छवि को निहार कर तो आप प्रसन्न होते ही हैं, परन्तु—॥ २१—२२॥

(२३)

पादुकालम्ब सम्प्राप्त्या
स्तम्भ रोमांच सम्प्लुताम् ।
भरतस्य दशां दृष्ट्वा
प्रेमविह्वललोचनः ॥

श्री राज राजेश्वर की अनुकम्पा से प्राप्त चरण पादुकाओं को अपने मस्तक पर धारण करके स्तम्भ स्वेद और रोमांच से पूर्ण भक्तराज भरतलाल की प्रेम विह्वल दशा को देखकर आपके नेत्र भी प्रेमाश्रु पूर्ण हो जाते हैं, तथा आप आनन्द विभोर होकर भक्त हृदय की अलौकिकता की सराहना में तन्मय हो जाते हैं॥ २३॥

(२४)

मस्तके तस्य संवेश्य
स्वकीयं निर्भयं करम् ।
साकेत पुरप्रेषन्तं
विलोक्य मुदितो मुने ! ॥

हे मुनिवर ! भ्रातृभक्त श्री राम प्रेम की साक्षात् मूर्ति, उन श्री भरतलाल के मस्तक पर अपना अभयप्रद वरद हस्त रखके, उसे समझाकर पुनः साकेत पुरी को भेजते हुये श्री राम का दर्शन करके आप पुनः प्रसन्नता से परिपूर्ण हो जाते हैं॥ २४॥

(२५)

कदापि रामेण सह सीतया वने
सौमित्रिणा चानुपथं पदान्वितम् ।
दशापिवन्दण्डक काननाऽवनौ
हृदयारविन्दे सुविचार्य हृष्टः ॥

हे इन्दुशेखर ! किसी समय दण्डक बन के पथिक श्री राम की झाँकी की उत्कण्ठा आपके हृदय में जागृत होती है, उस समय आगे आगे श्री मर्यादा पुरुषोत्तम राम, उनके पीछे विदेहनन्दनी और उन दोनों के चरण चिन्हों को अपनी दाईं ओर रखकर प्रत्येक पैड़ पर अनुगमन करते हुए श्री सुमित्रानन्दन, अर्थात् तीनों पथिकों की कमनीय कान्ति को अपने हृदय कमल में विचार कर आप प्रसन्न हो जाते हैं ॥ २५ ॥

(२६)

छविं तदीयां नयनाभिरामं
हृदावहन्बालकवद् विचेष्टसे ।
तत्पादपद्मांकित धूलि धूसरो
भस्माङ्ग चिह्नं द्विगुणं विभर्षि ॥

हे चन्द्रावतंस ! उन अपने हृदय के परम धनस्वरूप श्री राम-सीता और लक्ष्मण की सुन्दर छबि को हृदय में धारण करते हुए, आप कभी-कभी इतने प्रेममग्न हो जाते हैं, कि जिस प्रकार बालक क्रीडासक्त होकर धूलि में लोटपोट हो जाते हैं। उसी प्रकार अपने प्रियतम के चरणारविन्दों से चिह्नित उस दण्डक बन की धूलि में लोटने से आपका शरीर धूलि-धूसरित हो जाता है, और अपने अंग के चिन्ह भस्म को द्विगुणित (पुनरावृत्त) धारण करते हैं। अर्थात् प्रेम वैकलव्य के पराकाष्ठा की दशा में जब आप दण्डक बनभूमि को

प्रियतम पादाङ्कित परम पावन समझ कर उसमें लोट-पलोट हो जाते हैं, तब आपके शरीर में धारण किया हुआ चिताभस्म का अङ्गराग धूलिधूसरता के कारण पूर्ण गहरा प्रतीत होने लगता है। धन्य है आपका अनुराग और प्रेम, तभी तो आपने अपने परम वल्लभ राम को इतना वशीभूत कर रक्खा है, कि आपके हृदय को छोड़कर वे एक क्षण भी कहीं अन्यत्र नहीं जाते हैं, केवल आपका ही स्मरण करते हुए आपके मन मंदिर में निरन्तर बिराजमान रहते हैं॥ २६॥

(२७)

त्वां वीक्ष्य कान्तं नयनाभिरामं
रामोऽपि चित्ते मुदितः स्मितेक्षणः ॥
पृष्टोऽपि पत्न्या निज हास कारणं
व्याजेन शंका नुदते कथंचन ॥

हे रघुनन्दन हृदयारविन्द मिलिन्द ! नयनाभिराम आपकी इस प्रकार प्रेम विभोर दशा को जब श्री रामचन्द्र बन में देखते हैं, तब मन ही मन अत्यन्त प्रसन्न होकर हास्य रस सम्पन्न दशा को प्राप्त हो जाते हैं, उस समय अपने प्रियतम की हार्दिक चेष्टाओं का निरन्तर मनन करके ध्यान में तल्लीन श्री सीता माता अपने प्रियतम से जब हास्य का कारण पूछती हैं कि "हे प्रभो ! इस निर्जन बन में मार्ग यात्रा करते करते अकस्मात् आपको किस कारण से हँसी आई" तब उसका उत्तर देते हुए मर्यादा पुरुषोत्तम अपनी पत्नी के हृदय की शङ्का का निवारण करने के लिये किसी लता अथवा पशु पक्षी का दर्शन हँसी का कारण है ! इस प्रकार जैसे तैसे बहाना बनाकर शङ्का को दूर करने की चेष्टा करते हैं। धन्य है प्रभो आपका प्रेम, जिस प्रकार अपने हृदय धन को आप सर्वात्मना सब की आँखों से छुपाकर सुरक्षित रखते हुए उसके दर्शन का स्वयं ही आनन्द लेना चाहते हैं, उसी प्रकार प्रेम विभोर अपने हृदय धन शंकर को श्री राम भी प्रकट करना नहीं चाहते।

जब स्वयं ही दोनों पारस्परिक प्रेम को प्रकट नहीं होने देते, तब ऐसा कौन भाग्यशाली है, जो आपके गुप्त आनन्द में भाग लेकर स्वयं आनन्दास्वादन का रस प्राप्त कर सके। क्योंकि "शिवस्य हृदयं विष्णुः विष्णोश्च हृदयं शिवः" की उक्ति के अनुसार इस प्रेम जन्य आनन्द में आप परम प्रिया जनक नन्दनी और परम प्रिय लखणलाल से भी पर्दा करके स्वयं ही इस परमानन्द का रसास्वादन करके तृप्त होते हैं।

नाथ ! तृप्त होते ही रहिये, कभी न कभी तो भक्तों के हृदय भी इस आनन्द रस से आप्लावित होवेंगे ही, क्योंकि आपके भक्त भी इस पारस्परिक अवलोकन जन्य आनन्द का रसास्वाद करने के लिये टकटकी लगाये बैठे हैं, कब तक मनोरथ सिद्ध नहीं होगा।

"इहीं आस अटक्यो रहत, अलि गुलाब के मूल,
होइहैं फेरि बसन्त ऋतु, इन डारन वे फूल" ॥ २७ ॥

(२८)

यथा प्रच्छन्न वेशस्त्व-
मानन्दास्वाद तत्परः ।
तथैव स्व हृदान्तस्थ-
मिष्टं गोपायति प्रभुः ॥

हे सर्प किरीटिन् ! जिस प्रकार गुप्त यती के वेश में आप आनन्दास्वादन में तत्पर हैं, उसी प्रकार अपने हृदय के परम गुप्त धन शिव तत्त्व को सर्व सामर्थ्यशाली श्री राम भी प्राणवल्लभा और बहिश्चर प्राण लक्ष्मण से भी गुप्त रख के ही दर्शन का आनन्द प्राप्त करते हैं ॥२८॥

(२६-३०)

युग्मकम्

व्रजतां दण्डके राम
सीतालक्ष्मणयात्रिणाम् ।
कण्टकाकीर्णमार्गस्य
शोधने निरतो मुने ।।
धन्योऽसि मुनिशार्दूल !
धन्याः येषां हृदिस्थितः ।
निजाभीष्टस्य रामस्य
चिन्ताऽन्यं कं प्रबाधयेत् ।।

हे राम नामामृत महोदधे ! क्यों न हो, आप तो श्री राम प्रेम की पराकाष्ठा के परम तत्त्व हैं, दण्डक बन में यात्रा करते हुए श्री राम सीता और लक्ष्मण रूप यात्रियों के कण्टकाकीर्ण मार्ग का शोधन करने में निरत (कहीं पर मार्ग के काँटों को बीनते हुए मार्ग शोधक के रूप में) आपको श्री मर्यादा पुरुषोत्तम देखकर निहाल हो जाते हैं, अर्थात् प्रेम का मार्ग तो बड़ा विचित्र है। प्रेमी अपने प्रेमपात्र का तनिक भी कष्ट सहन नहीं कर सकते, यह सत्य है, जब आप हृदय में विचारते हैं कि मेरे प्रभु राघवेन्द्र सरकार बिना पादत्राण के यात्रा कर रहे हैं। कभी ऐसा न हो कि कोई काँटा मेरे आराध्य देव के श्री चरण को विक्षत कर दे। इस भावना से प्रेरित होकर मार्ग के काँटों को बीनने में तल्लीन हो जाते हैं। क्यों न हो जावें ? आप तो सर्वदा अपने आराध्य के प्रति मनसा, वाचा, कर्मणा क्षेम विधान में तत्पर हैं, अतः प्रभु के प्रति अपना वात्सल्य उमड़ने पर आप किस प्रकार बैठे रह सकते हैं, तुरन्त सेवा में तल्लीन हो जाते हैं। ऐसे हे मुनि-श्रेष्ठ सिद्धावतार श्री शंकर ! आप धन्य हैं, और वे लोग भी धन्यवाद के पात्र हैं, जिनके हृदय में आपकी प्रेममयी मूर्ति विराजमान है।

अपने परमाराध्य इष्टदेव की चिन्ता आपके अतिरिक्त अन्य किसके हृदय को पीड़ित कर सकती है, इसकी वेदना का सुमधुर रस तो वे ही प्रेमी कुछ कुछ जान सकते हैं, जिनके हृदय में प्रेम का अमृत हो, कुछ टीस हो, और कुछ सत्यता का अंश हो। अतः आपके द्वारा कण्टकाकीर्ण मार्ग का शोधन उचित ही है, क्योंकि प्रेम दीवानी मीरा ने भी तो सत्य ही कहा है कि—

"हेरी मैं तो दरद दीवानी मेरो दरद न जाणै कोय।
घायल की गति घायल जाणै जो कोइ घायल होय
जौहरि की गति जौहरी जाणै की जिन जौहर होय,
सूली ऊपर सेज हमारी सोवण किस विध होय" ॥२९–३०॥

(३१)

नीरन्ध्र कदलीवनमध्यसंस्थं
भुजोपधानं मुहुरर्पयन्तम्।
वैदेहि संवाहित पादपद्मं
रामं हृदाध्यायसि पञ्चवट्याम् ॥

इसके अनन्तर आप कभी पञ्चवटी में विराजे हुए प्राणेश्वर की छवि का आनन्दास्वाद प्राप्त करने पञ्चवटी बन प्रदेश में पधार जाते हैं।

हे भोलानाथ ! निश्छिद्र केले के बन के मण्डप के मध्य में शिला फलक पर आनन्दपूर्वक लेटे हुए, और भुजाओं का तकिया बारम्बार बदलते हुए, पञ्चवटी निवास सहचरी श्री विदेह नन्दनी से जिनके चरण कमल पलोटे जा रहे हैं, ऐसे अपने परम प्रभु की छवि को निर्निमेष नेत्रों से पञ्चवटी में अवलोकन करके तृप्ति को ही नहीं प्राप्त करते हैं, तथा उसी रूप के ध्यान में मगन और तल्लीन हो जाते हैं ॥३१॥

(३२)

पुनश्च पर्णै विहिते कुटीरे
कूटस्थ योगीन्द्र विचार गम्यम् ।
सीता सखं कौशलराजसूनुं
सौमित्रि गुप्तं सुविलोक्य तृप्तः ॥

उपरि निर्दिष्ट झाँकी के दर्शन के कुछ ही समय पश्चात् प्रभु की दूसरी झाँकी का दर्शन करके आनन्दित होते हैं। हे शिव शिवात्मक स्वरूप धारिन्! इसके पश्चात् पत्तों के द्वारा निर्मित सुन्दर पर्णशाला में विराजमान ब्रह्मलीन योगीन्द्रों के विचार से ही एकमात्र ध्येय श्री कौशल राजकिशोर अपनी प्राण वल्लभा श्री विदेह नन्दिनी के साथ विराजमान हैं, और कुटी के बाहिर सजग प्रहरी लखणलाल शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर द्वारपाल का कार्य सम्पादित करते हुए अपने परम वल्लभ प्रिया प्रियतम की रक्षा में कटिबद्ध हैं। इस छवि की रूपमाधुरी का ध्यान करके और दर्शन प्राप्त करके आप योग विभूतियों से तृप्त हुए भी अपने अन्तःकरण को पूर्ण तृप्त करते हैं॥३२॥

(३३)

तृप्तोऽपि योगै स्त्रिषितो विलोकने
पुनः पुनः शंकित दृष्टिपातैः ।
निधिं स्वकीयां परहस्तगामिनीं
यथा कदर्यो गतधैर्यसाहसः ॥

हे योगीश्वर! यद्यपि आप योग विभूतियों से पूर्ण तृप्त हैं, फिर भी आपकी भगवत् दर्शन तृषा शान्त नहीं होती, उचित ही तो है। संसार में भी तृप्ति के पश्चात् ही प्राणियों को तृषा सताती है, अतः बारम्बार सशंक दृष्टिपातों से नीची नज़र से अपने प्राणधन को देख देखकर प्रसन्न होते हैं। क्योंकि "स्नेहः पापशंकी" अधिक

स्नेह पापशंकाओं से भरपूर होता है। इसका अभिप्राय यह भी है कि कहीं मेरे परम प्रिय को दृष्टिदोष न हो जावे, इस लिये शंकित दृष्टि द्वारा दर्शन करते हैं। यद्वा मेरे अनवसर में उपस्थित होने से मेरे आराध्य की स्वतन्त्रता में कभी बाधा न आ जावे, इत्यादि अभिप्रायों से सशंक दृष्टियों से जिस प्रकार कंजूस मनुष्य दूसरे मनुष्य के हाथों में फँसी हुई अपनी पूँजी को धैर्य और साहस रहित होकर बारम्बार देखता और ललचाता है, तथा बारम्बार देख देखकर तृप्त ही नहीं होता है ॥ ३३ ॥

(३४)

मुहुर्विलोक्यैव न तृप्तिमेति
तथैव त्वं स्वे हृदयारविन्दे ।
विराजितं वीक्ष्य न तृप्तिमेषि
पुनः पुनः सात्त्विक मूर्च्छनायुतः ॥

हे दर्शन लुब्धं! उसी प्रकार आप भी अपने हृदयारविन्द में विराजमान परम मधुर मूर्ति का पुनः पुनः दर्शन करके भी तृप्ति को प्राप्त नहीं होते हैं, तथा सात्त्विक भाव के उद्रेक के कारण आपको बारम्बार प्रेम जन्य तथा आनन्दजन्य मूर्च्छा ध्यान समाधि के रूप में आ जाती है, और उसी "साक्षान्मन्मथ मन्मथः" कामदेव के मन को भी मथनेवाले परम प्रिय के रूप में आनन्द मग्न हो जाते हैं ॥ ३४ ॥

(३५)

प्रमोदे मोदसे नित्यं
मोदयन्निष्टमात्मनः ।
प्रमोद वन कान्तारे
पुनर्विहरसे क्रमैः ॥

इस प्रकार प्रमोद वन में अपने इष्ट देव को अपनी प्रेम विभोर दशाओं से प्रसन्न करते हुए, अवध तथा अवध सम्बन्धी बनों में बारम्बार लीला, धाम, रूप और नाम के माधुर्य का रसास्वादन करते हुए आप नित्यनिरन्तर विचरण करते रहते हैं ॥ ३५ ॥

(३६)

कापि सीता वियोगाधि
क्लान्तपीड़ितमानसम् ।
मानसे स्वे समाराध्य
आधिना क्लान्त मानसः ॥

हे नीलकण्ठ ! कहीं पर आप सीताजी की वियोग व्यथा से जिनका मन क्लान्त तथा पिड़ित हो रहा है, ऐसे मर्यादा पुरुषोत्तम की अपने मन में आराधना करके स्वयं भी उनके दुःख से दुखी जैसे प्रतित होते हैं। वैसे तो आप द्वन्दातीत हैं, आपके लिए दुख सुख सब समान हैं, फिर भी लोकलीला रत अपने स्वामी के दुःख से दुखी होना भक्त मर्यादा की रक्षा के लिए उचित ही है ॥ ३६ ॥

(३७)

अन्वेष्यतो निज प्रियां रघुनन्दनस्य
मूर्ति विलोक्य हृदयेन सहायकामः ।
भूत्वा स्वयं पवननन्दनरूपधारी
जयाशिषाऽलंकुरुषे मुदा शिव ! ॥

हे रुद्र ! ऋष्यमूक पर्वत के बनोद्देश में, अपनी प्रियतमा का अन्वेषण करने में तत्पर, अपने आराध्य की परम सुकुमार मूर्ति का अवलोकन कर हृदय से उनकी सहायता की कामना से स्वयं साक्षात् हनुमान् का रूप धारण करके, प्रसन्न होकर अपने परम प्रिय श्री राम की विरहवेदना को दूर करते हैं !

श्री अंजनीनन्दन सदाशिव के ही अवतार हैं, क्योंकि रावण ने अपने दस मस्तकों को भेंट करके दस रुद्रों को तो प्रसन्न कर लिया था, (एकादशम रुद्र) अर्थात् ग्यारहवाँ रुद्र प्रसन्न नहीं हुआ, उस ही ने श्री पवननन्दन हनुमान् के रूप में अवतीर्ण होकर रावण की लंका नगरी को अपने परमोग्र रौद्र कोप से भस्मसात् की। अतः हे शंकर ! आप साक्षात् हनुमान् के रूप में आविर्भूत होकर उनकी शत्रु पर विजय की हृदय से कामना करते हैं ॥३७॥

(३८)

मूर्ति त्वदीयां हृदये विराजितां
लोक प्रथायै पुलिने निवेश्य ।
पूजापरं वानरसैन्यसंवृतं
जयाशिषाऽलंकुरुषे सदा शिव ! ॥

हे शिव ! कल्याणकारिन् ! भगवान् मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राघवेन्द्र सरकार, अपने हृदय में विराजमान आपकी मूर्ति को लोक-मर्यादा पालन करने के निमित्त, तट पर श्री सेतुबन्ध रामेश्वर के रूप में स्थापित करके वानर वीरों की सेना को साथ लेकर आपके पूजन में तत्पर हो जाते हैं, तब आप तपोधन मुनिवेश को छोड़कर तुरन्त मूर्ति में साक्षात् रूप से प्रकट होकर, शत्रु पर विजय प्राप्ति के शुभाशीर्वाद से उन्हें विभूषित करते हैं ॥ ३८ ॥

(३९)

पुनश्च वीरेण रसेन सम्प्लुतौ
उत्साह धैर्याविव देहमास्थितौ ।
चापेषुतूणी वर शोभि कन्धरौ
रघु प्रवीरौ सुविलोक्य दृप्तः ॥

हे महाकाल ! इन लीलाओं के दर्शन के अनन्तर, फिर आप वीर-

रस से पूर्ण रूपेण सम्प्लुत होते हुए, मानों कि उत्साह और धैर्य ही देह धारण करके साक्षात् भूमण्डल पर अवतीर्ण हो गए हैं, तथा शर, शरासन और तूणी (तरकस) से शोभित हैं। सुन्दर स्कन्ध जिनके, ऐसे दोनों रघुसिंह श्री राम लक्ष्मण का लंका के युद्धक्षेत्र में दर्शन करके राक्षसों का विध्वंस करने के लिए, स्वयं भी वीर और रौद्र रस से मत्त हो जाते हैं ॥ ३६ ॥

(४०)

दृप्तान्मदान्धान् रणरङ्ग धीरान्
महाप्रहारान्मदनाभि भूतान् ।
रक्षोगणान् रामशराग्नि ताड़ितान्
दिधिक्षसि त्वं निज भालचक्षुषा ॥

हे भाललोचन ! वहाँ रणक्षेत्र में बड़े अहंकारी मद से अन्धे तथा रणरूपी रंग में धैर्यपूर्वक युद्ध करनेवाले, बड़े-बड़े प्रभावशाली शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित, तथा गर्हित कामवासना से अभिभूत, राक्षसों के समूह को जो श्री रामचन्द्र की शराग्नि से पूर्ण रूप से संतप्त कर दिये गए हैं। उनको आप अपने तृतीय नेत्र की महाभीषण ज्वाला से ही भस्म करने की इच्छा करते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि, रण मदमत्त अन्यायी निशाचरों को श्री राम जब मर्यादा की रक्षा के निमित्त खिला-खिला कर मारते हैं, तब आपका तो भक्त-हृदय ठहरा, उस समय आप विचार करते हैं कि मेरे इष्टदेव को इन दुष्टों का संहार करने में बहुत अधिक परिश्रम करना पड़ रहा है, अतः क्यों न मैं अपने भाल-नेत्र की तीव्रतम ज्वाला से, जिस प्रकार प्रलय काल में सम्पूर्ण विश्व को क्षणमात्र में भस्म करता हूँ, उसी प्रकार एक पल में ही इनका भी नाश क्यों न कर दूँ ? धन्य है प्रभो ! आपका अपने आराध्यदेव में प्रेम ! धन्य है आपकी पराभक्ति, और धन्य है आपका मन और वाणी से अगोचर वैभव ! ॥ ४० ॥

(४१—४२)

युग्मकम्

पुरे सुरम्ये सरयू प्रदेशे
प्रासादकक्षे सुविभूषिताङ्गम् ।
सीता लता लिङ्गित सर्वगात्रं
योगीन्द्र ध्यानामृत पान पात्रम् ॥
सौवर्ण सिंहासन भ्राजिताङ्गं
भ्राजिष्णु दीप्त्या सुविभूषिताङ्गम् ।
रत्नप्रभाशोभितदिव्यमंगै
श्चक्षूंषि लोकस्य चकोर यन्तम् ॥

हे अभयंकर शंकर! इसके अनन्तर आप जब श्री अवधेश राम का दर्शन करने को उत्कण्ठित होते हैं, तब सरयू नदी के तट पर सुन्दर अयोध्या के राज प्रासाद के कक्ष में जिनका अंगप्रत्यंग सुविभूषित है, तथा सीता रूपी लता से जिनके सम्पूर्ण अवयव आलिंगित हैं, और जिनका दिव्य स्वरूप योगिराजों के ध्यान का सुरम्य पान पात्र है। सुन्दर तम सुवर्ण के सिंहासन पर विराजमान होने के कारण जिनके अंग प्रत्यंग देदीप्यमान हैं, तथा देदीप्यमान शारीरिक कान्ति से जिनका दिव्य रूप भास्वर है, तथ आभूषणों में जड़े हुए दिव्य रत्नों की कान्ति से जिनके अंगप्रत्यंग की कान्ति देदीप्त है, तथा जिन राम रूप चन्द्रमा के दर्शन, दर्शकवृन्द के नेत्रों को चकोरों के समान आनन्दित कर रहे हैं ॥ ४१—४२ ॥

(४३)

श्यामं सुनासं सुकपोल चक्षुषं
सुकेश सम्भूषित आननाब्जम् ।
संसार आराधन प्राप्त दीक्षं
दीक्षाप्रदं दीक्षित दर्शनीयम् ॥

जिनका भास्वर श्याम स्वरूप है, मुख पर शुकतुण्ड के समान सुन्दर नासिका विराजित है, जिनके कपोल और नेत्र परम सुन्दरता के निधान हैं, तथा जिन्होंने संसार को प्रसन्न रखने की दीक्षा प्राप्त कर रक्खी है, अर्थात् राज्य सिंहासन पर विराजमान होते ही यह श्री राम की सुन्दर प्रतिज्ञा थी किः—

"स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुंचतो नास्ति मे व्यथा" ॥

अर्थात् स्नेह, दया, और सुख तथा इन सब के मूल जानकी को भी लोक समाराधन के लिए परित्याग करते हुए मुझे व्यथा नहीं है ॥

अतएव संसार को सर्वात्मना तुष्ट करने के लिए गर्भमरालसा पत्नी जो कि स्नेह की पूर्ण पात्री थी, गर्भणी होने के कारण दयापात्र थी, तथा सुख का एक मात्र साधन थी, उसका भी परित्याग करके जिन्होंने संसार समाराधन की दीक्षा का अनुपम उदाहरण उपस्थित किया, तथा नाना प्रकार के अश्वमेध, वाजपेय वाजसनेय आदि महायज्ञों की दीक्षा प्राप्त व्यक्ति ही जिनके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त कर सकते हैं ॥ ४३ ॥

(४४)

दत्ताभयं गोद्विज बालकेभ्यो
दीनार्तशरणागतपालनाय ॥
धृत व्रतं दंशित सर्वगात्रं
पीताम्बराच्छन्न समस्त देहम् ॥

गौ ब्राह्मण और बालकों के लिये जो सर्वदा अभयदान देने में तत्पर हैं, तथा दीन पीड़ित और शरणागतों की रक्षा व पालन के लिये जो सर्वदा सन्नद्ध हैं, जिनके सम्पूर्ण गात्र सुन्दर कवच से

आच्छन्न हैं, तथा सम्पूर्ण देह पिताम्बर परिधान से आच्छादित है ॥ ४४ ॥

(४५)

देहाभिमानेन नितान्तशून्यं
मर्याद रक्षा व्रत माचरन्तम् ॥
मुनीन्द्र हृत्पद्म विकासयन्तं
श्रिया लसन्तं तरुणेन्दु वक्त्रम् ॥

जिनका दिव्य स्वरूप देहाभिमान से नितान्तशून्य है। मर्यादा की रक्षा के लिए जो ब्रत का और नियमों का आचरण करते हैं। मुनीन्द्रों के हृदय रूपी पद्म को जिनका दर्शन विकसित करता है, और अनुपम लक्ष्मी से जो देदीप्यमान हैं, तथा तरुण चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख से सुशोभित हैं ॥ ४५ ॥

(४६)

रामं रमेशं धृत चारु चापं
पाशाकुंशैः शोभित पाद पल्लवम् ॥
सौमित्रिणा छत्र धरेण भ्राजितं
शत्रुघ्न भरत-प्रति बीजितं प्रभुम् ॥

ऐसे सुन्दर श्रीराम लक्ष्मी के साक्षात् स्वामी हैं तथा आर्तरक्षण के लिए सुन्दर चाप जिनके हाथ में विराजमान है। पाश और अंकुश से जिनके चरणारविन्द चिन्हित हैं, (यह सामुद्रिक शास्त्र का तथ्य है, कि परम प्रतापी राजा के चरण में पाश अंकुश आदि चिन्ह होते हैं)—

—जिनके सिंहासन के पीछे श्री लखणलाल छत्र धारण किये खड़े हैं, और श्री भरतलाल और शत्रुघ्नलाल दोनों ओर चमर डुला

रहे हैं, ऐसे सम्पूर्ण सामर्थ्यसम्पन्न श्री राघवेन्द्र सरकार अवध-प्रासाद में सुशोभित हैं ॥ ४६ ॥

(४७)

सुभ्राजता मारुति नन्दनेन
शनैश्शनैर्लालित पाद पल्लवम् ॥
लीला परं लोक हितेऽनुरक्तम्
रामाख्य ब्रह्मास्वदसे प्रमोदे ॥

परम भक्त मारुतिनन्दन से पादपीठस्थित जिनके चरणारविन्द शनैः शनैः प्रेमपूर्वक सेवित किये जा रहे हैं, जो लोकलीला के निमित्त अवध में पधारे हैं, तथा संसार के हित में अहर्निश अनुरक्त हैं, ऐसे सिंहासनासीन श्री रामरूपी ब्रह्म का प्रमोदान्वित होकर प्रमोद बन में साक्षात्कार करके आनन्दित होते हैं ॥ ४७ ॥

(४८)

हंहो मानस राजहंस ! स्वदसे नित्यं प्रमोदेस्थितो
लीलाधाम समन्वयेन वलितं श्रीरामनामामृतम् ॥
रूपं ते हृदयारविन्द निहितं दृष्ट्वा प्रमोदान्वितः
तुलसीमानस राजहंस वसतां चित्ते मदीये सदा ॥

हे अवधेश मानस राजमराल शम्भो ! आप नित्य प्रमोदबन में स्थित रहकर भगवत् लीला और भगवत् धाम के समन्वय से युक्त श्री रामनामरूपी अमृत का आस्वादन करते हैं।

आपके हृदयारविन्द में विराजित अपने रामरूप को देखकर प्रसन्नता से युक्त श्री तुलसीदास के मन मानस के राजहंस श्री अवधेश लाड़ले, आपकी कृपा से सर्वदा मेरे मनमंदिर में निवास करें।

अथवा स्वयं अपने हृदय में विराजमान आपके दिव्य स्वरूप को

आदर्श दर्शन के समान देखकर प्रसन्नचित्त श्री तुलसी-मानस राजहंस मेरे हृदय में सर्वदा निवास करने की कृपा करें ॥४८॥

(४६)

हैड़ाखानस्थ सिद्धस्य
हृदयाब्जे निरन्तरम् ॥
वसन्तं सानुजं रामं
प्रणमामि पुनः पुनः ॥

हैड़ाखान में विराजमान सिद्ध सम्राट् योगयोगेश्वर श्री सदाशिवावतार सन्त शिरोमणि के हृदयरूपी पद्म में निरंतर निवास करनेवाले श्री लखणलाल और श्री वैदेही सहित श्री राम को मैं बारंबार प्रणाम करता हूँ।

अर्थात् गुरु परंपरागत भगवत् ज्ञान की चरितार्थता के कारण श्री परम पूज्य श्री सद्गुरुदेव के हृदय में विराजमान श्री राम ही परमाराध्य हैं, क्योंकि श्री गुरु परम्परा से ही उनके स्वरूप का ज्ञान प्राप्त होने के कारण उनसे अलग सम्बन्ध नहीं जोड़ा जा सकता, अतः गुरु परम्परा से ही उनकी पूजा लौकिक कल्याण और पारलौकिक सुख की साधिका है, तथा श्री राम भक्ति शाखा के सर्वप्रथम आचार्य श्री शंकर ही हैं। उनकी कृपा के बिना रामरूप का यथार्थ ज्ञान प्राप्त होना असम्भव है, जैसा कि रामचरित मानस में भी स्पष्ट निर्देश है कि—

"औरउ एक गुपुत मत, सबहिं कहउँ कर जोरि,
संकर भजन बिना नर, भगति न पावइ मोरि॥"

अर्थात् बिना श्री शंकर की कृपा के रामभक्ति दुर्लभ ही नहीं है, अपितु नितान्त असम्भव है ॥ ४६ ॥

॥ इति श्री प्रमोद बन विहार समीक्षा सुमन स्तबकम् ॥ ५ ॥

ॐ

॥ श्री सद्गुरवे नमः ॥

अथ आनन्द बन विहार समीक्षा सुमन स्तबकम् ॥ ६ ॥

(१)

आनन्द ब्रह्म रूपोपि
आनन्दे स्वे प्रलीयसे ।
चिदानन्द रतो नित्यं
सच्चिदानन्द संस्तुतः ॥

यहाँ से "आनन्द बन विहार समीक्षा सुमन स्तबक" प्रारम्भ होता है, इसमें योगी वेशधारी श्री सदाशिव अवध में श्री मर्यादा पुरुषोत्तम राम के दर्शनाह्लाद से तृप्त होकर, आत्मस्वरूप का दर्शन करके आत्मा में रमण करने की अभिलाषा से आनन्द बन काशी में आनन्दमग्न होकर किस प्रकार विहार मग्न होते हैं, इसका दिग्दर्शन कराया गया है, कि:—

हे सच्चिदानन्द ब्रह्म सदाशिव ! आप आनन्द ब्रह्म के साक्षात् स्वरूप होने पर भी, अपने ही आनन्द में लीन रहते हैं, यद्यपि आपका रूप नित्य चैतन्य और आनन्दमय है, फिर भी आप साक्षात् सच्चिदानन्द से स्तुति किये गये हैं, अर्थात् स्तोता भी आप ही हैं, स्तोत्र भी आपका ही रूप है, तथा स्तुत्य भी स्वयं ही हैं। आपकी इस परम विचित्र माया को धन्य है ॥ १ ॥

(२)

आनन्द कानने नित्य
मानन्दा मोद संस्तुतः ।
परानन्दमयीं मूर्ति
मात्मारामो निरीक्षसि ॥

हे आत्माराम ! आत्मा में ही रमण करने वाले सदाशिव आप सर्वदा आनन्द कानन (काशी) में आनन्दस्वरूप शिव से स्तुति किये गये होकर, परमानन्दमय अपने ही शिव स्वरूप का आत्मा में रमण करते हुए, काशी में दर्शन करते हैं ॥ २ ॥

(३)

काशीपुरे शीतलवाहिनी तटे
शीतांशु शोभित विशाल ललाट दीप्तः ॥
निवात दीपस्तिस्मित स्वरूपो
स्वरूपवान्भस्म विभूषितांगः ॥

हे इन्दुमौले ! काशी नगरी में शीतल वाहिनी श्री गंगाजी के सुन्दर तट पर ललाट पर सुशोभित सुन्दर चन्द्रमा से देदीप्यमान, वायुरहित स्थान पर स्थित निश्चल दीपक के समान स्थिर रूप को धारण किए हुए, परम सुन्दर तथा भस्म से विभूषित अंक से परम रमणीय स्वरूप को धारण करके सुशोभित होते हैं ॥ ३ ॥

(४)

नागेन्द्र संयत विशाल जटाकलाप—
सम्भ्राजितस्सर्प किरीट कुण्डलः ।
त्रिपुण्ड संशोभित दिव्यमस्तकः
स्त्रिलोचनैर्मण्डित दिव्यचन्दनः ॥

हे भक्त कल्पद्रुम शंकर ! काशी में आपका किस प्रकार का रूप नेत्रों को आनन्दप्रद है, उसका निम्न पंक्तियों में वर्णन है, कि सर्पराज वासुकी से आपने अपनी सुन्दर विशाल जटाएँ बाँध रक्खी हैं। उनसे आपका दिव्य रूप परम सुन्दर प्रतीत हो रहा है, तथा सर्पों के ही मुकुट और सुन्दर कर्णाभरण धारण कर रक्खे हैं। त्रिपुण्ड तिलक से आपका दिव्य भाल सुशोभित है, तथा तीनों नेत्रों से दिव्य-चन्दन की शोभा चरम सीमा को पहुँच रही है ॥ ४ ॥

(५)

बाघम्बराऽजिन विभूषित सर्व गात्रो
गात्रैर्मनोज्ञै नयनाभिरामः ॥
नृमुण्ड मालावृत दिव्य कण्ठ
श्रिया समाभासि कपाल खर्परः ॥

बाघम्बर और कृष्ण मृगचर्म से सम्पूर्ण गात्र सुशोभित हैं, तथा प्राकृतिक सौन्दर्यसम्पन्न गात्रों से दर्शक वृन्द को आपकी छबि परम आनन्दप्रद प्रतीत होती है, और नरमुण्डों की सुन्दर माला से आपका दिव्य कण्ठ आवृत होकर, परम शोभा को प्राप्त हो रहा है। नर कपाल निर्मित खर्पर हस्त कमल की श्री वृद्धि कर रहा है ॥ ५ ॥

(६)

पिनाक सम्भूषित दिव्य कन्धर–
त्रिशूल सम्भ्राजित हस्त संवृतः ।
शिवा समाध्यासित वाम भाग–
संशोभितो भक्त मनोरथ प्रदः ॥

हे अन्तकान्तक ! पिनाक नामक प्रसिद्ध शैव धनुष से आपका स्कन्ध भ्राजित है, तथा त्रिशूल से देदीप्यमान हाथ परम सुन्दर प्रतीत होता है। आपके वामाङ्ग में (शिवा) कल्याण कारिणी शक्ति श्रीपार्वती जी विराजमान हैं, अर्थात् शिव शिवात्मक रूप से आप युक्त हैं। जिससे आपकी शोभा परम सुन्दरता को प्राप्त हो रही है, ऐसे महेश्वर ! आप भक्तों के मनोरथों को प्रदान करने वाले हैं ॥६॥

(७)

प्रदायको भक्तिपथ स्थितेभ्यो
भुक्तिश्च मुक्तेर्युगपत्स्वतन्त्रः ॥
तन्त्र प्रणाल्या द्विजराज पूजितो
पूजा परैर्भक्त गणै स्सुसेवितः ॥

हे अभीष्टप्रद ! जो सांसारिक प्राणी आपके भक्ति मार्ग में स्थित हैं, उनको आप भोग और मोक्ष दोनों परम लाभ एक साथ प्रदान करते हैं, क्योंकि आप परम स्वतन्त्र हैं। अतः दोनों विपरीत पदार्थों को भी एक साथ ही प्रदान करने की उत्कृष्ट शक्ति आप में विद्यमान है।

हे विश्वनाथ ! काशी विश्वनाथ के मन्दिर में तन्त्रोक्त विधानों से बड़े बड़े विद्वान ब्राह्मण आपके पूजन में निरत हैं, और पूजा में तत्पर सहस्रों भक्त गणों से आप पूर्ण रूप से सुसेवित हैं ॥७॥

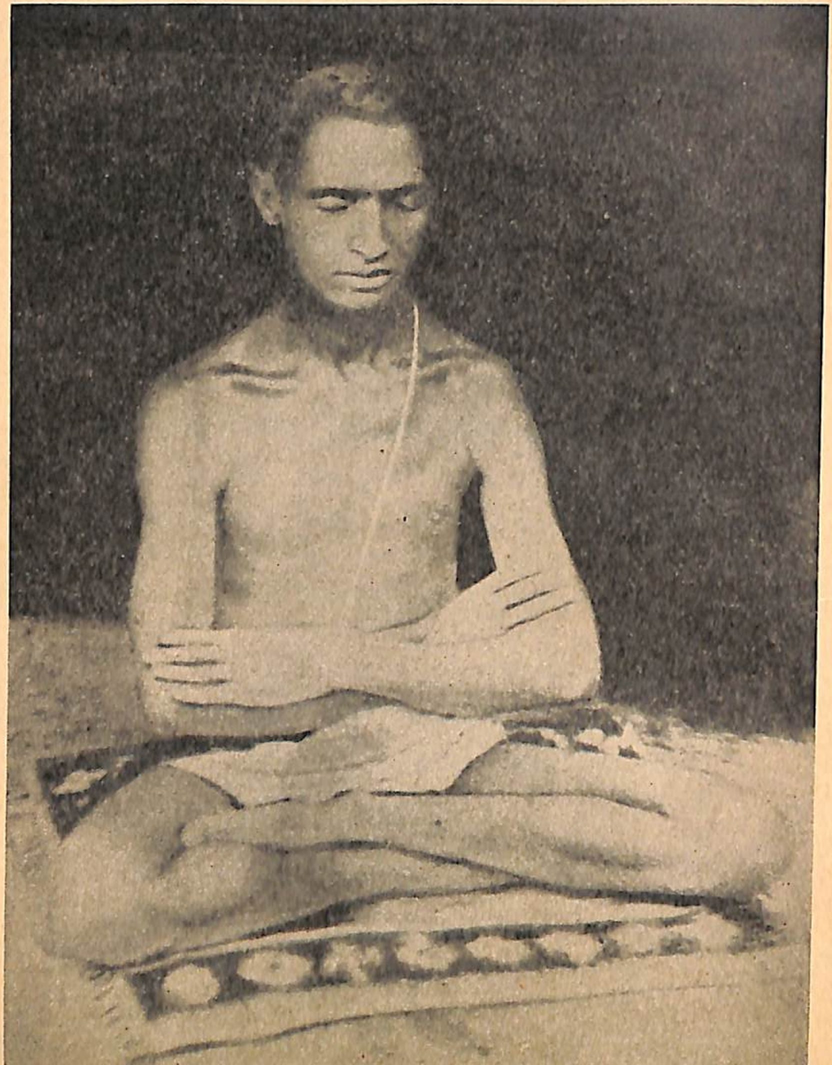
(८)

मनोरथानां मनगोचराणा
मगोचराणामपि वाङ्मनोभिः।
जलस्यधारा स्नपनेन केवलं
क्षणे प्रदाता शिव शङ्करस्त्वम् ॥

हे भक्त चिन्तामणे ! जो मनोरथ भक्तों के मन के विषय हैं, उन्हें तो आप तत्क्षण प्रदान करने में ज़रा भी विलम्ब नहीं करते ही हैं, परन्तु जो मनोरथ उनकी वाणी और मन के भी विषय नहीं हैं, अर्थात् जिनके विषय में भक्त स्वप्न में भी नहीं सोच सकते, उन परम दुर्लभ मनोरथों को भी केवल जल की धारा के स्नान मात्र से ही सन्तुष्ट होकर क्षण मात्र में प्रदान करके सन्तुष्ट करने वाले आप

ॐ

श्री सिद्धसिद्धेश्वर श्रीमद्योगाचार्य सर्वश्रीसमलङ्कृत
श्रीकैलाश गुहाविहारी महामुनीन्द्राय नमः



श्री हैड़ाखानवाले बाबा

शशि भुजंग भूषित नित, हे शिव सत्य ललाम ।
करुणामय समरथ श्री सद्गुरु, बारम्बार प्रणाम ॥

भोले भण्डारी शिवशङ्कर हैं। आपका गुणानुवाद करने की किस मर्त्य में शक्ति हो सकती है ॥८॥

(६)

वाराणसी वासरतो निरन्तरं
पार्थ प्रहार व्रण शोभिमस्तकः ॥
समस्तलोकै रूपगीत कीर्तिः
काशीश्वरो विश्व विभूतिनाथः ॥

हे विश्व विभूतिनाथ ! सांसारिक ऐश्वर्य के एकमात्र अधीश्वर ! आप निरन्तर काशीवास में निरत हैं, क्योंकि आप काशी नगरी के एकमात्र अधिपति हैं। किरात वेश धारण करके आपने अर्जुन की परीक्षार्थ जो युद्ध किया था, उसमें अर्जुन के द्वारा प्रयुक्त ब्रह्मास्त्र के व्रण से आपका मस्तक परम सुशोभित है, तथा समस्त संसार से आपकी कीर्ति का नित्य गुणगान किया जाता है। ऐसे आप ही अपनी परम प्रिय काशी नगरी के एकमात्र अधीश्वर हैं, और अखिल ब्रह्माण्ड के वैभव के अद्वितीय अधिकारी हैं ॥६॥

(१०)

नाथोऽपि लोकस्य चराचरस्य–
अनाथवत्त्वं मणिकर्णिकायाम्।
चिता समीपे रमसे गतव्यथः
काश्यां मृतानां हृदयानि नाथितुम् ॥

हे स्मशान वासिन् ! शंकर ! यद्यपि आप चराचर सम्पूर्ण विश्व के एकमात्र अधीश्वर हैं, फिर भी अनाथों की भाँति काशी के मणि-कर्णिका घाट पर (जहाँ कि मृतकों का अग्नि-संस्कार होता है) आपकी प्रिय नगरी काशी में मरे हुए प्राणियों के हृदयों को सनाथ करने के लिये, व्यथारहित होकर मृतक चिता के पास रात्रि भर रमण करते

हैं, कि "जब तुम सर्वात्मना शरणागत होकर मेरी नगरी में आ गये, तब तुम्हारी जीवित अवस्था में भी मैं स्वामी था, और अब मृतकाऽवस्था में भी मैं तुम्हारी चिता के समीप बैठा हुआ हूँ, मेरे रहते हुए तुम्हें चिन्ता की तनिक भी आवश्यकता नहीं है निर्भय रहो!"

अर्थात् "काशी मरणान्मुक्तिः" यह जो श्रुति वाक्य है, इसकी चरितार्थता इसी प्रकार होती है कि हज़ारों प्राणी अन्त समय में काशीवास करके वहाँ पर जीवित अवस्था में श्री विश्वनाथ का दर्शन और श्री गङ्गास्नान करके सुखी रहते हैं। मृत्यु के पश्चात् उनकी चिता के पास श्री शंकर विराजे रहते हैं कि "स्मशानान्ताः बान्धवाः सर्वे" अर्थात् हे सांसारिक जीवो! आपके परम प्रिय बान्धव स्त्री पुत्र और भ्राता केवल स्मशान तक पहुँचाने के ही साथी थे, किन्तु मैं तो अपने भक्तों का सर्वदा रक्षक हूँ, अतः तुम्हारी चिता के पास भी बैठा हुआ प्रहरी की भाँति रक्षा कर रहा हूँ। धन्य है प्रभो आपकी भक्त वत्सलता तभी तो आपका नाम स्मशानों में क्रीड़ा करने के कारण स्मशानवासी प्रसिद्ध है। आपके अतिरिक्त इस जीवन को अन्य-नाथ मिलना भी असम्भव है, जो प्रत्येक परिस्थिति में जीव का साथ देते हैं, धन्य है आपकी शरणागत प्रतिपालकता तथा भक्त वत्सलता ॥१०॥

(११)

कदापि भङ्गाभर ताम्रलोचनो
वृषेण भूतैः सह भूतनाथैः ॥
भ्रमन्सुकाश्यां निज वीथिकासु
भूतानि योक्तुं शिवतारकेण ॥

हे मदनान्तक! कभी भाँग के आधिक्य से मद के कारण आपके नेत्र लालिमायुक्त बड़े सुन्दर प्रतीत होते हैं, उस समय आप अपने सुन्दर नन्दिकेश्वर पर आरूढ़ होकर भूत और भूतनाथों को साथ लेकर काशी नगरी की प्रत्येक गली में भ्रमण करते हैं, और उस

भ्रमण में मरणासन्न प्राणियों को शिवतारक मन्त्र का कान में उपदेश देकर कृतकृत्य करते हैं ॥११॥

(१२)

ताराधिपानन ! त्वदीय पुरे न कोऽपि
मृतो गतो ह्यावधि मृत्यु द्वारम् ।
दारं हि मृत्योः पिहितं त्वया शिव !
कोऽन्यो हि लोके यमुदाश्रयेम ॥

हे ताराधिपानन ! पूर्ण चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख-मण्डल से सुशोभित सदाशिव ! आपकी काशी पुरी में आजतक एक व्यक्ति भी ऐसा नहीं मरा है, जो कि मृत्यु के पश्चात् यमराज के द्वार पर गया हो। हे शिव ! आपने तो यम का दरवाजा ही बन्द कर दिया है, अर्थात् सब प्राणियों को मोक्ष प्रदान करने से कोई भी यम पुरी का मार्ग नहीं देखता है, धन्य है आपकी महिमा ! अब आपके अतिरिक्त इस विश्व में इतना शक्तिशाली दूसरा कौन है, जिसकी हम शरण में जावें ॥१२॥

(१३)

रूपं स्वकीयं नयनैः प्रपश्यन्
मठेषु कूटेषुच मन्दिरेषु ।
पूजारसास्वादित सर्वगात्रो
गात्रैः स्व पूजां प्रगृहन् प्रसन्नः ॥

हे महादेव ! आप आनन्द बन काशी में भ्रमण करते हुए, मठों में, अट्टों पर बने हुए शिवालयों में, और मंदिरों में अपने ही स्वरूप की झाँकी सर्वत्र करते हुए, भक्तों द्वारा अर्पित पूजन के आनन्द रस से सम्पूर्ण गात्रों में तृप्ति प्राप्त करते हुए; अपने साक्षात् गात्रों से

उनकी पूजा को ग्रहण करते हुए, परम प्रसन्न होकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाकर आनन्द का आस्वादन करते हैं ॥१३॥

(१४)

स्वस्यैव नामानि स्वयं गृणानः
स्वरूप चिह्नानि स्वयं दिदृक्षुः ।
स्वस्यैव लीलां स्वयमीक्षमाणो
स्वकीय रूपे रमसे स्वयम्भो ! ॥

हे प्रभो ! उस परम पावन काशीपुरी में आप भक्तों के द्वारा की गई पूजा को ग्रहण करके इतने आनन्दमग्न हो जाते हैं, कि अपने परम पावन नामों का आप ही कीर्तन करने लगते हैं, "बम् बम् महादेव ! शिवशंकर ! भोलेनाथ !" आदि नामों को उच्च स्वर से कीर्तन करते हुए, तथा अपने ही रूपों के चिन्हों का स्वयं ही दर्शन करने की इच्छा करते हुए, तथा अपनी लीलाओं को स्वयं ही अपलोकन करते हुए अपने ही धाम आनन्द बन में अपने ही रूप में तल्लीन होकर विहार में मग्न रहते हैं ॥१४॥

(१५)

कंकरे कंकरे साक्षात्
शंकरं वीक्ष्य मोद से ।
यत्र गच्छसि तत्रैव
स्वां मूर्ति वीक्ष्य विस्मितः ॥

हे भूमन् ! वह आपकी आनन्दमग्न अवस्था ! जब आप काशी के प्रत्येक कंकर में अपना ही निजी स्वरूप सर्वत्र देखते हैं, तब आपकी प्रसन्नता की अवधि ही नहीं रहती है, क्योंकि आपका तो ब्रह्मांड व्यापक स्वरूप है । अतः प्रत्येक परमाणु में भी आपकी सत्ता विद्यमान है, उसीको जब आप सर्वत्र देखते हैं, तथा जहाँ पर भी काशी में पधारते हैं, वहाँ पर ही अपनी साक्षात् मूर्ति को सामने प्रत्यक्ष

देखकर आश्चर्यमग्न हो जाते हैं। हे स्वामिन् ! आपकी माया ज्ञानियों के चित्त को ही विमुग्ध करती हो यह बात नहीं है, किन्तु कभी कभी तो "मायया स्वीययाऽजोपि स्वयमेव विमोहितः" इत्यादि वचनों के अनुसार अपने द्वारा निर्मित माया से आप स्वयं भी विमुग्ध हो जाते हैं ॥१५॥

(१६)

को विस्मयो वा वद लोक विस्मये
सुविस्मयानां प्रभवे भवे त्वयि।
भस्माङ्गरागं विदधन्ददासि
समस्त लोकस्य परां विभूतिम् ॥

हे भूतिनाथ ! संसार के सब सुन्दर विस्मयों के उत्पत्ति कारण, लोक विस्मयोत्पादक वेशभूषा से सुशोभित आपको क्या विस्मय हो सकता है ? क्या यह कम विस्मय की बात है, कि स्वयं भस्म के अंगराग को धारण करते हुए भी आप त्रैलोक्य के परम ऐश्वर्य को क्षणमात्र में तृण के समान अपने भक्तों को हँसते-हँसते प्रदान कर देते हैं, और क्या यह कम आश्चर्य की बात है कि स्वयं विभूति रमाते हुए भी सम्पूर्ण ऐश्वर्यों के एकमात्र अधिष्ठाता हैं ॥१६॥

(१७)

स्मशान देशे निवसन् त्रिलोचनं !
त्रैलोक्य ऋद्धिं प्रणताय यच्छसि।
कपालमालां विदधन्भयावहः
सुमङ्गलानां प्रभवस्त्वमुच्यसे ॥

हे त्रिलोचन ! आप स्वयम् स्मशान देश में निवास करते हुए भी त्रैलोक्य की ऋद्धि सिद्धि अपने प्रणत भक्तों को प्रदान करते हैं, तथा नरमुण्डों की भयंकर माला धारण करने से भयावह वेश होने पर भी संपूर्ण मंगलों की उत्पत्ति के एकमात्र कारण हैं।

संसार में जितने मंगल और आनन्द होते हैं, वे सब केवल आपकी परम कृपा से ही प्राणियों को प्राप्त होते हैं, जैसा कि श्री गोस्वामी तुलसीदासजी ने भगवान् शंकर का वर्णन तथा स्तुति करते हुए उल्लेख किया है, कि—

"दानी कहुँ संकर सम नाहीं।
दीन दयालु दि बोई भावै, जाचक सदा सोहाहीं ।।१।।
मारि कै मार थप्यौ जग में, जाकी प्रथम रेख भटमाँहीं।
ता ठाकुरकौ रीझि निवाजिबौ, कह्यौ क्यों परत मो पाहीं ।।२।।
जोग कोटि करि जो गति हरिसों, मुनि माँगत सकुचाहीं।
वेद विदित तेहि पद पुरारि पुर, कीट पतंग समाहीं ।।३।।"

अर्थात् "शंकर के समान दानी कहीं नहीं है, वे दीन दयालु हैं, देना ही उनके मन भाता है, माँगनेवाले उन्हें सदा सुहाते हैं ।।१।। वीरों में अग्रणी कामदेव को भस्म करके, फिर बिना ही शरीर जगत् में उसे रहने दिया, ऐसे प्रभु का प्रसन्न होकर कृपा करना मुझसे क्यों कर कहा जा सकता है ? ।।२।। करोड़ों प्रकार से योग की साधना करके मुनिगण जिस परमगति को भगवान् हरि से माँगते हुए सकुचाते हैं, वही परमगति त्रिपुरारि शिवजी की पुरी काशी में कीट-पतंग भी पा जाते हैं, यह वेदों से प्रकट है ।।३।। ऐसे परम उदार भगवान् पार्वतीपति को छोड़कर जो लोग दूसरी जगह माँगने जाते हैं, उन मूर्ख माँगनेवालों का पेट भलीभांति कभी नहीं भरता" ।।१७।।

(१८)

नागेन्द्र हारं शिरसा वहन्पुनः
सुकौस्तुभान्भक्त जनाय यच्छसि ।।
को विस्मयस्त्वं यदि कंकरे वसेः
कोसावणुर्यत्र न तेऽस्ति निष्ठा ।।

हे भूतिनाथ त्रिपुरान्तक ! आप अपने मस्तक पर नागेन्द्रों के हारों को धारण करते हुए भी अपने भक्तों को आभूषणों के लिए सुन्दर कौस्तुभ मणियों के ढेर प्रदान करते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि स्वयं तो सर्पों के आभूषण धारण करते हैं, परन्तु भक्तों को महर्घ कौस्तुभ मणियाँ धारण करवाते हैं, आप ही बतलाइये कि यदि आप प्रत्येक कंकर में निवास करते हैं, तो इसमें कौन से आश्चर्य की बात है। कृपा कर के वह परमाणु तो बतलाइए कि जिसमें आपकी सत्ता विद्यमान न हो ? अर्थात् प्रत्येक परमाणु तक में आप विराजमान हैं, तब कंकर तो अनेक परमाणुओं से निर्मित बहुत बड़ी वस्तु है, उसमें आपका विद्यमान होना क्या आश्चर्य की बात है ॥ १८ ॥

(१९)

निष्ठा त्वदीया सकले चराचरे
दृश्येप्यदृश्ये सदसत्सु वस्तुषु ॥
लोकाः समस्तास्तव भूति भासिता
कृपां विनात्वं नहिं दृष्टिगोचरः ॥

हे देव ! सम्पूर्ण चराचरों में आपकी निष्ठा सर्वत्र विद्यमान है, दृश्य अथवा अदृश्य, सत् तथा असत, सब वस्तुओं में समान रूप से आप व्याप्त हैं, सम्पूर्ण संसार आपके ऐश्वर्य से भासित है, फिर भी बिना आपकी कृपा के आप दृष्टिगोचर नहीं होते हैं।

उन ही परम भाग्यशाली महापुरुषों को आप दर्शन देते हैं, जिन पर आपकी पूर्ण कृपा होती है।

"सोई जानें जि हिं देहु जनाई, जानत तुम्हहिं तुम्हहिं होइ जाई
तुमरि हि कृपा तुम्हहि रघुनन्दन, जानत भगत भगत उर चन्दन"

श्री गोस्वामी तुलसीदासजी की चौपाई के अनुसार, जिस पर भगवान् की पूर्ण कृपा होती है। वह ही भगवत् स्वरूप के ज्ञान से प्राप्य परमाह्लाद का पात्र बन सकता है। अतः यह स्वतः सिद्ध सत्य है कि बिना भगवत् कृपा के भगवद्दर्शन परम दुर्लभ ही नहीं अपितु नितान्त असम्भव है ॥ १६ ॥

(२०)

दृष्टिं देहि कृपांकृत्वा
दिव्यां भक्ताय वाञ्छते ॥
विना ते दर्शनं लोके
जीवनं निष्फलं प्रभो !

हे प्रभो ! इस लिए आपसे पूर्ण विनम्र प्रार्थना है, कि अनुगामी भक्त को कृपा करके वही दिव्य दृष्टि प्रदान कीजिए। हे देव ! इन चरम चक्षुओं से आपका दिव्य दर्शन प्राप्त किए बिना यह जीवन निष्फल है, अतः कृपा करके इस जीवन को दर्शन जनित परानन्द से सरसता और सफलता प्रदान कीजिए ॥ २० ॥

(२१)

दृष्टचा यथात्वं स्वदसे स्वकीयं
रूपं हि काश्यां नयनाभिरामम् ॥
तथैव भक्तास्तव सौम्य रूपं
त्वदीय धाम्नि प्रपिवन्तु नेत्रैः ॥

हे मदन-मद-विधूनन ! जिस प्रकार आप काशी में अपने ही नयनाभिराम स्वरूप को अपनी ही दृष्टि से पान करके परम प्रसन्नता को प्राप्त करते हैं, वैसे ही भक्त भी आपके सौम्यरूप को आपके ही लीलाधाम में अपनी चरम चक्षुओं से पान कर सकें, ऐसी करुणामृत

वर्षा कीजिए, जिससे आपके दर्शन पीयूष से हमारी अन्तरात्मा की पूर्ण तृप्ति हो सके ॥ २१ ॥

(२२)

नेत्र मदीये भव दाव पीडिते
संसार सौन्दर्य निरीक्षणेन ॥
सौन्दर्य सारं शिव ! तावकं वपु
विलोक्य तृप्तिं व्रजतां न संशयः ॥

हे त्रिनेत्र ! मेरे नेत्र सांसारिक सौन्दर्य का निरीक्षण करने से संसार रूपी दावानल से पीड़ित हो रहे हैं । हे शिव ! ये नेत्र सौन्दर्य के परम तत्त्व आपके रूप माधुर्य समन्वित श्री विग्रह के दर्शन करने से निस्सन्देह परम तृप्ति को प्राप्त होंगे। मरुस्थल का निवासी मृगमरीचिका देखकर उसकी ओर जल की आशा से बढ़ता है, किन्तु ज्यों आगे चलता है त्योंही उसकी आशा निराशा में परिणत हो जाती है। ऐसी दशा में उस भ्रान्त पथिक को यदि कहीं परम सुन्दर विशाल सरोवर के दर्शन हो जावें, तो वह पूर्णरूप से अपनी तृप्ति कर लेता है। अन्यत्र भटकने की उसे आवश्यकता नहीं होती।

इसी प्रकार हम सांसारिक प्राणियों के नेत्र सौन्दर्य रस की खोज में, कभी नारी, कभी पुत्र, कभी प्रकृति की सुन्दरता के भ्रम में भटकते हैं। ऐसी दशा में यदि अक्षुण्ण अमृत सरोवर के समान परम सौन्दर्य सार आपके रूप के कहीं हमें दर्शन हो जावें, तो फिर इन नेत्रों की सौन्दर्य पिपासा शान्त हो जावे, क्योंकि आपकी परम रमणीय कान्ति नेत्रों में समजाने पर, सब सांसारिक सौन्दर्य फीके और निस्तत्त्व प्रतीत होने लगते हैं।

अतः कृपा करके इन तृषित नयनों को दर्शनामृत से तृप्त करने की अनुकम्पा कीजिए ॥ २२ ॥

(२३)

तृप्तिं कुरु महाबाहो !
नेत्रयोर्ममदर्शनैः ।
परमानन्द संतृप्त
स्त्वं लोक त्रय तर्पकः ॥

हे महाबाहो ! विशाल वरदहस्त सुशोभित शंकर ! आपके परम सुन्दर दर्शन से मेरे नेत्रों को तृप्ति प्रदान कीजिये, क्योंकि ये अनेक जन्म जन्मान्तर से दर्शन के लिए प्यासे तड़प रहे हैं। आप परम आनन्द से संतृप्त हैं, तथा त्रैलोक्य को तृप्त करनेवाले हैं। अतः जिस प्रकार अपने भक्तों को सांसारिक अक्षय वैभव प्रदान करके आप तृप्त करते हैं, उसी प्रकार आपके परम सुन्दर दर्शनों का दान देकर भी भ्रान्त जीवों की आत्मा को शान्त कीजिए। अन्यथा लौकिक विभूतियों के दान जन्य तृप्ति तो अधूरी ही रहेगी, और जो लोकत्रयतर्पक आपका विशेषण है, वह पूर्ण रूप से चरितार्थ नहीं होवेगा ॥ २३ ॥

(२४)

मौग्ध्यं प्रभो ते शिव लोक विश्रुतं
श्रुतं न कं विस्मित मादधाति ॥
भस्माऽसुरायैव वरं प्रदाय
मौग्ध्यात् स्वकीयात्स्वयमेव विह्वलः ॥

हे सदाशिव ! तुम्हारा भोलापन तो सम्पूर्ण विश्व में प्रख्यात है, सुनने पर किस व्यक्ति को आश्चर्यान्वित नहीं करता है। हे भोलानाथ ! आप भस्मासुर को वरदान प्रदान करके अपने भोलेपन से स्वयं ही अपनी रक्षा के लिए विह्वल होकर लोक लोकान्तरों में भागे। धन्य है आपको हे भोलेभण्डारी ! आपमें यथा नाम तथा गुण पाये जाते हैं, त्रिदेवों में तभी तो आपका नाम ही आशुतोष है ॥ २४ ॥

(२५)

हृदये मे सदा शम्भो !
भालचन्द्र जटाधर !
उमा संशोभि वामाङ्गों
वस नित्यं महेश्वर ! ॥

हे चन्द्रमासे सुशोभित, भाल जटाविभूषित शम्भो ! श्री पार्वती से सुशोभित वामाङ्ग से युक्त महेश्वर ! आप सर्वदा मेरे हृदय में विराजमान रहिए, क्योंकि आप तो स्वयं ज्योतिस्वरूप हैं। उसपर भी भाल चन्द्र से विभूषित आपके हृदय में निवास से परम शीतलता का आविर्भाव होगा, तथा अज्ञानान्धकार का शान्त किरणों से नाश हो जावेगा। तथा उमा से आपका वामांग सुशाभित होने से पराविद्या इस हृदय में निवास करेगी, और सब से अधिक आपके देदीप्यमान स्वरूप रूपी कल्पवृक्ष के हृदय में विराजमान होने से यह मनमन्दिर कैलाश और श्री वैकुण्ठ से भी अधिक महत्त्वशाली बन जावेगा। अतः कृपा करके इसमें निरंतर निवास कर कृतार्थ करने की कृपा कीजिए ॥२५॥

(२६)

काश्यां स्वरूपं तव नेत्र तृप्तिदं
निरीक्षितुं भो भव ! भूमिमागतौ।
श्री राम कृष्णौ नरवेशधारिणौ
नेत्रैः स्वरूपं पिबतः परस्परम् ॥

हे गिरिजापते ! काशी में नेत्रों को तृप्त करनेवाले आपके स्वरूप का दर्शन करने के लिए श्री मर्यादा पुरुषोत्तम आपके इष्टदेव श्री राम तथा लीला पुरुषोत्तम श्री कृष्ण भी मानवाकृति धारण करके इस पृथ्वी पर अवतीर्ण होते हैं, और आपके हृदय में सर्वदा विराजमान अपने ही स्वरूप का परस्पर पान करके आनन्द विभोर हो जाते हैं॥ २६ ॥

(२७)

परस्पराऽलोक सुखेन तृप्तौ
त्वां वीक्ष्य हृष्टौ नमतः परस्परम् ।:
मूर्तिं त्वदीये हृदये वसन्तीं
स्वामेव दृष्ट्वा चकितौ सुविस्मितौ ॥

हे विस्मापन ! वे श्री राम और श्री कृष्ण पारस्परिक अवलोकन-जन्य सुख से आपके धाम काशी में पूर्ण तृप्त होते हैं, तथा आपका दर्शन करके प्रसन्न होकर परस्पर एक दूसरे को प्रणाम करते हैं और आपके हृदयारविन्द में विराजमान अपनी ही मूर्ति को देखकर पूर्ण आश्चर्यचकित हो जाते हैं ॥ २७ ॥

(२८)

काशीश्वर ! त्वं हृदयेषु काशसे
प्रकाशितुं ज्ञानरविं समन्ततः ॥
संसारमाया मुषितान्तरात्मनां
मोहं जनानां शमयन्स्वरश्मिभिः ॥

हे काशीश्वर ! सांसारिक माया से अपहृत आत्मतत्त्ववाले पुरुषों के हृदय में चारों ओर से ज्ञानसूर्य को प्रकाशित करके, उसकी दिव्य ज्योति से उनके हृदय में मोहान्धकार का नाश करने के हेतु अपनी राजधानी काशीपुरी में सुशोभित होते हैं।

हे देव ! मेरा अंतःकरण भी भौतिक माया से अपहृत किया गया है, मेरे तो आप ही एकमात्र आश्रय हैं, मुझे संसार में आपके श्री चरणों की अभय शरण के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं भी अवलम्ब नहीं है, अतः हे देव ! आपके उस परमभास्वर दिव्य प्रकाश से मेरे हृदय का अंधकार भी दूर करने की अनुकम्पा कीजिए ॥ २८ ॥

(२६)

श्री अन्नपूर्णा भवने सुरम्ये
समागतं त्वामतिथिं मनोज्ञम् ॥
दृशा पिबन्ती गृहणी विकम्पते
मौग्ध्या त्वदीयाद्भय शंकमाना ॥

हे बाघम्बर विभूषित गात्र ! श्री अन्नपूर्णा के सुन्दर मन्दिर में अतिथि बन कर आये हुए सुन्दर प्राणवल्लभ, आपके रूप माधुरी का पान करके तो श्री अन्नपूर्णा परम प्रसन्न होती है, परन्तु आपके भोलेपने से भय की आशंका युक्त होकर मन ही मन काँपती है, अर्थात् जब काशी में भ्रमण के प्रसंग से आप श्री अन्नपूर्णा मन्दिर में पधारते हैं, तब आये हुए अपने प्रियतम के दर्शन से परम प्रसन्न होती है, परन्तु वह आपके भोले स्वभाव से भी पूर्ण परिचित है। अतः उसे आशंका हो जाती है कि मेरे भोले सरकार किसी भक्त पर प्रसन्न होकर "जनकहँ कछु अदेय नहीं मोहीं" वचन के अनुसार कभी मुझे ही न प्रदान कर दें, इसलिये आपकी आशुतोषता के कारण हृदय में शंकित रहती है। तभी तो सम्पूर्ण संसार आपको "आशुतोष तुम अवढर दानी" शब्दों से आपकी स्तुति करके क्षणमात्र में चतुवर्ग चिन्ता से मुक्त हो जाता है ॥ २९ ॥

(३०)

मौग्ध्यं त्वदीयं भवलोक विश्रुतं
श्रुतं न किं विस्मय मादधाति ।
सद्यः प्रसन्नो भव आशुतोषो
सर्वस्व दानं ददसि क्षणेन ॥

हे भव ! आपका भोलापन संसार में पूर्ण प्रसिद्ध है, उसे सुनकर किसको आश्चर्य नहीं होता है ? आप तत्क्षण एक लोटे जल से ही प्रसन्न हो जाते हैं। इसी लिए संसार के प्राणी आपको आशुतोष

नाम से सम्बोधित करते हैं। आप उन जीवों को प्रसन्न होकर सर्वस्व तक देने को सर्वदा प्रस्तुत रहते हैं, इसी लिए श्री अन्नपूर्णा भी आपके निरीक्षण के समय कम्पित रहती है ॥ ३० ॥

(३१)

लोकेऽति रंकाः भवता सनाथिताः
क्षणेन धनदोपम भूति राजिताः ॥
त्वत्तो भयग्रस्त गतीव व्याकुलं
रंकत्व रूपं शरणं न विन्दति ॥

हे नाथ ! इस संसार में परम दरिद्रियों पर आपने कृपा करके, तुरन्त क्षणमात्र में कुबेर के समान वैभवशाली बना दिया है। इसी लिए आपके कारणभय से व्याकुल हुआ दारिद्र्य कहीं पर स्थान ही नहीं पाता है, अर्थात् दारिद्र्य जिस मनुष्य को अपना आश्रय बनाता है, उस पर ही आप कृपा करके उसे वैभव, धन, धान्य सम्पन्न बना देते हैं, इस कारण दारिद्र्य को आपने निराश्रय बना रक्खा है ॥ ३१ ॥

(३२—३३)

"युग्मकम्"

प्रयाति यत्रैव च तत्र तत्र
जलस्य धारा स्नपनेन तुष्टम् ॥
त्वां वीक्ष्य सर्वत्र भयाद्विकम्पते
प्राप्नोति शान्ति शरणे तवैव ॥
त्वं वै शरण्यो शरणागतानां
त्राणाय नित्यं निरतो निरन्तरम् ॥
दारिद्र्य रूपं शरणे समागतं
भक्तं निजाङ्गैर्वहसे प्रसन्नः ॥

हे दानिशिरोमणे ! जहाँ जहाँ पर वह दारिद्र्य जाता है, वहाँ वहाँ पर ही जल की एक मात्र धारा के स्नान से प्रसन्न हुए आपको

सर्वत्र देखकर भय के कारण काँपने लगता है, तथा कहीं पर भी टिकने का आश्रय न देखकर आपकी ही शरण ग्रहण करता है। तब आप ठहरे शरणागत वत्सल, और शरण में आये हुये प्राणियों की रक्षा के लिए सर्वदा बद्ध परिकर; अतः स्वरूपधारी दारिद्र्य सब जगह से हताश होकर जब आपके श्री चरणों की शरण में आता है, तब आप उसे अपना भक्त समझकर परम प्रसन्नता से अपने ही अंगों में धारण करते हैं।

धन्य है प्रभो, आपकी भक्तवत्सलता! आप अपने हृदय में विचार करते हैं कि "यह सृष्टि में जहाँ जावेगा, वहाँ ही संसार को दुखी करेगा, इसलिए उसको अपने ही पास रखकर स्वयं परमदरिद्र रूप में "महोक्षः खट्वांगं परशुरजिनंभस्म फणिनः, कपालं चेतीयत्तव वरद! तन्त्रोपकरणभू" के रूप में धारण किये परम दरिद्रवेश में भ्रमण करते हैं।

धन्य है आपकी भक्त परित्राण परायणता! भक्तों के कल्याणार्थ उसे सर्वदा वश में रखने के लिए अपने स्वरूप में ही लीन कर के दरिद्रनारायण बने विचरते हैं॥ ३२–३३॥

(३४)

प्रसन्न रूपं तव ध्यातुकामाः
कामान्हृदिस्थान्सकलान् विहाय॥
तवैव चरणेषु मतिं निवेश्य
त्वद्रूप सिन्धौ मन-अर्पयन्ति॥

इसी कारण से आपके परम प्रसन्नतायुक्त रूप के ध्यान करने की अभिलाषा से हृदयस्थ सम्पूर्ण वासनाओं का त्याग करके भक्त लोग आपके ही श्री चरणारविन्दों में अपनी बुद्धि को निश्चल करके आपके स्वरूपरूपी समुद्र में अपने मन को समर्पित कर देते हैं।

इससे उनका मन परम संतोष और शान्ति का पात्र बन जाता है, अर्थात् आपके स्वरूप में मन के अर्पित हो जाने पर स्वतः संपूर्ण कामनाओं की परम शान्ति और तृप्ति प्राप्त हो जाती है॥३४॥

(३५)

आसाद्य त्वां शंकर पारिजात-
सम प्रभं शंकर शान्ति दायकम् ।
त्रिताप तप्तं हृदयं स्वकीय
मनायि सर्वैरपि पूर्ण शान्तताम् ॥

हे शङ्कर ! कल्पवृक्ष के समान वांछित फल प्रदाता, तथा परम शांतिप्रद आपका आश्रय प्राप्त करके, आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक तीनों प्रकार के संतापों से संतप्त अपने हृदय को संसार के समस्त प्राणियों ने पूर्ण शान्ति का भंडार बनाया है ॥ ३५॥

(३६)

शान्ताः मुनीन्द्राः विगत स्पृहा जनाः
स्पृहान्विताः कर्मरताऽपि मानवाः ॥
त्वामेव लब्ध्वा निजलाभतुष्टाः
पुष्टाः परं त्वां मनसा स्मरन्ति ॥

हे परमशान्त रूप ! शान्त स्वभाव वाले मुनीश्वर तथा सम्पूर्ण वासना रहित योगीश्वर, और सांसारिक वैभव की अभिलाषा वाले कर्म परायण मनुष्य भी आपको ही प्राप्त करके आत्म लाभ से सन्तुष्ट होकर परम पुष्टता को प्राप्त कर के, आपके स्वरूप का ही अपने मन में स्मरण तथा ध्यान करते हैं ॥ ३६ ॥

(३७)

काशी त्वदीया नगरी सुरम्या
काश्याः पतिस्त्वं तरुण त्रिलोचन ! ॥
त्रैलोक्य ऋद्धिं प्रददासि जीवितान्
मृतान्स्वसायुज्य सुखं ददासि ॥

हे काशीनाथ ! यह सुन्दर काशी आप ही की मनोहर नगरी है, और आप ही इस सुन्दर काशीनगरी के, त्रिलोचन सम्पन्न-तारुण्यभाव विभूषित एकमात्र स्वामी हैं । इस आपकी नगरी में जीवित प्राणियों

को आप जीवन अवस्था में धन, धान्य वैभव आदि त्रैलोक्य समृद्धि प्रदान करते हैं, तथा उनके मरने पर अपने सायुज्य मुक्ति का सुख प्रदान करके कृतकृत्य करते हैं। अर्थात् आपकी नगरी में आपकी प्रजा को जीवित अवस्था में भी परम सुख प्राप्त होता है, तथा काल-क्रम से मरने पर भी परमानन्दमय योगैश्वर्य दुर्लभ मुक्तिपद प्राप्त होता है। क्यों न मिले देव ? जब आप स्वयं उनके नाथ उनके मस्तक पर पूर्ण शक्तिसम्पन्न विराजमान हैं, तब भला उन्हें कौन-सा पदार्थ दुर्लभ हो सकता है ? ॥ ३७ ॥

(३८)

धन्योऽसि भद्रं कर भूतिनाथ !
धन्याः वदान्यं शरणं प्रयाताः ॥
संसार सिन्धौ गहने सुदुस्तरे
एको भवानेव ममावलम्बनम् ॥

हे भद्रंकर ! कल्याणकारक हे भूतिनाथ ! हे परमैश्वर्य के एकमात्र अधीश्वर ! आप धन्य हैं ! आप जैसे परम दातार और धन्यवाद योग्य महाशक्तिशाली की शरण में आनेवाले नरनारी भी धन्यवाद के पात्र हैं। इस अत्यन्त दुस्तर तथा परम गम्भीर संसाररूपी समुद्र में पड़े हुए मेरे तो आप ही एकमात्र अवलम्बन हैं। अन्य कोई भी रक्षक नहीं है। मैं तो प्रभो, केवल आपके आश्रय से ही जीवित हूँ ॥

"नाहिनै नाथ ! अवलम्ब मोहि आन की ॥
करम-मन-वचन पन सत्य करुणानिधे,
एक गति राम ! भवदीय पदत्राण की ॥१॥"

अर्थात्—हे नाथ ! मुझे और किसी का आसरा नहीं है, हे करुणा-निधान ! मन, वचन, और कर्म से मेरी यह सच्ची प्रतिज्ञा है कि मुझे केवल एक आपकी जूतियों का ही सहारा है ॥ ३८ ॥

(३९)

तत्त्वं ते तत्त्व विद्भि स्तरुण तराणि वत्ताम्र तप्तं सुदीप्तं-
दीप्ताक्षं द्वन्द दुःख प्रशमन परं शान्तिदं क्षेमकारी ।
शाल प्रांशो ! शशिधर ! जटाजूट छन्न व्रणाकंम्
भक्तानां पारिजातोपम् ! सकल मनोवाञ्छितानां प्रदाता ॥

हे भक्तानां पारिजातोपम ! अपने भक्तों की अभीष्ट सिद्धि के लिए कल्पवृक्षस्वरूप श्री सिद्धसिद्धेश्वर सदाशिव ! तत्त्वज्ञानी योगियों ने आपका तत्त्वमयस्वरूप तरुणादित्य के समान परम भास्वर तथा तपे हुए ताम्र के समान पूर्ण देदीप्यमान् निरूपण किया है। उस आपके परम ज्योतिर्मय रूप में दिव्य नेत्र देदीप्यमान हैं, और सुख दुःख राग द्वेष शीतोष्ण धर्माधर्म आदि द्वन्द्वों को शान्त करने की शक्ति है, तथा पराशांति का प्रदाता और जगत्कल्याणकारिणी शक्ति से समन्वित है ।

हे शाल प्रांशो-शशिधर ! हे शाल के वृक्ष के समान लम्बे स्वरूप सम्पन्न चन्द्राऽवतंस उस दिव्य ज्योतिर्मय स्वरूप में भी जटाजूटों से व्रण का चिह्न आच्छादित है, तथा वह स्वरूप ध्यान करनेवाले भक्तों के मनवांछित कामनाओं को प्रदान करनेवाला है, वे नेत्र संसार में धन्य हैं, जो आपके दर्शन प्राप्त करके सफल होते हैं ॥ ३९ ॥

(४०)

आनन्द कानेन नित्यं
वसन्प्रत्यक्ष गोचरः ।
सिद्धा श्रमी सिद्ध सिद्धो
शंकरः पातु मेदिनीम् ॥

हे आनन्दस्वरूप ! आनन्दकानन काशी में प्रत्यक्ष रूप से नित्य निवास करते हुए सिद्धाश्रम तथा श्री कैलाश गुहा में विहार करने-वाले श्री शंकरावतार श्री सिद्धसिद्धेश्वर शिव ! आप ही इस संसार और पृथ्वी का पालन करते हैं। आपको और आपकी माया को धन्य है ॥ ४० ॥

॥ इति श्री आनन्द बन विहार समीक्षा सुमन स्तबकम् ॥६॥

ॐ

श्री सद्गुरुवेनमः

॥ अथ श्री वृन्दाबन विहार समीक्षा सुमन स्तवकम् ॥७॥

(१)

मूर्तिं मनोज्ञां यदुनन्दनस्य
राधामिलिन्दस्य व्रजे वसन्तीं ।
निपीय नेत्रैर्हृदयं स्व तर्पितुं
वृन्दावने त्वं पुनरेषि सुव्रत ! ॥

यह "श्री वृन्दाबन विहार समीक्षा सुमन स्तबक" है, इसमें आनन्द बन विहार में आत्मानन्द तृप्त श्री सदाशिव अपने काशीधाम से पधार कर श्री वृन्दाबन में आनन्द कन्द, लीला पुरुषोत्तम, पूर्ण कलावतार श्री कृष्ण के चरितामृत का यति के वेश में किस प्रकार पान करके आनन्दमग्न हो जाते हैं। उस तत्त्व का दिग्दर्शन कराया गया है, क्योंकि प्रमोद बन तथा आनन्द बन के विचरण के पश्चात् वृन्दाबन विहरण ही अपनी अलौकिकता तथा दिव्यता से श्री साम्ब सदाशिव के हृदय को अधिक आह्लादक होता है। इस प्रकार इन तीनों बनों में भगवतलीला, धाम रूप और नाम का परमानन्द प्राप्त करके अहर्निश आनन्द मग्न रहते हैं।

हे सुव्रत ! भगवद्भक्तिरस का सुन्दर व्रत पालन करनेवाले सदाशिव ! व्रज में निवास करते हुए, श्री राधावर श्री श्यामसुन्दर वृन्दाबनचन्द्र की मनोहर मूर्ति का दर्शन करके, उनकी रूप सुधा का नेत्र चषकों से पान करके अपने हृदय को तृप्त करने के लिये आप पुनः वृन्दाबन धाम पधारते हैं॥ १॥

(२)

धाम्नि स्वकीये निजरासलीला
लालित्य सन्दर्शन लालसेन ।
आमन्त्रितो निर्जर वृन्दसंयुतो
रासोत्सवं तस्य अलंकरोषि ॥

हे श्री कृष्ण सुहृद् ! अपने वृन्दावन धाम में साक्षात् श्री विग्रह से निरन्तर की गई रास लीलाओं की अलौकिक माधुरी का रसास्वादन करने की अभिलाषा से श्री वृन्दाबन चन्द्र द्वारा भेजे गए आमन्त्रण को स्वीकार करके देववृन्द के साथ पधारकर अपने परम वल्लभ श्री कृष्ण के रासोत्सव को अपनी उपस्थिति से आप सुशोभित करते हैं ॥ २ ॥

(३)

साम्प्रतं साधुवेशं त्वां
भक्तानामिष्ट सिद्धिदम् ।
यतेः प्रच्छन्नवेशेण
चरन्तं व्रज धूलिषु ॥

हे विभो ! इस समय भक्तों के मनोवांच्छित प्रद सुन्दर साधुका वेशधारण करके, प्रच्छन्न योगी के वेश में परम पावन व्रज रजमें विहार करते हुए आपके रूप का भक्त इस प्रकार अपने नेत्रों से दर्शन करके आनन्दित होते हैं ॥ ३ ॥

(४)

नन्दाङ्गणे पूर्ण कलावतीर्णं
शिशुं मनोज्ञं तरुणेन्दु वक्त्रम् ॥
स्तनन्धयं गोप मुदं वहन्तं
द्रष्टुं कपाली नर वेशभिक्षुकः ॥

हे परम सुन्दर ! श्री नन्दबाबा के प्रांगण में अपनी शोड़ष् कलाओं के साथ अवतीर्ण हुए, तरुण चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख से सुशोभित मनोहर शिशु के रूप में माता श्री यशोदा के स्तन पान करते हुए, तथा गोपों को आनन्दित करते हुए, श्री कृष्ण के दर्शन करने के लिए आप मानव भिक्षुक का रूप धारण करके माता श्री यशोदा से भिक्षा माँगने के बहाने, उसके जीवन धन त्रैलोक्य विभूषण श्री कृष्ण का दर्शन करके परमानन्दित होते हैं। धन्य है प्रभो आप की पराभक्ति ॥ ४ ॥

(५—६)

(युग्मकम्)

क्वचित् श्री राधिका पाद
　　पद्माकं सुविभूषिताम् ।
क्वचिच्च कृष्ण पादाब्ज
　　मकरन्दा मोद भास्वराम् ॥
व्रजस्थलीं गाहमानः
　　विचरन् व्रज वीथिषु ।
वृन्दावन चरं गुप्त
　　मपि पश्यन्ति तावकाः ॥

हे व्रज विहरण रसिक ! कहीं पर श्री राधारानी के श्री चरणारविन्दों के परम पावन चिह्नों से विभूषित और उनके समीप ही कहीं श्री आनन्द कन्द श्री कृष्ण चन्द्र के चरणारविन्द मकरन्द से भास्वर स्वरूप वाली व्रज भूमि में विहार करते हुए, तथा व्रज वीथिकाओं में आनन्द मग्न होकर विचरण करते हुए, श्री वृन्दावन में विहार मग्न आपके गुप्त रूप का भी परम भक्त दर्शन करके आनन्दित हो जाते हैं। यह सब आपकी ही कृपा का फल है जिससे लौकिक दृष्टि में जड़मूकवत् विहरण शील स्वरूप को भी

"तुम्हरिहिं कृपा तुम्हहिं रघुनन्दन
जानत भक्त भक्त उर चन्दन"

इत्यादि वचनों के अनुसार परम भक्त प्रत्येक अवस्था में पहिचान कर आनन्दास्वादन करते हैं ॥ ५–६ ॥

(७)

लीलाऽवतारस्य कथासु मग्नो
रासोत्सवं व्रज वनेषु निरीक्ष्यमाणः ।
यमुना तरङ्गजल सिञ्चत सर्वगात्रो
आनन्द मग्न इव पूर्णरतो विभासि ॥

हे परमानन्द ! यमुना जी के सुन्दर तरंगित पावन जल में नित्य स्नान करके लीलावतार श्री कृष्णचन्द्र की परम मधुर कथाओं में अहर्निश मग्न होकर ब्रजबन में श्री कृष्ण के रासोत्सव अवलोकन करते हुए आत्माराम होने पर भी परमानन्दमग्न रूप में आप विचरण करते हैं ॥ ७ ॥

(८)

विभासि यत्रैव च तत्र तत्र
रासोत्सवाह्यादित चित्तवृत्तिः ।
आनन्द लीलामृत पानपुष्टो-
आनन्द रोमाञ्चित सर्व गात्रः ॥

हे त्रिकाल दर्शिन् ! उन वृन्दाबन की सुरम्य वीथियों में जहाँ जहाँ आप प्रकट होते हैं, वहाँ वहाँ पर ही भगवान् की नित्य आनन्दमयी रासलीलाओं के अवलोकन से परम प्रसन्नता प्राप्त करते हैं, तथा आनन्दमयी रासलीलाओं के परम मधुर दिव्य अमृत पान से परम पुष्ट रूप को धारण करते हुए, आनन्दातिरेक से आपके सम्पूर्ण गात्र रोमांचित हो जाते हैं। ऐसी प्रेम विभोर अवस्था से सम्पन्न होकर भगवत् चिन्मयी लीलाओं का रसास्वादन करते हैं ॥ ८॥

(९)

तावकास्त्वां विजानन्ति
अन्तरङ्गैर्न गोप्यसे ।
सुपुत्रं चैव शिष्यं च
आत्मरूपं विदुर्बुधाः ।।

हे दीनबन्धो ! आपके परम प्रियभक्त, आपके उस गुप्ततम वेश को भी आपकी ही दया से पहिचानते हैं। क्योंकि अन्तरंग भक्तों पर कृपा करके उनसे आप कोई भी लीला प्रच्छन्न नहीं रखते हैं। संसार में आज्ञावर्ती सुपुत्र और परम प्रिय शिष्य अपने ही स्वरूप माने जाते हैं। श्रुतियाँ भी स्पष्ट रूप से प्रतिपादन करती हैं कि "आत्मा वै जायते पुत्रः" अर्थात् पुत्र आत्मा का साक्षात् स्वरूप है। इसी प्रकार परम शिष्य भी अपने ही स्वरूप होने के कारण गुप्त रहस्य के अधिकारी होते हैं। जैसा कि मन्त्र तन्त्र शास्त्रों का प्रतिपादन करते हुए, आपने ही आज्ञा प्रदान की है कि "देयं शिष्यायशान्ताय विष्णुभक्ति रताय च" अर्थात् विष्णुभक्ति में निरत शान्त शिष्य को गुप्त से गुप्त मन्त्र तत्त्व भी प्रदान करना चाहिए। इसी कारण से भक्तों को भी दिव्य दृष्टि प्रदान करके अपना और अपने परम प्रिय का दर्शन प्रदान करने की कृपा करते हैं ।।६।।

(१०)

क्वचित्कदम्बाम्ब वनेषुमत्तो
मत्तै मिलिन्दै र्मुहु गीत कीर्तिः ।।
प्रच्छाय शीतल तलेषु तलेषु लीनो
वंशी सुधाप्यायित चित्तवृत्तिः ।।

हे दिगम्बर ! कहीं कदम्ब और आमों के बन में मकरन्दा स्वादन मत्त भौरों से आपका गुणगान किया जाता है, उसके श्रवण से आप भी आनन्द मत्त होकर सघन छाया से सम्पन्न उन वृक्षों के तलों में लीन होकर श्री भगवान् लीला पुरुषोत्तम द्वारा निनादित वंशी

की सुमधुर ध्वनि के श्रवण से आपकी चित्तवृत्ति परम तृप्ति को प्राप्त होती है, और सम्पूर्ण सात्विक भावों के उदय से आपकी दशा चिदानन्द मय हो जाती है॥ १०॥

(११)

क्वचिच्च वृन्दा बन वीथिकासु
नाना प्रमोदै र्व्रज गोप संघैः ॥
गोपाङ्ग नाभि र्मुहु रञ्जिताङ्ग
होलोत्सवे दत्तमतिं प्रयश्यसि ॥

हे महेश्वर ! कभी वृन्दाबन की वीथिकाओं में अनेक प्रकार कौतुकपूर्ण हास्य में निरत ब्रज के परम रंगीले गोपों के वृन्द के साथ तथा परम भाग्यशालिनी गोपांगनाओं से बारंबार होली खेलने के कारण रंजित अंग से विभूषित होली के उत्सव में मन ही मन मग्न श्यामलता के दर्शन करके आनन्दित होते हैं ।

अर्थात वृन्दाबन वीथियों में गोपांगना और गोपों के साथ तथा श्री प्रियाजी के साथ होली खेलते हुए श्री नन्द नन्दन की छवि से आनन्दित होकर इस आनन्द के सामने ब्रह्मानन्द को भी तुच्छ समझते हैं ॥ ११ ॥

(१२)

क्वचिच्च नाना द्रुमजाल मण्डिते
लता प्रतानैर्विहिते सुमण्डपे ।
रासोत्सवाप्यायित चित्तवृत्तिः
श्री कृष्ण चन्द्रं सुविलोक्य हृष्टः ॥

हे परमेश्वर ! कभी अनेक करीर कदम्ब आदि वृक्षों के जाल से सुमण्डित, अनेक लताओं से निर्मित मण्डप में विराजमान, दिव्य आनन्दमय रास क्रीड़ा से तृप्त चित्त वाले श्री वृन्दाबन चन्द्र की छवि का रसास्वादन करके आप परम प्रसन्नता को प्राप्त होते हैं॥ १२॥

(१३)

अन्यत्र गोपान्परित्यज्य मायया
एकं चरन्तं सहराधया वने ॥
राधाऽधरास्वादन चञ्चरीकं
चञ्चद्भुजं वीक्ष्य मुहुः प्रहृष्टः ॥

हे कैलाश गिरिगुहा विहारिन् ! कहीं पर श्री भगवान् की रहस्य पूर्ण दिव्य लीलाओं का इस प्रकार अवलोकन करते हैं, कि योग-माया से ग्वाल-बालों का और गोपांगनाओं का संग छोड़ कर केवल श्री राधारानी को साथ लेकर उनके साथ एकांत विहार की अभिलाषा से सुन्दर निकुञ्ज में परम भाग्यशालिनी, श्री कृष्ण चरणारविन्द परायणा श्रीमती राधाजी के अधर रसामृत का पान करने के हेतु भ्रमर के समान लालायित तथा आनन्दातिरेक से जिनकी भुजवल्लियाँ चंचल हो रही हैं, ऐसी परम रहस्यमय गुप्त लीला में निरत श्री साक्षान्मन्मथमन्मथः की दिव्य क्रीड़ा से स्वयम् परानंद सिंधु में मग्न होकर अवगाहन करते हैं ॥१३॥

(१४)

अन्यत्र कुञ्जे च पुनः स्वपन्त्या
स्तस्याः पदाब्जौ मुनिभृङ्ग सेवितौ ॥
स्वयं कराब्जैः परिसेवयन्तं
कृष्णं विलोक्यैव मुहुः प्रसन्नः ॥

—तथा अन्य कुञ्ज में शयन मग्न श्री राधाजी के चरणारविन्दों को जिनका कि मुनी रूपी भौंरे सर्वदा भक्ति से सेवन करते हैं, अपने कर-कमलों से परम सुन्दरी प्रियतमा के कोमल चरण पल्लवों को शनैः शनैः पलोटते हुए श्री योगेश्वर की छवि को देख कर पुनः परम प्रमोद में आत्म-विभोर हो जाते हैं।

श्री भगवान योग माया का आश्रय लेकर एक समय में ही भिन्न

भिन्न लीलाएँ भिन्न-भिन्न स्थानों में करते हैं। श्री योगेश्वर सिद्ध सिद्धेश्वर भी साक्षात् शंकर रूप होने से योग माया के अधिष्ठाता हैं, अतः अपनी योग माया से अनेक स्वरूप धारण करके भिन्न भिन्न स्थानों में एक साथ ही लीला रसास्वादन करते हैं। धन्य है, तभी तो "नूनं भगवतो-माया ज्ञानिनामपि मोहिनी" वचन के अनुसार आपकी माया ज्ञानी पुरुषों को भी विमुग्ध कर देती है। किन्तु जिस लीला में मायापति रासेश्वर हों और माया के अधिष्ठाता श्री साम्बसदाशिव द्रष्टा हों, उस दिव्यरास के माधुर्य को सांसारिक जीव किस प्रकार आस्वादन करने में समर्थ हो सकते हैं। उनके तो ध्यान से भी ये लीलाएँ बहुत परे हैं। धन्य है प्रभो! आपकी दिव्य लीलाएँ, जिन में अखिल विश्व ब्रह्मा-ण्डैकनायक होकर भी श्री राज-राजेश्वरी प्रियतमा के चरण पलोट रहे हैं, यह ही तो पराकाष्टा का प्रेम है, जिसको साक्षात् आपका रूप मानकर कहा गया है कि—

"प्रेम हरी को रूप है, त्यों हरि प्रेम स्वरूप"

इन लोकोत्तर चरित्रों का सांसारिक जीव क्या पार पा सकते हैं? केवल ये वाक्य ही सांसारिक जीवों के आश्रय हैं कि—

"राम देखि सुनि चरित तुम्हारे,
जड़ मोहहिं, बुध हों हि सुखारे"॥

तभी तो हे शिव! आप अपना साक्षात स्वरूप धारण करके ही उस दर्शनामृत की भिक्षा मांगने के लिए प्रच्छन्न वेश का परित्याग कर वास्तविक वेश में दर्शनमात्र भिक्षुक बन कर तुरन्त प्रकट हो जाते हैं, जैसा कि अग्रिम पद्य में उल्लेख है:—

(१५)

निजं परित्यज्य विरक्त रूपं
शशांक वाघम्बर भस्म मण्डितः॥
नागेन्द्र हारी च कपाल माली
दिगम्बरो दर्शनमात्र भिक्षुकः॥

हे त्रिलोचन आप अपना विरक्त रूप छोड़ कर चन्द्रमा को ललाट पर धारण करते हुए बाघम्बर और भस्म से अपने शरीर को अलंकृत करके, नागेन्द्र का हार धारण किए हुए, दिगम्बर रूप में कपाल का खप्पर हाथ में लेकर अपने परम प्रियतम प्राणाधार श्री राधा हृदय-हार की उपरि वर्णित छबि के निरन्तर दर्शन की भिक्षा मांग कर कृत-कृत्य होते हैं। हे प्रभो! इस आपकी परम मधुर युगल छबि का निरन्तर मुझे साक्षात्कार होता रहे, बस यही एक भिक्षा मुझे कृपा करके प्रदान कीजिए ॥१५॥

(१६)

वंकिम विहारि भवने भवनेत्ररम्ये
वंकाकृतिं वंक शिरोधराऽधरम् ॥
वंकेन्दु वद् वंक विशाल नेत्रं
विहारिणं पश्यसि वंक नेत्रैः ॥

हे वंकेन्दु विभूषित शिव शंकर! कभी-कभी आप "भवनेत्र रम्ये" अर्थात् श्री सदाशिव के नेत्रों को परम सुन्दर लगनेवाले श्री बांके विहारीजी महाराज के मन्दिर में वंकाकृति से विभूषित, तथा बाँकी ग्रीवा, बाँके ही अधर और बंकचन्द्रमा के समान तिरछे विशाल नेत्रों से सुन्दर, यथानाम तथा दर्शन सम्पन्न श्री बाँके विहारीजी महाराज को अपनी बाँकी चितवन से निहार-निहार कर निहाल होते हैं ॥ १६ ॥

(१७)

त्वं चापि तेनैव निरीक्ष्यमाणः
परस्परा लोकन जात कौतुकः ॥
स्मितै रपाङ्गै र्मुहुरीक्ष्यमाणो
परस्पराऽलोकन जात सात्विकः ॥

उस समय, जब आप वहाँ उनके दर्शन का आह्लाद प्राप्त करते हैं, तब उनके द्वारा बाँकी प्रेमभरी चितवन से आपकी आनन्दामोद पूर्ण चितवन जब मिल जाती है, तब मन्द मुसक्यानपूर्ण नेत्र प्रान्तों से बारम्बार देखे गए आप दोनों में पारस्परिक दर्शन से स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च वेपथु आदि सम्पूर्ण सात्विक भावों का उद्रेक हो जाता है।

जिसके कारण वे आपका दर्शन करके परमानन्द मग्न होते हैं, और आप उनका दर्शन प्राप्त करके अपने स्वरूप में परम मग्न होकर कृतकृत्य हो जाते हैं ॥ १७ ॥

(१८)

सत्वोद्भवो सत्वमतिः सुसत्वो
सत्वाश्रितो सत्वरतोऽपि सत्वः ॥
आनन्दभूतोऽपि निजानन्द सिन्धौ
नन्दात्मजानन्द सुखे सुमग्नः ॥

हे सत्त्वमूर्ते ! यद्यपि आप सत्त्व से उद्भूत हैं, सर्वदा परम सत्यनिष्ठ हैं, साक्षात् सत्य के रूप हैं तथा सत्त्व के साक्षात् स्वरूप के आश्रित हैं, और सत्त्व में प्रतिक्षण निरत हैं, तथा स्वयं शुद्ध सत् स्वरूप हैं। फिर भी परमानन्द सिन्धु श्री नन्द नन्दन के परानन्द में मग्न हो जाते हैं, ऐसे सच्चिदानन्द श्री विग्रह सम्पन्न सदाशिव आपकी जय हो ॥ १८ ॥

(१९)

कदापि गोवर्द्धन धाममागतः
अर्चा परैर्भक्तगणैः सुसेवितम् ॥
पूजोत्सवाह्लाद युतं गिरीन्द्रं
पद्भ्यां परिक्रम्य मुदं विभर्षि ॥

हे शर्व ! कभी-कभी आप श्री गोवर्द्धन धाम में पधारकर पूजन में निरत भक्तगणों से वन्दित तथा सुसेवित श्री भगवत् के मूर्ति-

मान् श्री विग्रह स्वरूप श्री गिरिराज के परमोत्सव से पूर्ण, प्रसन्नता युक्त दर्शन करके, अपने श्रीचरणों से परिक्रमा करते हुए, प्रतिपद् में परानन्द और मोद से परिपूर्ण होते हैं ॥ १९ ॥

(२०)

वृन्दा वने सुसंतृप्तः
सिद्धाश्रम निकेतनः ।
सिद्ध सिद्धेश्वरः पातु
शंकरः सिद्धिदः सताम् ॥

सत्पुरुषों को सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्रदान करनेवाले श्री सिद्धाश्रम निवासी श्री सिद्धसिद्धेश्वररूपी शंकर वृन्दाबन में भगवत् लीला, धाम, रूप और नाम, चारों परम तत्त्वों से सन्तुष्ट होकर हम सांसारिक प्राणियों की पूर्ण रक्षा करें ॥ २० ॥

॥ इति श्री वृन्दाबन विहार समीक्षा सुमन स्तबकम् ॥ ७ ॥

ॐ

श्री सद्गुरवेनमः

अथ सिद्धाश्रम बन विहार रहस्य लीला समीक्षा सुमन स्तबकम् ॥८॥

(१)

वनत्रयानन्द सुखाऽनुभूतिं
हृदावहन् योग गतान्तरात्मा ।
आत्म स्वरूपं शिव ध्यातुकामः
सिद्धाश्रमे त्वं पुनरेषि शम्भो !

यह "श्री सिद्धाश्रम बन विहार रहस्य लीला समीक्षा" नामक सुमन स्तबक प्रारम्भ होता है। इसमें तीनों बनों के आनन्द विहार से संतृप्त श्री सिद्धसिद्धेश्वर साम्ब सदाशिव के सिद्धाश्रम बन विहार का वर्णन किया गया है, तथा उनकी रहस्यमय दिव्य लीलाओं के कुछ अंश भक्त हृदय सान्त्वना निमित्त वर्णित है।

हे शम्भो ! प्रमोद आनन्द और वृन्दाबनों में उपलब्ध आत्म-सुखानुभव को अपने हृदय में धारण करते हुए, पुनः योगसमाधि में मग्न होकर आत्मस्वरूप का ध्यान करने की अभिलाषा से आप सिद्धाश्रम सिद्धपीठ जहाँ आपका परम सुखद पावन आश्रम है, वहाँ पुनः पधारते हैं ॥ १ ॥

(२)

सिद्धाश्रमे वसन् शान्तः
योगयुक्तो जितेन्द्रियः ।
भक्तानामनुरक्तानां
योगक्षेम रतः सदा ॥

हे मुनीश्वर ! आप शान्त रूप को धारण करके सिद्धाश्रम में निवास करते हुए, इन्द्रियों पर पूर्ण विजय प्राप्त करके योग-समाधि में मग्न होते हैं, तथा वहाँ अपने अनुरक्त परम भक्तों के कल्याण की कामना से उनका योगक्षेम करने में निरत रहते हैं ॥ २ ॥

(३)

योगक्षेमौ वितन्वानः
स्वीयया योग मायया ।
सिद्धाश्रम वनोद्देशे
भक्त वृन्दै स्सुसेवितः ॥

इस परम पावन सिद्धाश्रम के वनप्रदेश में अपनी योगमाया से भक्तों का योगक्षेम करते हुए निवास करते हैं । भक्तवृन्द साक्षात् सदाशिव को साधु मान कर सेवा तथा प्रणाम किया करते हैं ॥ ३ ॥

(४)

निजाश्रितानां भरणे
पोषणे च सदा रतः ॥
हार्दं भावं विजानन् वै
क्रीड़ा संसक्त मानसः ॥

श्रीमद्भगवद् गीता की प्रतिज्ञा के अनुसार कि—"ये यथा मां प्रपद्यन्ते, तांस्तथैव भजाम्यहम्" अर्थात् जो लोग जिस भावना से और जैसे मेरी शरण में आते हैं, उनका मैं उसी प्रकार सेवन करता हूँ । इस भाव को चरितार्थ करते हुए श्री सद्गुरुदेवजी महाराज अपने चरणाश्रित भक्तों के भरण और पोषण में सर्वदा निरत रहते हैं । अपने भक्तों के हृदय के भावों को तुरन्त पहिचान जाते हैं, क्योंकि घट घट व्यापक को भक्त के हृदय की बात जानने में क्या विलम्ब लग सकता है ? ॥ ४ ॥

(५)

कैलासस्य गिरेर्गुहासु विहरन् रुद्राक्ष सम्भ्राजितो
भार्या भर्त्सित श्री गुमानि भरणे बद्धादरो भारकम् ।
छित्वा गोधूमक्षेत्रं स्वकर कुसुमैर्भक्त सन्तर्पणाय
द्वाविंशति मण मक्षयान्न निवहं गेहे तदीये अधाः ।

हे करुणा वरुणालय ! पतित पावन विश्वम्भर ! श्री कैलाश पर्वत की गुफाओं में विहार करते हुए आप रुद्राक्ष के कण्ठे से सुशोभित होते हैं, आपने पत्नी के द्वारा फटकारे गये श्री गुमानी भक्त के भरण पोषण में उदारता पूर्वक ध्यान देकर उसका धान्य का खेत काटा, और अपने ही कर किसलयों से उसे सकेरा, तथा अपने भक्त के परिवार की तृप्ति के लिए बाईस मण अन्न का अक्षय भण्डार उसके घर के कोठे में स्वयं माथे पर पोट लाद लाद कर भरा ! धन्य है प्रभो ! आपकी भक्त वत्सलता तभी तो धन्नाभक्त की छान छवाई थी। नरसी का भात सजाया था। आपको तो इन बातों की बानि बहुत पुरानी है। आपकी महिमा का कहाँ तक वर्णन किया जा सकता है ॥ ५॥

(६)

गुमानि भक्तस्य प्रसादकामः
कामान्तदीयान्मनसा विचिन्तितान्
सम्पूरितुं त्वं शरणं स्वकीयं
प्रादाः शुभाश्वत्थतले सुसंस्थितः ॥

हे नाथ ! आपने अपने निष्काम भक्त श्री गुमानीसिंह पर कृपामृत वर्षा करने के लिए, उसके मन से सोची गई भक्ति तथा भगवत शरणागति की तीव्र अभिलाषा को पूर्ण करने के लिए सुंदर पीपल के वृक्ष की छाया में विराजमान होकर एक दिन अपनी शरण उसे सर्वात्मना प्रदान कर दी ॥ ६ ॥

(७)

गोधूम चूर्णार्थ मसौ महात्मा
गतः समीपस्थित वारिपेषणीम् ॥
मार्गे भवन्तं सदयं विलोक्य
क्षणेन यातः तव सन्निधिं प्रभो ! ॥

हे प्रभो ! निग्रहाऽनुग्रह समर्थ परम स्वतन्त्र श्री योगीराज ! वह परम पवित्र अन्तःकरण वाला श्री गुमानी नामक ठाकुर गेहूँ का चून पिसाने के निमित्त गाँव के सिर पर लगी हुई, जल के वेग से चलनेवाली चक्की पर जा रहा था, मार्ग में ही पूर्ण दयामय आपके परमानंद प्रदर्शन प्राप्त करके क्षण मात्र में ही पूर्वजन्मार्जित सत्संग जनित आत्म शुद्धि के कारण उसका हृदय रूप आदर्श परम स्वच्छ हो गया था। अतः क्षण मात्र में ही सूर्य के समान परम भास्वर श्री गुरुदेव के स्वच्छ बिम्ब को ग्रहण करने में सामर्थ्य शाली हो सका, तथा सर्वात्मना श्री चरणों में अपने आपको समर्पित कर दिया ॥ ७ ॥

(८)

तत्रैव ते पाद तलं प्रपन्नः
निवृत्त तर्षः क्षत देह बन्धनः ।
गृहस्थ जञ्जाल मपास्य धीरः
प्रच्छाय शीतल तले चरणे निलीनः ॥

उस अश्वत्थ वृक्ष के नीचे ही सम्पूर्ण तृष्णा तथा गृहस्थ के बन्धन और जञ्जालों का परित्याग करके वह धैर्यवान पुरुष सुंदर छाया से परम शीतल तथा सम्पूर्ण आधिव्याधि को शांत करने वाली आपके श्रीचरणों की परमसुखद छाया में विश्रान्ति ग्रहण करने लगा ॥ ८ ॥

(९)

क्षेत्रे गत्वा त्वया नाथ !
तस्य क्षेत्रं विकर्तितम् ॥
द्वाविंशति मणोन्मान
मानीतं पोटकै गृंहे ॥

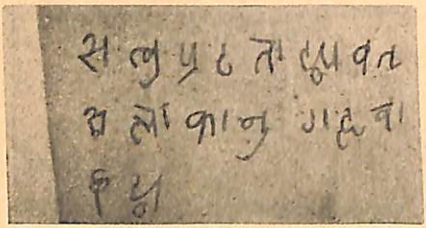
हे देव ! मैं आपका कहाँ तक गुणानुवाद करूँ आपने उसके खेत में पधार कर सम्पूर्ण अनाज काटा तथा बाईस मण अन्न पोटों में बांध बांध कर उसके घर पर पहुँचाया, धन्य है आपका भक्त-भरण और रक्षा का बिरद ?

तभी तो आपकी सत्य प्रतिज्ञा है कि—"तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्" अर्थात् जो सम्पूर्ण वासनाओं का परित्याग करके नित्य मेरी ही उपासना में लगे रहते हैं मैं उन सतत युक्त भक्तों का योग क्षेम स्वयं करता हूँ।" ॥ ९ ॥

(१०)

धन्योऽसि रक्षा करणे समर्थ !
रक्षा करत्वं तव लोक विश्रुतम् ॥
गोधूम कणकान् भवता सुरक्षितान्
नाद्यावधिस्तस्य कुटुम्बिनोऽश्नुवन् ॥

हे भद्रंकर शंकर ! आपकी भक्त रक्षा करने की शक्ति को धन्य है। आपकी रक्षा करने की बानि लोक में पूर्ण विख्यात है। उस गुमानी के घर में आपके अक्षय कर कमलों से पहुँचाये गए बाईस मण अन्न को अब तक भी उसके कुटुम्बी खाते रहे हैं, इस प्रकार के हजारों चमत्कार श्री सिद्धाश्रम सन्निकट वासियों ने अपनी आँखों से देखे। जिनको वे अपनी शपथपूर्वक वर्णन करके आनन्द-मग्न हो जाते हैं। धन्य है भोले भण्डारी आपकी भक्त भरण की तथा शरणागत कुटुम्ब पालन की अलौकिक दिव्य शक्ति, तभी तो



श्री हैड़ाखानवाले बाबा के हस्ताक्षर

गोस्वामी श्री तुलसीदासजी ने आपके विषय में ये वाक्य लिख कर अपने आपको कृत कृत्य किया है।

"आशु तोष तुम अवढर दानी
मोपर कृपा करिय जन जानी" ॥१०॥

(११)

गृहे तदीये तव हस्त निर्मिता
लिपिस्तु अधावधि विद्यते प्रभो ! ॥
विधेर्लिपीवाक्षर भाक् सुशोभिनी
नाद्यावधिः पठ्यत एव मानवैः ॥

हे प्रभो ! परम भाग्यशाली श्री गुमानी भक्त के घर में आपके कर-कमलों से लिखे हुए कुछ अक्षर अब भी विद्यमान हैं। वे सुन्दर अक्षर विधाता की ललाट लिखित लिपि के समान अक्षरों से सुशोभित होने पर भी, मनुष्यों द्वारा पूर्ण प्रयत्न किये जाने पर भी अभी तक नहीं पढी जा सकी है।

श्री सद्गुरु देव के हस्त-कमल लिखित अक्षरों का चित्र आप लोगों के दर्शनों के हेतु दिया जा रहा है ॥ ११ ॥

(१२)

त्वद्दंशकं भक्त गृहे सुरक्षितं
ताम्रं मनोज्ञं तव हस्त भूषणम् ॥
उत्थापितुं वा पुनरेव धातुं
सामर्थ्य हीनाः कलि ग्रस्त साराः ॥

हे करुणानिधे ! आपके हस्त का आभरण तांबे का सुन्दर चिमटा इस भाग्यशाली भक्त के घर में मधुर स्मृति के रूप में अब तक विद्यमान है, उसे कलियुग से जिनकी शारीरिक शक्ति नष्ट कर दी गई है, ऐसे इस युग के मनुष्य न तो आसानी से उठा ही सकते हैं, और न धारण ही कर सकते हैं, क्योंकि आज से पाँच

हज़ार वर्ष पूर्व की और इस युग की मानव शक्ति में बहुत अधिक अंतर है ॥ १२ ॥

(१३)

तद्दंशकं भक्त गृहे सुरक्षितं
स्व दर्शनादेव व्यथां करोत्यपा ॥
त्वदीय संसर्ग समन्वितं तत्
त्वदीय भक्तस्य मनोऽवलम्बनम् ॥

वह आपके वरद हाथों से संसर्ग प्राप्त तांबे का चिमटा अपने दर्शन मात्र से ही प्राणियों की व्यथा को दूर करता है। आपके परम सौभाग्य पूर्ण संसर्ग से विभूषित होने के कारण आपके परम भक्त और प्रिय शिष्य के मन का एक मात्र अवलंबन है ॥ १३॥

(१४)

धन्यं गुमानेः परिवारकं तत्
गत्वा स्वयं यत्र त्वया कृता कृपा ॥
काले तदन्नं भवता सुभक्षितं
त्वदीय भक्तस्य सुकर्मणः फलम् ॥

उस आपके परम भक्त गुमानी का परिवार तथा घर धन्य है, जहाँ आपने स्वयं पधारकर कृपा की, समय समय पर उसके अन्न का आपने महाप्रसाद ग्रहण किया। यह सब कृपा, आपके उस परम भक्त के पूर्वजन्म और इस जन्म के अच्छे कर्म का फल है ॥ १४ ॥

(१५)

फलं सुमिष्टं नहि विद्यतेऽन्यत्
दत्तं त्वया यन्निज दर्शनेन ।
योगात्मभिर्योग दृशा न दृश्य–
स्त्वं तस्य चक्ष्वोः समगोचरोऽभूः ॥

हे तपोधन ! जो सुन्दर फल आपने अपने अमृतमय दर्शन से इसके परिवार को प्रदान किया, उससे मधुरतम अन्य फल संसार में असम्भव है। बड़े-बड़े योगी पुरुषों से योग-दृष्टि द्वारा भी अदृश्य आपका स्वरूप, उनके साक्षात् नेत्रों का विषय हुआ, यह कम सौभाग्य की बात नहीं है ॥ १५ ॥

(१६–१७)

युग्मकम्

महानसे पाकरते सुभोला–
दत्तेद्विजेर्के तरुणत्व याते ।
गन्तुं प्रवृत्ते त्वयि शारदा तटं
गुमानि भक्तोऽपि सहैव गन्तुम् ॥
मनोदधे देव ! त्वयाऽनुकम्पितः
पद्भ्यां कियद्दूर मनुव्रतस्त्वाम् ॥
त्वमुत्थितः खे निज योग मायया
गुमानि भक्तेन सहैव भूतलात् ॥

हे परम दयालो ! इस भक्तराज गुमानी के कृत कृत्य करने के लिए आपने लोकोत्तर विभूति सम्पन्न अनेक लीलाएँ की। उन दिव्य लीलाओं से भक्तों के हृदय में धैर्य और साहस का संचार करने के लिए, एक दिव्य लीला का वहाँ वर्णन किया जाता है।

एक दिन श्री भोलादत्त नामक ब्राह्मण श्री महाराज जी की रसोई बनाने में निरत थे। पाक कार्य में कुछ विलम्ब हो जाने के कारण सूर्य तरुण हो गया था। लगभग ग्यारह बजने का समय हो गया था, उस समय जब रसोई बन चुकी, तब आपने श्री मुख से आज्ञा दी कि शारदा गंगा में स्नान करके मैं अभी आता हूँ। उस समय श्री गुमानी ने भी हाथ जोड़ कर प्रार्थना की कि "महाराज ! आप तो सर्व सामर्थ्य सम्पन्न हैं, गंगा स्नान करके पधार आवेंगे, परंतु मैं तो परम दीन हूँ, मेरे ऊपर

भी श्री गंगा माई की कृपा होवेगी तब स्नान करूँगा"। विश्व हृदय सम्राट् को अपने प्रेमी के हृदय की बात समझने में क्या विलम्ब लगे ? आपने तुरन्त आज्ञा दी कि "गुमानी ? आओ तुम्हें भी श्री गंगा में स्नान करा लाऊँ।"

पूज्य आज्ञा को शिरोधार्य करके अपने प्रभु की परम कृपा समझ कर गुमानी भी श्री महाराज के पीछे हो लिया। आश्रम के बाहिर पहुँचने पर करीब तीस चालीस पैंड की दूरी पर जब दोनों पहुँचे, तब परम सामर्थ्यशाली श्री गुरुदेव अपने योग के परमैश्वर्य से आकाश मार्ग में अधर उठने लगे, तथा गुमानी भी आदेश प्राप्त करके श्री चरणों का अवलम्ब लेकर आकाश मार्ग में चलने लगा ॥ १६–१७ ॥

(१८)

तूर्णं क्षणार्द्धेन त्वयैव साकं
प्राप्तः स भक्तोपिहि शारदा तटम् ।
भक्त प्रतोषाय त्वया महाव्रत !
स्वयोग सम्पत्कणिका प्रदर्शिता ॥

और बहुत शीघ्र आधी क्षण में ही श्री सिद्धसिद्धेश्वर गुरुदेव के साथ चालीस मील दूर शारदा तट पर पहुँच गया। हे महाव्रत ! भक्तों के हृदय में संतोष उत्पन्न करने के लिए आपने अपनी महती योग सम्पत्ति की कणिका का उसे दर्शन कराया। धन्य है आपकी महिमा, और भक्त-वत्सलता ! ॥ १८ ॥

(१९)

स्नात्वा शारद्वती तीरे
त्वया सार्द्धं मसावपि ।
सम्प्राप्तः क्षण मात्रेण
हलद्वानी तपोवनम् ॥

शारद्वती गंगा में खूब स्नान करके आपके साथ-साथ वह परम भक्त भी क्षणमात्र में ही पुनः हलद्वानी के तपोवन में आ गया॥ १६॥

(२०)

श्रुत्वा गुमानि वदनात्
वृत्तान्तं विस्मय प्रदम् ।
भोलादत्तादयो भक्ताः
सम्भ्रान्ताश्चकिताऽभवन् ॥

उस परम कृपापात्र श्री गुमानी के मुख से आश्चर्यजनक वृत्तांत श्रवण करके भोलादत्त आदि अन्य भक्त, जो उस समय आश्रम में उपस्थित थे, बहुत व्याकुल और आश्चर्यचकित हो गए। श्री महाराज के इस योग के चमत्कार की अलौकिकता से अब भी सहस्रों व्यक्ति पूर्ण परिचित हैं।

यह तो एक बहुत मामूली-सा दिग्दर्शन कराया गया है। आपकी विभूति तो साक्षात् सदाशिव के ऐश्वर्य से समन्वित है, अतः आप "कर्त मकर्तु मन्यथा कर्तुम्" समर्थ हैं॥ २०॥

(२१)

सोयं भाग्यतां श्रेष्ठो
गुमानी नाम ठाकुरः ।
तव संसर्ग सामीप्यात्
कृत कृत्यो गतव्यथः ॥

वह ही भाग्यशालियों में परम श्रेष्ठ श्री गुमानी नाम का ठाकुर है, जिसने अहर्निश आपकी सेवा, संसर्ग और शरणागति से सम्पूर्ण व्यथाजाल का नाश करके इस जीवन में अपनी कृतकृत्यता आपकी कृपा से प्राप्त की॥ २१॥

(२२)

हलद्वानी वनोद्देशे
सिद्ध पीठे निजाश्रमे ॥
लीला कृता त्वया नाथ !
धाम्नि स्वे लोक पावनीः ॥

हे श्री सिद्ध सिद्धेश्वर ! हलद्वानी के तपोवन-प्रदेश में आपने सिद्धपीठ अपने सिद्धाश्रम धाम में, जो कि कैलाश पर्वत की तलहटी में है, संसार को पवित्र करनेवाली अनेक लीलाएँ की हैं, वे सब वाणी और मन से सर्वथा अगोचर हैं ॥ २२ ॥

(२३)

वङ्गोत्थ विद्वर मकृतार्थं
निजात्म तुष्ट्यै मुहु पर्यटन्तम् ॥
क्षणेन सन्दर्शन मात्रतोऽखिलां
प्राकाशयद्योग विभूतिसिद्धिम् ॥

हे आर्तबन्धो ! बंगदेश बंगाल का एक विद्वान् जो कि योग क्रियाओं से आत्म साक्षात्कार का प्रयत्न कर रहा था, परन्तु सफलता के दर्शन नहीं कर सका था, और आत्म-तोष के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर महापुरुषों की सेवा में उपस्थित होकर जिज्ञासु-भावना से प्रार्थना करता था। उसे एक क्षण में ही आपके साक्षात्कार से योग विभूति जनित सिद्धि आपकी दृष्टिमात्र से प्राप्त हो गई। इस घटना का पूर्ण विवरण इस प्रकार है कि एक बंगाली विद्वान् वर्षा ऋतु में इस प्रदेश में आए, ये महाशय अनेक वर्षों से योग की क्रियाएँ करते थे, इन क्रियाओं का प्रयास करते-करते इनकी आयु अधिक हो गई थी, शरीर बड़ा हृष्टपुष्ट था, और वृद्ध नहीं मालूम देते थे। उनके गुरु ने उन्हें जितनी योग क्रियाएँ बतलाई थीं, उनको उसने पूर्ण कर लिया था।

गुरु के शरीर-त्याग के पश्चात् उन क्रियाओं को आगे बढ़ाने के लिए कोई सिद्ध महात्मा न मिला, तब वे ढूँढ़ते हुए इस प्रान्त में आए। यहाँ आकर पूछने पर इन्हें मालूम हुआ कि पद्मपुरी के महाराज पूज्यपाद श्री सोमवारी बाबा ने तो शरीर छोड़ दिया है, और श्री हैडाखान के महाराज (पूज्यपाद श्री गुरुदेव) भटकोट की घाटी के पास अपने आश्रम छेदू में हैं।

मार्ग के अत्यन्त दूरस्थ तथा दुर्गम होने के कारण एक जानकार आदमी को साथ लेकर श्री महाराजजी के दर्शन निमित्त पैदल ही छेदू चल पड़े। मार्ग में वर्षा के कारण विषम कष्ट का सामना करना पड़ा, चार दिन की कष्टप्रद दुरूह यात्रा के पश्चात् आश्रम पर पहुँचे। उस समय दर्शकों के साथ श्री महाराजजी छप्पर के भीतर विराजमान थे, दस क़दम दूर से दर्शन करते ही इन साधक महाशय की अवस्था अद्भुत हो गई। वे स्तब्धभाव से खड़े रहे। आँखों से अश्रुओं का अजस्र स्रोत बहता रहा, कण्ठ अवरुद्ध हो गया, भाव-विभोर हो गये।

यह अवस्था लगभग दो घण्टे तक रही, इस बीच में श्री महाराज जी जंगल की ओर चले गये। जब वह विद्वान् प्रकृतिस्थ हुए, तब उन्होंने बतलाया कि योगियों तथा महात्माओं की खोज में उन्होंने सम्पूर्ण भारतवर्ष का पर्यटन किया था। और असंख्य योगियों से अपनी अवस्था के विषय में परामर्श किया था, परन्तु जहाँ पर गाड़ी अटकी हुई थी, वहाँ से आगे कोई नहीं बढ़ा सका, परन्तु श्री महाराज जी के दर्शनमात्र से मुझे सब सुलभ हो गया, बिना मुझसे पूछे उन्होंने मेरे अंदर प्रवेश करके आगे की सब योग-क्रियाओं का दिग्दर्शन तथा अनुभव करा दिया। ऐसे असीम सिद्ध सिद्धेश्वर की कृपा का स्मरण करते-करते भाव-विभोर होकर वह श्रीचरणरज में साष्टांग दण्डवत् करता रहा ॥ २३ ॥

(२४)

बदरिकाश्रम कान्तारे
सत्कृतो विष्णुना स्वयम् ॥
रमाकराब्ज सम्प्राप्तं
भुक्तवान्पक्व मोदनम् ॥

हे श्री योग रत्नाब्धि मन्दर ! भगवन् शिव ! बदरिकाश्रम के बन में साक्षात् विष्णु भगवान् से आपका सत्कार किया गया, श्री लक्ष्मीजी के करपद्मों से सुपक्व भात का महाप्रसाद प्राप्त करने के एकमात्र आप ही अधिकारी बने हैं। इस प्रसंग का रहस्य इस प्रकार है कि एक बार श्री सिद्ध सिद्धेश्वर सद्‌गुरुदेव बदरिकाश्रम बन में नरनारायण भगवान का दर्शन करने पधारे। आप पूर्ण रूप से दर्शनों में मग्न थे। वहाँ पर श्रीजी की जो प्रसादी वितरण हुई, तो आपने पण्डों के हाथ से महाप्रसाद ग्रहण नहीं किया। तब वहाँ के अधिकारी रावल स्वयं महाप्रसाद लेकर उपस्थित हुए, परंतु महाराज ने स्वीकार नहीं किया और वहाँ से दर्शनाह्लाद प्राप्त करके श्रीमहाराज आगे बन में चले, तो श्रीपद्मालया पद्मा के साथ नूपुरों की छमछम ध्वनि से विभूषित स्वयं श्री बदरीबन विहारी पधारे। श्री सिद्धसिद्धेश्वर उस पावन बन में ध्यानमग्न विराज रहे थे, जब छम, छम, की नूपुर सिंजान से आकृष्ट हो सामने देखा तो वैकुण्ठनाथ श्री बदरी बन विहरण रसिक के अमृतमय दर्शन प्राप्त कर आनन्दित हो गए, श्री युगल सरकार ने अपने परम स्नेही श्री सिद्धसिद्धेश्वर को निज करकमलों से प्रसाद प्रदान किया। श्रीभगवत् विभूति सम्पन्न अमृत मय महाप्रसाद श्री महाराज ने पाया, और अपने स्वरूप को कृतकृत्य किया ॥ २४ ॥

(२५)

कोऽन्यो वैभव शीलोऽति
संसारेऽस्मिन् महामते ! ।।
परिपक्व कषायत्वात्
सर्व सम्पत्समन्वितः ।।

हे महामते ! इस संसार में यह वैभव और किस महापुरुष को प्राप्त हुआ है ? योगशास्त्र तथा योगक्रियाओं का मन्थन करने से, हृदय की सम्पूर्ण वासनाओं के पूर्ण हो जाने से, सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्रतिक्षण आप के समक्ष उपस्थित रहती हैं ।। २५ ।।

(२६)

रमा कराब्ज संपक्व
ओदनोपभोग भाग्यभाक् ।
धन्योऽसि मुनिशार्दूल
धन्यं त्वां शरणं व्रजे ।।

हे मुनिशार्दूल ! श्री विश्वेश्वरी लक्ष्मीदेवी के हस्तकमलों से प्राप्त किये गए ओदन के उपभोग से परम भाग्यशाली मुनीश्वर ! आप धन्य हैं, इस प्रकार भगवत्कृपा पात्र परम धन्यवाद भाजन आपकी हम शरण में आए हैं। हम पर भी कृपा करके कृतकृत्य कीजिए ।। २६ ।।

(२७)

धन्योऽसि तपसां श्रेष्ठ !
क्षमायां विष्णुना समः
दया सर्वेषु भूतेषु
तावकी निष्प्रयोजना ।।

हे तपस्वियों में श्रेष्ठ श्री सिद्ध सिद्धेश्वर ! आप को धन्य है, आप क्षमा में भगवान् विष्णु के समान हैं, (भृगु महर्षि के अकारण पाद प्रहार करने से भगवान् विष्णु को लेशमात्र भी क्रोध नहीं आया था) सम्पूर्ण प्राणियों के प्रति आप की निष्प्रयोजन दया संसार को चकित कर देती है ॥ २७ ॥

(२८)

सत्यस्य ते सत्यरतस्य शम्भो !
त्रिकाल सत्या विहिता सुलीला ॥
लीला विनोदार्थ कृतार्थ कामः ।
काम प्रहर्ता भुवि त्वं प्रयातः ॥

हे शम्भो ! आप त्रिकाल सत्य हैं, और सत्-स्वरूप में ही निरन्तर रत हैं, तथा आपके द्वारा की गई सम्पूर्ण लीलाएँ त्रिकाल में सत्य हैं। हे कामदेव को भस्म करने वाले, मदनमद-विधूनन ! लीला विनोद को कृतार्थ करने की अभिलाषा से आप पृथ्वी पर श्री सिद्ध सिद्धेश्वर रूप में अवतीर्ण हुए हैं ॥ २८ ॥

(२९)

श्रद्धां जनानां हृदयाद्विनष्टां
पुनश्चरित्रैस्तव लोकरम्यैः ॥
सन्धातु कामः कुरुषे महात्मन्
वीतस्पृहो लोक हितेऽनुरक्तः ॥

हे महात्मन् ! सांसारिक जीवों के हृदय से नष्ट हुई श्रद्धा को अपने परम रमणीय चरित्रों से पुनः जागृत करने की अभिलाषा से, आप सम्पूर्ण वासनाओं से विरक्त होने पर भी, संसार के हित की अभिलाषा में निरत हो कर अपनी परम मनोहर लीलाएँ करते हैं ॥ २९ ॥

(३०)

ऋउणी प्रदेशे तव सन्निधाने
ग्रीष्मे स्थितानां बहुदर्शकाणाम् ॥
विश्वास कामेन गुहान्तरालात्
पानीय पात्रं स्वय माहृतं करैः ॥

एक बार ऋउणी द्वारसों में श्री महाराज जी के साथ बहुत से दर्शक लोग बैठे थे, ग्रीष्म के दिन थे, पानी कुछ दूर पर था, तब श्री महाराज जी ने उस स्थान के पास एक गुप्त गुहा बतलाई, और कहा कि "इस के भीतर बहुत ठण्डा और स्वादिष्ट जल है" यह बात वहाँ के प्राचीन तथा वयोवृद्ध निवासियों को भी विदित नहीं थी, गुहा का द्वार अत्यन्त संकीर्ण होने के कारण कोई भी यह नहीं जानता था कि इस के भीतर पानी है। प्रयत्न करने पर भी कोई मनुष्य उसमें प्रवेश नहीं कर सका, तब सब के देखते देखते, श्री महाराज जी ने हाथ में लोटा लेकर उस गुफा में प्रवेश किया, और वहाँ से ठण्डा जल भर लाये ॥ ३० ॥

(३१)

संसारिणां त्वं भव ! विस्मयैः स्वैः
विस्मापनो विस्मय विस्मयोऽसि ।
सुर्सा शरीरादपि किं सुसूक्ष्मं
गुहामुखं यत्तव दुष्प्रवेशम् ॥

हे भव ! आप अपनी परमाश्चर्य जनक लीलाओं से संसार को आश्चर्यान्वित करते हैं, तथा संसार को आश्चर्य-चकित करने का क्या महत्त्व है, बल्कि साक्षात् आश्चर्य के अधिष्ठातृ देव को भी विस्मित करते हैं। हे देव ! क्या वह गुफा का मुख नागमाता सुरसा के शरीर से भी सूक्ष्म था जो कि आप से दुष्प्रवेश होता ॥ ३१ ॥

(३२)

त्वं मारुतेः रूप समाश्रितः कृते
अन्तः प्रविष्टः सुरसा मुखे शिव !
गुहा प्रवेशं तव किं सुदुर्लभं
कृतं त्वयायन्मनुजां समीपे ॥

हे शिव ! त्रेता युग में आपने ही तो श्री हनुमान् का रूप धारण करके सुरसा के मुख में प्रवेश किया था। इस गुहा में प्रवेश करना आप के लिए क्या दुर्लभ बात थी, जिसे कि आपने मनुष्यों के सामने की। आपकी शक्ति तो संपूर्ण योगतत्त्वों से ऊपर और वाणी तथा मन से अगोचर है ॥ ३२ ॥

(३३)

आसीदपूर्वं तव सिद्ध पीठं
तत्रैव तप्तं तपसा कलेवरम् ॥
शताब्दिकानां त्रितयं भव त्वया
एकासने नैव क्षणार्द्धं तुल्यम् ॥

इस गुफा के विषय में प्रश्न करने पर आपने बतलाया कि यह आप का पहिले सिद्ध पीठ था, इस गुफा में तीन सौ वर्ष तक एक ही आसन से समाधि लगा कर आधे क्षण के समान आपने व्यतीत किये थे ॥ ३३ ॥

(३४)

कांकामवस्थां तव वर्णयामि
नराकृते शङ्कर ! या कृता त्वया ।
नराः स्व चित्तं परितर्पयन्ति
त्वदीय लीला रस वर्णनेन ॥

हे मानव वेशधारी सदाशिव ! आपने जो जो अपूर्व लीलाएँ की उनका मैं कहाँ तक वर्णन करूँ, अब भी सांसारिक मनुष्य आप

की लीलाओं के परम माधुर्य का वर्णन करके अपने चित्त को प्रसन्न करते हैं ॥ ३४ ॥

(३५)

असि त्वं शंकरः साक्षात्
शिव रूपी सनातनः ॥
भरणे पोषणे चैव
संहारे च सदारतः ॥

हे मृत्युञ्जय! आप तो सनातन परम मंगल के निधान साक्षात् शंकर ही हैं, जो कि अपनी परम दिव्य-शक्ति से इस संसार के भरण-पोषण और संहार में निरत हैं ॥ ३५ ॥

(३६)

उदीची दिक्कान्तारे
यज्ञाः स्विष्टा कृतास्त्वया ।
स्वयं होता च हव्यं च
स्वयं च हव्य वाहनः ॥

हे चन्द्रमौले! उत्तराखण्ड के परम पवित्र बनों में आपने बड़े-बड़े यज्ञ, जिन में आप ही स्वयं होता के रूप, तथा स्वयं ही हवनीय सामग्री और स्वयं ही साक्षात् यज्ञीय अग्नि का रूप धारण करके सम्पादित किए थे ॥ ३६ ॥

(३७)

यज्ञेषु ते देव समागताः सुराः
स्वरूप वन्तस्तव रूप भीक्षितुम् ॥
घृतायितं ते कर संच्युतं जलं
निपीय तृप्ताः गत साध्वसाऽभवन् ॥

हे देव ! उत्तराखण्ड के वन प्रदेश में जब जब आप विधि पूर्वक यज्ञ करते थे, तब तब मन्त्रोच्चारण के साथ; मन्त्राधिष्टातृ देव आकर आप के परम कल्याणकारी मंगलमय रूप का दर्शन करके आनन्दित होते थे। हे महामहिम ! अनेक बार आपके कर-कमल से दी हुई जल की आहुति घृत का रूप धारण करती थी, और उस से हव्य वाहन की ज्वालाएँ कई हाथ ऊँची उठती थी, उस अभिमन्त्रित जल रूप घृत का पान करके देवता परम तृप्ति को प्राप्त करके निर्भय हो जाते थे ॥ ३७ ॥

(३८)

बहूनां मखकार्याणा
माहर्ता विधि पूर्वकम् ॥
शिवः शंकारकः श्रीमान्
त्वमासीः भो त्रिलोचन !

हे त्रिलोचन ! आप अनेक महायज्ञों के विधि पूर्वक सम्पादन करने वाले, परम कल्याण कारक सौन्दर्य और ऐश्वर्य से विभूषित साक्षात् शिव ही हैं ॥ ३८ ॥

(३९)

त्वमेव शक्तो ननु देव ! लोके
पञ्चाग्नि तपसः सुयथार्थ रूपम् ॥
प्रकाशितुं नैव त्वदन्य कोऽपि
शक्तो यथार्थं तपसः स्वरूपम् ॥

हे देव ! इस संसार में पंचाग्नि तपस्या के यथार्थ स्वरूप को प्रकाशित करने की केवल एक मात्र आपकी ही सामर्थ्य थी। आप के अतिरिक्त अन्य कोई भी इस तपस्या के यथार्थ रूप को प्रकाशित करने में सामर्थ्यशाली नहीं हुआ ॥ ३९ ॥

(४०)

अन्ये चतुर्णां ज्वलतां हविर्भुजां
मध्ये स्थिताः पञ्चम सूर्य मानिनः ॥
त्वदीय रूपं नयनैः सुमङ्गलं
साक्षाज्जनै र्नेत्र चषै र्निपीतम् ॥

अन्य तपस्वी जिन्होंने कि अब तक पंचाग्नि तपस्या का आराधन किया है, उनकी विधि तो केवल यह ही रहती थी; कि अपने शरीर के चारों ओर चार अग्नि की धुणी तपाते थे, तथा पाँचवी अग्नि सूर्य को मान कर नेत्रों से निरन्तर सूर्यकी ओर एक टक दृष्टि रखकर तपस्या करते थे। यह ही पंचाग्नि तपस्या का स्वरूप था। परन्तु हे सदाशिव! पंचाग्नि तपस्या में निरत आपका स्वरूप तो परम विचित्र था, जिसको हजारों नरनारियों ने अपने नेत्रों से पान करके आनन्द प्राप्त किया, उस मंगलमय स्वरूप का वर्णन यह है कि:—॥ ४० ॥

(४१)

हिरण्यकेशं ज्वलनोपमं प्रभो !
सप्तैः स्व जिह्वै र्ज्वलनेन लीढम् ॥
सुभास्वरं ज्योति मयं मनोज्ञं
चिता स्थितं विस्मय मादधानम् ॥

सुवर्ण के समान परम सुन्दर कान्ति से भास्वर केशों से सुशोभित, साक्षात् अग्निदेव के समान तेजस्वी, तथा अपनी सातों जिह्वाओं से युक्त, अग्नि की तीव्र लपटों से चारों ओर से व्याप्त, परम देदीप्यमान् साक्षात् ज्योतिस्वरूप, परमसुन्दर, अग्नि की चिता पर स्थित और दर्शकों के नयनों को पूर्ण आश्चर्यमय बनाता हुआ आपका परम दिव्य स्वरूप उत्तरापथ प्रदेश में हज़ारों दर्शकों से प्रणाम किया गया ॥ ४१ ॥

(४२)

यैस्तन्निपीतं नयनाभिरामं

विस्मापनं ज्योतिमयं सुदिव्यम् ।

रूपं त्रिलोकस्य सुतृप्ति कारणं

शंकारकं शंकर रूप धारकम् ॥

हे परम मंगल मूर्ते ! संसार के नेत्रों को आश्चर्यचकित करने वाले ज्योतिर्मय परम दिव्य नयानाभिराम उस सुन्दर तम रूप का जिन व्यक्तियों ने दर्शन किया, वे धन्य हैं। वह आपका दिव्य रूप त्रैलोक्य की तृप्ति का एकमात्र कारण था। संसार के लिए शम्कारक अर्थात् कल्याण विधायक तथा साक्षात् शंकर रूप है ॥४२॥

(४३)

कथं वयं त्वां मनुजं विदामः

इन्द्राऽनुजं वा विधिरूप धारिणम् ।

योगेश्वरस्त्वं निज योगमाया

प्रभाव व्यक्तौ भुवलोक मागतः ॥

हे देवाधिदेव ! हम किस प्रकार आप को मानव योगीराज मानें, साक्षात् विष्णु रूप मानें अथवा ब्रह्म रूप मानें। आप तो साक्षात् योगयोगेश्वर श्री साम्ब सदाशिव हैं। जो भयंकर कलिकाल ग्रसित जीवों पर दया करके अपनी योगमाया का प्रभाव प्रकट करने के लिए इस भूलोक को अलंकृत करके कृत कृत्य करते हैं ॥४३॥

(४४)

शंकान सम्प्रति मनागपि बाधते भोः !

शंका शशंकित मदीय हृदन्तराले ॥

कैलाश कन्दर विहार रसार्द्र चित्तः

साक्षात् शिवः शिवरतः शिवशंकरस्त्वम् ।

हे महेश्वर ! आपके परम मंगलमय दिव्य स्वरूप को पहिचान

ने में अनेक बार श्री ब्रह्माजी को भी शंका हो जाती है। तब उनसे निर्मित मानव मन में कभी कभी शंका होना स्वाभाविक ही है, परन्तु हे नाथ ! अब आपके वास्तविक अलौकिक स्वरूप का ज्ञान हो जाने से इस समय आप के साक्षात् शंकराकृति स्वरूप के विषय में ज़रा भी शंका नहीं है। यह दृढनिश्चय है कि कैलाश कन्दरा में नित्य रमण करने से सरस हृदय सम्पन्न आप तो निःसन्देह शंकर के स्वकीय रूप निरत साक्षात् शंकर सदाशिव ही हैं॥ ४४॥

(४५)

"मनसा फलेगी" ति वदन्महेश !
त्वं मानसे मे सुतरां रमस्व ॥
उमा समेतो हृदये वसन्प्रभो !
क्षमस्व शम्भो ! ममवाक्य शाठ्यम् ॥

श्री सद्गुरुदेव जी महाराज की अमृतस्रावणी दिव्य वाणी यह है कि "बाबा मनसा फलेगी" इस दिव्य वाक्य का उच्चारण करते हुए, हे महेश्वर ! आप मेरे मन मन्दिर में आनन्द पूर्वक अपनी अर्द्धांगनी परम भाग्यशालिनी उमा सहित रमण करते हुए विराजिए। मुझ मन्द बुद्धिमानव से आपके परम गुप्ततम चरित्रों का वर्णन करने में यदि कुछ ढीठता हो गई हो तो आप तो दया और क्षमा के समुद्र हैं। उन्हें कृपा करके क्षमा कीजिए॥ ४५॥

(४६)

शिवोऽसि शिवगत प्राणः
शिवात्मा शिवरूप धृक् ॥
रामकृष्णौ नरतनु
दृष्टुं मानव रूप धृक् ॥

हे देव ! आप तो साक्षात् शिव हैं, तथा शिवगत प्राण हैं। श्री सदाशिव के आत्मतत्त्व हैं, और साक्षात् श्री शिव के ही परम सुन्दर रूप में विराजमान हैं॥ ४६॥

(४७)

अवतार विधानं च
युक्तं तव सदाशिव !
अवतीर्णे भुवं विष्णौ
स्वेष्टे प्रियतमे विभौ ।

हे सदाशिव ! आपका अवतार लेना भी उचित ही है, आपके परम प्रियतम, व्यापक स्वरूप, साक्षात् विष्णु भगवान् ही जब अवतार लेकर पृथ्वी को कृतार्थ करने के हेतु पधारे, तब आपका पधारना भी उचित ही है ॥ ४७ ॥

(४८)

नर रूपेण अवतीर्णो
रामकृष्णौ पुनः पुनः ।
दृष्टुं नराकृतिः साक्षात्
सिद्धेश ! शंकरा कृतेः ॥

हे मदनान्तक ! श्री राम और श्री कृष्ण के सुन्दर नर रूप में अवतीर्ण होने पर, उनकी परम दिव्य रूप माधुरी के दर्शन जन्य आनन्द को प्राप्त करने के हेतु, हे शंकर ! आप भी श्री सिद्ध सिद्धेश्वर के रूप में पधारें ॥ ४८ ॥

(४९)

त्वं साक्षान्नर वेषेण
योगीश्वर स्वरूप धृक् ॥
पूर्णे रंशैर्भुवं पूर्णां
कृतार्थ यसि शंकर ! ॥

हे शंकर ! आप नर के वेश में साक्षात् योगीश्वर का रूप धारण करके अपनी पूर्ण कलाओं से धनधान्य सम्पन्न पृथ्वी को अपने श्री चरणों के स्पर्श से कृत कृत्य करते हैं ॥ ४९ ॥

(५०)

नमः शिवाय शान्ताय
शिव तत्वाय ते नमः ।
शिव - संकल्प युक्ताय
सिद्धाश्रम निवासिने ॥

हे सिद्धाश्रम निवासी शान्त सदाशिव ! आप ही संसार में शिवतत्त्व हैं, तथा सर्वदा संसार के कल्याण और मंगल के सत्संकल्प से युक्त सदाशिव आपको बारम्बार प्रणाम है ॥ ५० ॥

(५१)

दयां कुरु दयालुत्वात्
दया दान परोभव ।
कृपालोस्ते कृपां प्राप्य
तरेयुस्तावकाः जनाः ॥

हे दयासागर ! आप दयालुओं में अग्रगण्य होने के कारण मुझे भी दया की भिक्षा प्रदान कीजिए, आप जैसे परम कृपालु की कृपा प्राप्त करके आपके परम कृपापात्र नत भक्त संसार समुद्र को सुगमता से पार करें ॥ ५१ ॥

(५२)

भस्मेन्दु खर्पर फणीश फणा किरीटी
बाघम्बरा जिन विभूषित सर्वगात्रः ।
पाश त्रिशूल असिचर्म पिनाक पाणिः
प्राणेश्वरो ऽवनुसदा भव भीम कायः ॥

वे प्राणनाथ निखिल विश्वकर्णधार शिवशंकर ! जिन्हों ने अपने सुन्दर शरीर पर चिताभस्म का अनुलेपन धारण कर रक्खा है, भाल पर परम सुषुमामयी चन्द्रमा की कला विराजमान है, मस्तक पर परम रमणीय सर्पफण का किरीट विराजित है, हाथ में खर्पर

सुशोभित है। बाघम्बर और कृष्ण मृग छाला से जिनके अंग प्रत्यंग अलंकृत हैं, पाश, त्रिशूल, खड्गढाल और पिनाक आदि परम दिव्य शस्त्रों से जिनके मनोहर हाथ सज्जित हैं। ऐसे भीमकाया से आर्तत्राण में सदा निरत श्री शंकर अपनी कृपा से संसार की सर्वदा रक्षा करें ॥ ५२ ॥

(५३)

शिवरूप गुरो नित्यं
वस हृदये निरन्तरम् ।
त्वया विनास्मिन् हृदये
नैव शान्तिः कथंचन ॥

हे श्री सदाशिव रूप श्री गुरुदेव ! आप नित्य मेरे हृदय में विराजमान रहकर इसे विभूषित कीजिए। आपके दर्शन और निवास के बिना इस हृदय में परम शान्ति कदापि नहीं निवास कर सकती, अतः आपके स्वरूप को इसमें विराजमान करके इसे परमशान्ति और आनन्द का भण्डार बना दीजिये ॥ ५३ ॥

(५४)

नमो नमस्तेऽतु महानुभाव !
नमो नमः शंकर मूर्ति धारिणे ।
नमो नमः त्वां हृदयार विन्दे
कृताधिवासाय महेन्द्र मूर्तये ॥

हे महानुभाव श्री सिद्धाधीश सद्गुरुदेव ! मैं आपको बारम्बार प्रणाम करता हूँ। हे शंकर रूपधारी शिव स्वरूप आप को मेरा बारम्बार प्रणाम है। मेरे हृदय रूपी कमल में श्रीमहेन्द्र के रूप में विराजमान श्री सद्गुरुदेव आपको बारम्बार प्रणाम है ॥ ५४ ॥

(५५)

श्री विष्णो र्हृदयारविन्द निहितं गुप्तं मनोज्ञं धनम्
　　तस्यैवाशु कृपाकटाक्ष सुलभं प्राप्तं जनैर्भूतले ॥
लब्ध्वा भूताल वासिनो निज हृदस्तोषात्वधि गृंह्यतां
　　दारिद्र्यं दुख संकटं यमभय मद्यापि किं स्थास्यति ॥

श्री विष्णु के हृदयारविन्द में सुरक्षित, यह जो परम गुप्त परम मनोज्ञ श्री शंकर के रहस्यमय चरित्ररूपी रत्नराशि, उसी दिव्यशक्ति के कृपा कटाक्ष से भूतलवासियों को इस स्तव के रूप में परम सुलभ हो गया है ॥ ५५ ॥

अर्थात् इस अक्षय खजाने के सेवन करने से दरिद्रता समूल नष्ट होगी, दुःखों का नाम भी नहीं रह सकता, तथा मेरे आराध्य प्रभु मृत्युञ्जय कहलाते हैं, अतः अकाल मृत्यु का भय भी जाता रहेगा, इस भण्डार को खूब लूटिए ! लूटिए !! लूटिए !!! नहीं तो इधर-उधर जन्म-जन्मान्तरों में भटकते ही फिरना पड़ेगा ॥ ५५ ॥

(५६)

सिद्ध सिद्धेश्वरा धींश
　　चरित्रं परमाद्भुतम् ॥
संसार सागरे मग्न
　　दुःखितानां प्लवं महत् ॥

यह श्री सिद्ध सिद्धेश्वर श्री सद्‌गुरु देव का चरित्र परम अद्‌भुत है। संसार सागर में डूबे हुए दुखी प्राणियों के लिए यह बड़ी सुन्दर भव-समुद्र भेदनी गुप्त सुरक्षित नौका है, इस में बैठ कर संसार समुद्र का निःशंक होकर पूर्ण विहार कीजिए, और जीवन में आनन्द विभोर हो जाइये ॥ ५६ ॥

(५७)

श्रीशम्भोश्चरणार विन्द चलिता सन्देह ग्राहान्विता
श्रद्धा भक्ति सुकूल मण्डित जलै र्भावामिधै र्वाहिनी ॥
मूर्ध्नि स्वे विधृता महेन्द्र गिरिणा सिद्धेश पादांकिते
श्रीशम्भो श्चरितामृतैः सुविमला गंगा जगत्पावनी ॥

यह श्री सिद्ध सिद्धेश्वर स्तवरूप देव गंगा श्री सदाशिव के चरणारविन्दों से प्रादुर्भूत हुई है, तथा मानव स्वभाव सुलभ सन्देह ही इस में ग्राह हैं, सन्दिग्ध चित्त अविश्वासी मनुष्य उनके शिकार बनते हैं। श्रद्धा तथा भक्ति रूप इस गंगा के सुन्दर तट हैं, तथा भाव स्वरूप परम सुन्दर जल का प्रवाह अमृत के समान निरन्तर प्रवाहित है।

श्री भागीरथी जिस प्रकार प्रथम श्री शंकर भगवान से धारण की जाती है, तद्-नन्तर हिमालय से धारण की जाती है, उसी प्रकार इस परम पावन जाह्नवी को श्री चरणों से अंकित अचल स्वरूप श्री महेन्द्रदेव ने अपने मस्तक पर धारण की है ॥ ५७ ॥

(५८)

यस्याः दर्शन मात्रेण
पुमान्यावनतां व्रजेत् ।
पठन श्रवणाभ्यांतु
भुक्ति मुक्ति प्रदायिनी ॥

इस परम पावन गंगा में एक विशेषता और है कि इसके केवल दर्शन मात्र से मनुष्य परम पवित्र हो जाता है, तथा विधि पूर्वक पठन और श्रवण करने से सद्यः भोग और मोक्ष दोनों वस्तुएँ तुरन्त हस्तगत होती हैं ॥ ५८ ॥

(५९)

शिवस्य नाम मात्रेण
पाप पुञ्जं प्रणश्यति ।
किंपुनर्दर्शन स्पर्श
पाद वन्दन सेवनैः ॥

अखिल विभूति समन्वित श्री सदाशिव के नामोच्चारण मात्र से ही सम्पूर्ण पापों के पुञ्ज नष्ट होते हैं। दर्शन, स्पर्श चरणों में प्रणाम तथा सेवा की तो बात ही क्या कही जा सकती है ! ॥ ५९ ॥

(६०)

हंहो त्रिनेत्र ! मदनान्तक ! भूतिनाथ !
नाथोऽसिशंकर चराचर विश्वगोप्ता ।
गङ्गातरङ्ग भर शोभित भाल मालिन् !
भङ्गा तरंग मुदितो वस मानसेऽस्मिन् ॥

हे त्रिलोचन ! हे मदनान्तक ! हे सम्पूर्ण ऐश्वर्य के एक मात्र स्वामी, आप अखिल ब्रह्माण्ड के एक मात्र रक्षक हैं। हे देव ! श्री गंगाजी के शुभ तरंग जल से सुशोभित भाल से विभूषित देव देव ! आप भाँग की तरंग से पूर्ण प्रसन्न होकर इस मन-मंदिर में विराजमान होकर इसे देदीप्यमान करने की कृपा कीजिये ॥ ६० ॥

(६१)

ध्यानं चित्र पटे कृत्वा
ध्येय मूर्तः गुरोः सदा ॥
सुस्नातः सुकृती गायन्
लभते सर्व मंगलान् ॥

नित्य प्रातःकाल स्नान करके ध्यान योग्य परम सुन्दर श्री विग्रह सम्पन्न श्री सद्गुरुदेव की रमणीय मूर्ति का चित्रपट पर ध्यान करता हुआ, इस स्तव का गायन करनेवाला व्यक्ति क्षणमात्र में सम्पूर्ण

मनोरथों को प्राप्त करता है ॥ ६१ ॥

(६२)

पठनात्पाठनाद्वापि
श्रवणात् श्रावणात्तथा ॥
दिनैः कतिपयै रेव
करस्थाः सर्व सिद्धयः ॥

इस दिव्य स्तव के विधिपूर्वक नित्य पठन तथा पाठन कराने से, श्रवण करने से अथवा श्रवण कराने से कुछ ही दिवसों में सम्पूर्ण सिद्धियाँ स्वयं प्राप्त हो जाती हैं ॥ ६२ ॥

(६३)

गजाश्वपत्ती धन धान्य सम्पदः ।
पुत्र प्रपौत्रा भरणार्थ सम्पदः ।
यशः कलत्रं विजयः पदे पदे
स्तवस्य पाठात् क्षणमात्रतो भवेत् ॥

हाथी, घोड़े, नौकर, धन, धान्य और सम्पूर्ण सम्पत्तियाँ तथा पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र, आभूषण और विभूतियाँ, यश, पतिव्रता स्त्री, पद-पद पर विजय—ये संपूर्ण ऐश्वर्य इस स्तव के पाठ और मनन करने से क्षणमात्र में प्राप्त होते हैं ॥ ६३ ॥

(६४)

मनोरथाः ये सुविचारिताः जनैः
अचिन्तिताश्चापि फलन्ति सम्पदः ॥
सदाशिवस्यापि परादया स्फुरेत्
ययानरो वाञ्छित सिद्धमाग्भवेत् ॥

मनुष्यों के द्वारा भलीभांति विचारे गये मनोरथ तो सिद्ध होते ही हैं, परन्तु विचित्रता तो यह है कि जिन मनोरथ और विभूतियों को मनुष्य हृदय में सोच भी नहीं सकता, वे सम्पत्तियाँ भी तुरन्त

प्राप्त होती हैं। मनुष्य कुछ ही समय में श्री साम्ब सदाशिव की परम कृपा का भाजन बन जाता है। जिसके कारण संपूर्ण वांछित, तथा बुद्धि और मन के भी अगोचर सिद्धियों को प्राप्त करने में पूर्ण समर्थ हो जाता है ॥ ६४ ॥

(६५)

यस्य कृपा कटाक्षेण
भासते भारती मुखे ।
तस्यैव नाम मुद्रायाः
अंकं पद्येषु विद्यते ॥

जिन स्वनाम धन्य, महामहिम, ऋद्धि-सिद्धि समन्वित साक्षात् सदाशिवरूप श्री गुरुदेव की परम कृपा से मुझ जैसे सांसारिक प्राणी के मुख से श्री सरस्वतीदेवी जिह्वा पर निवास करती है, उसी महाप्रभाव वैभवसंपन्न महापुरुष के नामाक्षर की मुहर प्रत्येक पद्य में विराजमान है। अतः ये पद्य मुद्रांकित होने के कारण राजाज्ञा के समान सर्वशक्ति सम्पन्न हैं ॥ ६५ ॥

(६६–६७)

हैडाखानस्थ सम्राजो
शिवस्य सुसभाजुषा ॥
विप्रेण विष्णुदत्तेन
अल्वर नगर वासिना ॥
तवैव तोष कामेन
लिखिता तवशासनात् ।
कटुका मधुरावापि
स्तुतिस्त्वां सुप्रसादयेत् ॥

हे हैडाखान में स्थित सम्राट् श्री सिद्ध सिद्धेश्वर सदाशिव ! आपके दरबार के ब्राह्मण कवि विष्णुदत्त मिश्र ने जो अब इस जन्म

में अलवर नगर (राजस्थान) का निवासी है।

हे देव ! आप को प्रसन्न करने की अभिलाषा से आपकी ही पूज्य आज्ञानुसार यह स्तुति निर्मित की है।

हे अखिल ब्रह्माण्डनायक ! यह स्तुति चाहे खट्टी हो अथवा मीठी, मेरे देव ! इसे श्रवण करके आप प्रसन्न हो जाइए, क्योंकि यह दास भी आपका और यह स्तुति भी आप की और श्रोता आप स्वयं है हीं। जिस वस्तु में अपनापन आ जाता है, वह बुरी होने पर भी परम सुन्दर प्रतीत होती है। अतः इस स्तव के श्रवण से आप पूर्ण प्रसन्न होइये यही प्रार्थना है ॥६६-६७॥

(६८)

तवैव गीतस्य प्रभो त्वमेव
जानासि तत्वं सुरसं महत्त्वम् ॥
अहंतु ते लेखन यन्त्रवद् विभो !
कथं विजाने तव रूप मद्भुततम् ॥

हे प्रभो ! आपके गीत (स्तुति) के महत्त्व, विशेषता और सुन्दर रस को आप ही पूर्ण रूप से जानते हैं।

हे भूमन् ! मैं तो केवल आपकी लिखने की मशीन के समान हूँ। जिस प्रकार टाइप करने वाला अपने टाइप राइटर से जो चाहे वह ही लिख सकता है, उसी प्रकार जो कुछ आप की अभिलाषा थी, वह ही आपने इस मानव यन्त्र से लिखवाया।

मुझ में इतनी सामर्थ्य कहाँ है कि आपके परमाद्भुत तथा अनुपम स्वरूप को पहिचान सकूँ, जितना-सा भी जान सका हूँ, वह सब आप की ही कृपा है, उसी का एक मात्र भरोसा और आश्रय है, अन्यथा मैं तो पूर्ण असहाय निर्बल तथा बुद्धिहीन हूँ ॥६८॥

(६९)

काहं मन्दमतिः क्षुद्रः
क्वत्ते लोकोत्तराः गुणाः ॥
केनाद्यावधि गणिताः किं
पार्थिवाः परमाणवः ॥

हे करुणा सिन्धो ! कहाँ तो मन्द बुद्धि, परमक्षुद्र पापों का पुञ्ज मैं, और कहाँ आप के अलौकिक अनुपम अमर गुण-गान, मेरी क्या शक्ति है कि आप के गुण और चरित्रों का पूर्ण वर्णन कर सकूँ ? क्या आज तक कोई गणितज्ञ पृथ्वी के परमाणुओं की यथार्थ गणना करने में सामर्थ्य शाली हुआ है ? जब कि भौतिक पृथ्वी के परमाणुओं को गिनना ही नितान्त असम्भव है, तब आपके अलौकिक अपरिमित दिव्य गुणों की गणना तो मरण धर्मा प्राणी से की जाना अत्यन्त असम्भव है ॥६८॥

(७०)

अहोभाग्य महोभाग्यं
कूर्माचल वनौकसाम् ।
यैर्निपीतो नेत्र चषैः
शंकरः सिद्धरूपवान् ॥

कुमाऊँ प्रदेश में निवास करने वाले नर नारियों की भाग्यशालिता का कहाँ तक वर्णन करें, जिन्होंने अपने नेत्ररूपी प्यालों से सिद्ध सिद्धेश्वर स्वरूप श्री शङ्कर की रूप माधुरी का रसास्वादन पूर्ण रूप से करके जन्म को सफल किया ॥ ७० ॥

(७१)

चरणार्पित सर्वस्वो
विष्णो श्चरण सेवकः ॥
चञ्चरीकायतां विष्णुः
श्रीमतां पाद पद्मयोः ॥

श्री लक्ष्मण जी महाराज के चरण सेवक इस विष्णुदत्त ने आप के श्री चरणों पर अपना तन, मन, धन सर्वस्व अर्पण कर दिया है, अब तो कृपा करके इस को अपने श्री चरणारविन्दों का रसास्वादन करने वाला भ्रमर बनाने की कृपा कीजिए, जिससे आपके चरणारविन्दों में अनुराग नित्य नवीनता धारण करके वृद्धि को प्राप्त होता रहे ॥७१॥

(७२)

शंकारि शंकर मनोऽहंकारि मे डमरूटंकारतो वशनय,
भंकारि भेर्यभयंकारिते भरतु भण्डारकं मम गृहे ॥
भंगातरंग भर भारं गतो हरसि दुख भारं मद्दशाम् ॥
गङ्गातरङ्ग रति संगाद्दतोत्कट संगाद्विभुर्भरतुमाम् ॥

हे कल्याण कल्पद्रुम शंकर ! मेरा यह मन अत्यन्त अहंकारी है, इसे अपने डमरू की चेतना प्रद और शब्द ब्रह्म समुद्धारक टंकार से अपने वशीभूत कीजिये । हे अभयंकर ! भंकार युक्त आप की मधुर नाद सम्पन्न भेरी हम सांसारिक प्राणियों के घर में हमारे भंडार को धन-धान्य से पूर्ण करें ।

हे देव ! भांग की तरंग में मद पूर्ण होकर के आप क्षण-मात्र में प्रसन्न होकर मुझ जैसे दयनीय आर्त प्राणियों के दुःख भार को हरण करते हैं । हे नीलकण्ठ ! श्री गंगाजी की परम पवित्र और शीतल तरंगों के निरन्तर आलिङ्गन से आनन्दित होकर आप मेरा भरण-पोषण करने की कृपा कीजिए ॥७२॥

(७३)

हंहो योगीन्द्रराजन्नतुल गुणनिधे ज्ञानवापी सुहंस !
विप्रोऽहं हीनदीनो बहुमणि निकरैः रत्न संघैश्च हीनः ।
शब्दाख्यं त्वत्प्रदत्तं मणिगण निचयं यद्धनं बाभकीनम् ।
नोप्तां हारभालां स्वरुचि विलासिता मर्पये तावकीनाम् ॥

हे अनुपम गुण निधान ! श्री योगेश्वर, आप ज्ञान रूपी सरोवर में अहर्निश विहार करके आनन्दित होने वाले, परम सुन्दर हंस हैं, आपकी अलौकिक दिव्य अनुपम गुणगाथाओं का वर्णन करना मनुष्य के लिए परम दुर्लभ है।

मैं हीन और दीन ब्राह्मण हूँ, मेरे पास रत्नों का समूह तथा बहु-मूल्यमणियों के समुदाय कहाँ से प्राप्त हो सकते हैं, मैं तो अपने कुटुम्ब रक्षण में ही अहर्निश निरत हूँ, बहुमूल्य रत्नादि तो मुझे सर्वथा अप्राप्य हैं।

हाँ आपने अपनी अनुपम कृपावृष्टि करके शब्द रूप मणी और रत्नों का अक्षय भंडार जो मुझे प्रदान किया है, वह ही मेरा सर्वश्रेष्ठ अलौकिक दिव्य धन है, उस भण्डार से प्रादुर्भूत शब्द रूप मणी और रत्नों के समूह से प्रेम पूर्वक गूंथी गई यह सुन्दर हारलता जिस को कि मैंने अपनी रुचि के अनुसार ग्रन्थन करके तैयार की है। यह आप से प्रदत्त-शक्ति द्वारा सम्पादित होने के कारण आपकी ही है। इस आपकी हारलता को, आप के ही हृदय की शोभा के निमित्त अर्पण करता हूँ, "त्वदीयंवस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्पये" हे देवाधिदेव ! यह आपकी ही वस्तु, आपकी ही परम पवित्र सेवा में सादर समर्पित है। इसे धारण करके मुझे आनन्दित करने की कृपा कीजिए ॥७३॥

(७४)

श्री महेन्द्रस्य पादाब्ज
सेवनाल्लब्ध चक्षुषा ।
सद्गुरोस्तोष कामेन
स्वान्तः सुखाभिलाषया ॥
स्तव राजस्य सम्पूर्तिः
शिवरात्रौ कृतामया ॥

श्री महेन्द्र स्वामीजी महाराज के श्री चरणारविन्दों का सेवन करने से निर्मल दृष्टि प्राप्त करके, श्री सिद्ध सिद्धेश्वर सद्गुरु देव को प्रसन्न करके अपनी आत्मा को सन्तुष्ट तथा धन्य करने के लिए, इस परम सुन्दर स्तोत्र की पूर्णता विक्रम सम्वत् २०१३ के शिवरात्रि पर की गई, माघशुक्ला अष्टमी को श्री सद्गुरु देव की कृपा प्राप्त हुई, उसी धन्य दिवस से आरम्भ करके फाल्गुन कृष्णा त्रयोदशी को मूल स्तव पूर्ण रूप से निर्माण किया गया ॥७५॥

(७५—७६)

चतुर ब्रह्म एवं नेत्रै
मिते वैक्रम वत्सरे ।
चैत्रेमासि सिते पक्षे
नवभ्यां भौम वासरे ॥
सम्पूर्णा ऊर्मिला टीका
लक्ष्मणस्य प्रसादतः
श्री शंकर मुदे भूयात्
यावच्चन्द्रार्क मेदिनी ।

"अङ्कानां वामतोगतिः" इस न्याय से सम्वत् २०१४ के चैत्र शुक्ला नवमी मंगलवार अर्थात् (श्री रामनवमी) के पवित्रतम पर्व पर श्री लखणलाल की कृपा से सम्पूर्ण की गई यह श्री उर्मिला नामक टीका; जब तक संसार में चन्द्रमा, सूर्य और पृथ्वी रहें तब तक भगवान् चन्द्रशेखर देव देव महादेव श्री सदाशिव भोले भंडारी को प्रसन्न करती रहे ॥७५-७६॥

इति श्री सिद्धाश्रम बन विहार रहस्य लीला समीक्षा
सुमनस्तवकम् ॥ ८ ॥

श्री सदाशिवार्पण मस्तु

॥ शुभम् ॥

प्रकाशक : अेम. के. वोरा, वोरा एण्ड कंपनी पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड,
३, राउण्ड बिल्डिग, कालबादेवी रास्ता, बम्बई २
मुद्रक : मणिलाल टी. शाह, लिपिका प्रेस, कुर्ला रोड, अन्धेरी ।

95184227222434